श्री गौतमस्वामिविरचिता

प्रतिक्रमण-ग्रन्थत्रयी

हिन्दी अनुवाद

मुनि प्रणम्यसागर

प्रकाशक

आचार्य अकलंकदेव जैनविद्या शोधालय समिति

उज्जैन (म.प्र.)

- **ग्रन्थ** : प्रतिक्रमण-ग्रन्थत्रयी
- **आशीर्वाद** : आचार्य श्री 108 विद्यासागरजी महाराज
- **रचयिता** : श्री गौतमस्वामी
- **टीकाकार** : श्रीमत्प्रभाचंद स्वामी
- **हिन्दी अनुवाद** : मुनि श्री 108 प्रणम्यसागरजी महाराज
- **संयोजन** : ब्र. संजय भैया, मुरैना • डॉ श्रीचन्द्र जैन, रेवाड़ी • अजित प्रसाद जैन, रेवाडी
- **प्रसंग** : **भगवान बाहुबली के 86वें 'महामस्तकाभिषेक', संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी के 50वें संयम स्वर्ण महोत्सव पर एवं मुनि श्री 108 प्रणम्यसागरजी महाराज के 21वें दीक्षा दिवस पर**
- **पण्यार्जक** : लाला बीरी जैन चेरिटेबल ट्रस्ट, धारुहेड़ा, जिला-रिवाड़ी (हरियाणा)
  श्रीमती अनिता जैन-कँवरसेन जैन, श्रीमती कल्पना जैन-रजत जैन
  श्रीमती पायल जैन-विशाल जैन, श्रीमती प्रीति जैन-निवेश जैन
  मो. कँवरसेन जैन-9354122669
- ISBN : 978-81-934860-3-0
- **संस्करण** : प्रथम
- **आवृत्ति** : 1100
- **सहयोग राशि** : 150/-
- **प्राप्ति स्थान** : आचार्य अकलंकदेव जैनविद्या शोधालय समिति
  109, शिवाजी पार्क देवास रोड, उज्जैन, फोन-2519071, 2518396
  email-sss.crop@yahoo.com

  आर्हत विद्याप्रकाशन
  गोटेगाँव, नरसिंहपुर (म.प्र.), मोबा. : 09425837476
- **मुद्रक** : आरसी प्रैस, 70 ए, रामा रोड, इण्डस्ट्रियल एरिया, नई दिल्ली-110015 • मोबा. 09871196002

गोम्मटेस पडिमा भत्ती

(छन्द चौपाई)

(गोम्मटेश प्रतिमा भक्ति)

(मुनि श्री 108 प्रणम्य सागर जी महाराज)

सिरिजिणसेण मुणीसरकहिदं, बाहुबली-जिणमहिमावयणं।
ठविदा भरयेणं जिणपडिमा, पोदणपुर ठाणे बहुगरिमा॥1॥

1. बाहुबली जिन भगवान की महिमा का वर्णन श्री जिनसेन आचार्य ने इस प्रकार किया है कि पोदनपुर स्थान पर बहुत गरिमा सहित बाहुबली जिन की प्रतिमा भरत चक्रवर्ती ने स्थापित की है।

सुणिय काललामाया एवं, दंसणकरणे कुणदि सुभावं।
जाव ण दंसणमहं करोमि, ताव ण दुद्धं मुहे धरोमि॥2॥

2. इस प्रकार के वर्णन को सुनकर माता कालला देवी उस प्रतिमा का दर्शन करने के लिए श्रेष्ठ भाव करती हैं कि जब तक मैं दर्शन नहीं करती हूँ तब तक मुख में दूध धारण नहीं करूंगी।

जणणीगहणं वदं सुदेणं, चामुण्डरायेणं जं णादं।
ताए अहिलासं पूरेज्ज, भावं तस्स मणम्मि होज्ज॥3॥

3. माँ ने व्रत ग्रहण किया है ऐसा जब कालला माँ के पुत्र चामण्डुराय को ज्ञात हुआ तो उसके मन में भाव हुआ कि मैं अपनी माँ की अभिलाषा को पूर्ण करूँगा।

सह परिवारेणं सा जत्ता, पारंभा मग्गे सुववत्था।
पोदणपुर-मग्गं णहि पावइ, कडवप्पं खलु सो आगच्छइ॥4॥

4. मंत्री चामुण्डराय ने परिवार सहित वह यात्रा प्रारम्भ की, मार्ग में श्रेष्ठ व्यवस्था थी। जब पोदनपुर का मार्ग प्राप्त नहीं हुआ तो यह कटवप्र पहाड़ी पर आ जाता है।

णेमिचंदसिद्धंतगुरूस्स, चरणं पूजिय महिमं तस्स।
पूदगिरिस्स सुणिय संतुट्ठो, तत्थ मंदिरेसुं स पविट्ठो॥5॥

5. वहाँ आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती गुरू के चरणों की पूजा करके, उनके मुख से उस पवित्र पर्वत की महिमा सुनकर मंत्री चामुण्डाय बड़े सन्तुष्ट हुए और वहाँ के मंदिरों में दर्शनार्थ प्रवेश किया।

मायाए सह सिविरं गच्छिय, चिंताभारेणं सो सयिय।
पादो जग्गिय मायापुत्तं, परोप्परं संतुट्ठं दिट्ठं॥6॥

6. दर्शनोपरान्त माता के साथ अपने शिविर में जाकर ''मैं माँ की अभिलाषा को कैसे पूर्ण करूँ'' इस चिन्ता के भार से वह सोए। प्रातः जागकर माँ–बेटे ने एक दूसरे को संतुष्टी से देखा।

रत्तीय सुमिणं मए दिट्ठं, कहेदि माया सुदो वि सम्मं।
चामुण्डय्या सह मायाए, सूरिसमीवं विणम्मदाए॥7॥

7. माँ कहती है कि मैंने रात्रि में एक स्वप्न देखा है और पुत्र कहता है कि मैंने भी समीचीन स्वप्न देखा है।चामुण्डय्या अपनी माँ के साथ आचार्य देव के समीप विनम्रता से यह बात कहते हैं।

वुत्ते सूरी भासदि हं वि, सुमिणं पासमि कहेमि तं वि।
एगा देवी जक्खी दिट्ठा, कुसुमंडिणी कहेदि सुतुट्ठा॥8॥

8. उनके कहने पर आचार्य गुरूदेव भी कहते हैं कि मैं भी रात्रि में एक स्वप्न देखता रहा उसे मैं कहता हूँ। स्वप्न में एक यक्षी देवी दिखाई दी। वह कुश्मुंडिनी देवी संतुष्ट होती हुई कहती है कि–

पोदणपुरमग्गो अवरुद्धो, सप्पेहिं कण्डेहिं विद्धो
सेलत्तो दक्खिणमुहट्ठाणं, बाणपओगं किच्चा बाणं॥9॥

9. पोदनपुर का मार्ग तो सर्पों से अवरूद्ध है और अनेक कंटकों से सहित है। इस पर्वत के दक्षिण मुख स्थान से एक बाण का प्रयोग करो।

लग्गदि जत्थ तत्थ इगचित्तं, बाहुबलिसामिस्स विचित्तं।
होहिदि भासिय एवं जादा, देवी सा खलु अंतज्झाणा॥10॥

10. जहाँ बाण लगे वहीं पर बाहुबली स्वामी का एक विचित्र चित्र होगा, इस प्रकार कहकर वह देवी अन्तर्ध्यान हो गई।

अवरदिणे गुरुआणाए सो, बाणपओगं कादुं णद्धो।
मंतणमोक्कारं उच्चारिय, चित्तं दिट्ठं बाणं मुंचिय॥11॥

11. अगले दिन मंत्री चामुण्डराय गुरू की आज्ञा से बाण का प्रयोग करने के लिए तैयार हुए। णमोकारमंत्र का उच्चारण करके बाण छोड़कर देखा तो वहां एक चित्र दिखाई दिया।

सव्वे हरिसा विंझगिरीए, पस्सिय तुट्ठियभव्वसिलं ते।
पडिमाघडणट्ठं खलु पच्छा, तेण पेसिदा अणुयरभिच्चा॥12॥

12. विंध्यगिरि पर सभी हर्षित हुए। वहाँ पर भव्य शिला को देख संतुष्ट होकर मंत्री चामुण्डराय ने अपने अनुचर, भ्रत्यों को प्रतिमा बनाने के लिए (एक शिल्पी की खोज में) भेजा।

सयं धरिय सामण्णविभेसं, सिप्पिगवेसणहेदू देसं।
गच्छदि मंती मायाआणं, पूरणकामो ठाणं ठाणं॥13॥

13. स्वयं चामुण्डराय भी सामान्य भेष धारण करके शिल्पी की गवेषणा के लिए अन्य स्थान पर गए। वह मंत्री माँ की आज्ञा को पूर्ण करने की इच्छा से स्थान–स्थान पर जाते हैं।

पडिमा सा होदव्वा एसा, विस्से हवे ण कावि सरिसा।
दंसणेण दुब्भाव विणासो, सच्च-अहिंसा-संति-पयासो॥14॥

14. चामुण्डराय की इच्छा थी कि–वह प्रतिमा ऐसी हो कि विश्व में उसके समान कोई प्रतिमा न हो। जिसके दर्शन से दुर्भाव का विनाश हो जाए और सत्य, अहिंसा तथा शान्ति का प्रकाश हो।

जुगे जुगे जिणधम्मपहाणं, णिग्गट्ठं हिदमप्पपहाणं।
चागअकिंचणभावा हेदू, अप्पसंतिसुहकरणसुसेदू॥15॥

15. जो प्रतिमा यह कहे कि– युग–युग में जिन धर्म प्रधान है, निर्ग्रन्थ रहना ही हितकर है, आत्मा ही प्रधान है, त्याग और अकिंचन के भाव ही इसके लिए कारणभूत हैं तथा वे भाव ही आत्मा की शान्ति और सुख प्रदान करने के लिए श्रेष्ठ सेतु (पुल की तरह) हैं।

कहमवि पत्तो सिप्पिविसिट्ठो, णाममरिट्ठणेमि सो जेट्ठो।
कहिदं सिप्पि! कुणहि णिम्माणं, पाणवंतमिह तं पासाणं।।6।।

16. मंत्री चामुण्डराय ने किसी भी तरह शिल्पी विशिष्ट को प्राप्त किया। उसका नाम अरिष्टनेमी था तथा वह शिल्पकला में ज्येष्ठ था। मंत्री ने कहा–शिल्पी! यहाँ उस पाषाण पर प्रतिमा का निर्माण करो और उसे प्राणवन्त (जीवन्त) बना दो।

दाहिमि ते मुहजाचणदाणं, पुहपासाणसुवण्णपमाणं।
पस्सदि सिप्पी विम्महणेत्तो, सीकरणं तं लोहिदचित्तो।।17।।

17. तुम्हें मुँह माँगा दान दूँगा। जितना पाषाण इस मूर्ति के निर्माण में अलग होगा उतना स्वर्ण प्रदान करूँगा। शिल्पी विस्मित नेत्रों से देखता रह जाता है और उस कार्य को लोभतचित्त हुआ स्वीकार कर लेता है।

पारंभदि कज्जं सो सणियं, धरियमणं एयंते एगं।
आवागमणं रुंधिय तत्थ, मग्गं रचिय सुदिट्ठपसत्थं।।18।।

18. वह शिल्पी अच्छी तरह दिखने वाले प्रशस्त मार्ग को बनाकर, वहां पर अन्य लोगों का आवागमन रोककर, एकान्त में एकाग्र मन करके, कार्य को धीरे–धीरे प्रारम्भ करता है।

कइपयमासाणंतरमेगे, भरमाणो चुण्णं खलु सूदे।
माया आगच्छंता दिस्सदि, सिप्पिसुदं किं करोसि पुच्छदि।।19।।

19. कुछ मास पश्चात् एक दिन जब शिल्पी एक बोरे में बिखरा चूर्ण (पाषाणदि) भर रहा था तभी उसकी माँ आकर देखती है और अपने शिल्पिपुत्र से पूछती है, बेटा! यह तुम क्या कर रहे हो?

माआ! णत्थि इदं रयचुण्णं, पस्स पस्स एदम्मि सुवण्णं।
णिक्खित्तं करमेवं भासिय, सूदे असमत्थो उट्ठाविय।।20।।

20. शिल्पी कहता है–माँ! यह धूलि–चूर्ण नहीं है। देखो! देखो! इसमें यह सोना है। ऐसा कहते हुए जब शिल्पी ने अपना हाथ उस बोरे में डाला तो वह उस हाथ को बाहर निकालने में असमर्थ हो गया।

णित्तेजो सिप्पी पुण रूवदि, माया पस्सदि रक्खदु कोक्कदि।
पावभावफलमेदं पुत्त! धम्मे कज्जे लोहं मुंच।।21।।

21. शिल्पी निस्तेज हो गया और रोने लगता है। माँ देख रही है कि वह बुला रहा है और कह रहा है 'मुझे बचाओ।' माँ कहती है–पुत्र! यह पापभाव का फल है। तू धर्मकार्य में लोभ को छोड़ दे।

पस्स काललाजादं पुत्तं, महोदारचित्तं तुं तुच्छं।
अत्थि सुदो मे जदि तो पुत्त! हत्थकलं मा विक्कसि अत्थ।।22।।

22. देख! एक तो वह कालला माता का महान् उदारचित्त वाला चामुण्डराय जैसा पुत्र है और एक तुम जैसा तुच्छ पुत्र है। यदि तुम मेरे पुत्र हो तो, बेटे! इस कार्य में अपनी हस्तकला को मत बेचो।

जणणीवयणं सोच्चा सिप्पी, उरलोहं धोवदि सो दप्पी।
जाचदि खमं च आसीवादं, देउ करोमि हं णिब्बाधं।।23।।

23. माँ के वचनों को सुनकर दर्प से भरा वह शिल्पी अपने हृदय के लोभ को धो देता है। क्षमा याचना करता है और कहता है कि मुझे आशीर्वाद दो कि मैं इस कार्य को निर्बाध कर सकूँ।

णमोक्कारमंतस्स सुजावं, आइरियादि कुणदि जणजादं।
जिणगंधोदगफासे देहे, संचारो सत्तीए अंगे।।24।।

24. उसी समय आचार्य नेमिचन्द्र गुरू अन्य लोगों के साथ णमोकारमन्त्र का श्रेष्ठ जाप करते हैं। जिनेन्द्र भगवान के गंधोदक का शरीर पर स्पर्श होने पर शरीर में शक्ति का संचार होने लगता है।

सिप्पी णीरोगो संजादो, सुहकज्जे लग्गदि सुहभावो।
णिल्लोहो एयग्गमणेणं, महाभव्वपडिमाघडणट्ठं।।25।।

25. शिल्पी निरोग हुआ। शुभ भाव वाला शिल्पी फिर शुभ कार्य में लग जाता है। वह लोभ रहित, एकाग्रमना होकर यहाँ भव्य प्रतिमा को घड़ने के लिए।

कदो समो रत्तीए दिवसे, पादे अंगुलिणहससिभासे।
जंघा भुजा माहवीलित्ता, वुंचिदकेसा अंबुजणेत्ता।।26।।

26. रात दिन परिश्रम करता है। उसने चरणों में अंगुलि के नखों को चन्द्रमा की आभा वाले, जंघा, भुजा माधवी बेलों से लिप्त, घुंघराले केश और कमल के समान नेत्र बनाए।

अणुवमसुंदरमहासरीरं, घडिदं रूवं णाहिगरीरं।
पडिमापुण्णं दिट्ठं हियए, हरिसोल्लासो णरणरीए।।27।।

27. अनुपम, सुन्दर रूपवाला, गंभीर नाभि सहित महाशरीर बनाया। उस प्रतिमा को पूर्ण देखकर नर–नारी के मन में हर्ष उल्लास उत्पन्न हुआ।

छम्मासे हि मुत्तिपदिट्ठा, महाभिसेगो कदो विसिट्ठा।
गोम्मटेससुहणामं दिण्णं, जय जय जय जिडपडिमापुण्णं।।28।।

28. छह मास में ही मूर्ति की प्रतिष्ठा हुई। बाद में अतिविशिष्ट महाभिषेक हुआ। 'गोम्मटेस' शुभ नाम दिया। ऐसी जिन प्रतिमा का पुण्य सदा जयवन्तहो, जयवन्तहो, जयवन्तहो।

(दोहा-छन्द)

गोम्मटेसजिणवस्स मे, भत्तीराएणत्थ।
कदा संथुदी भावदो, गमणं होज्ज तत्थ।।29।।

29. मैंने यह गोम्मटेस जिनवर की संस्तुति भाव से, भक्तिराग से की है। मेरी भावना है कि मेरा भी वहाँ गमन हो।

मुणिपणम्मसायर रचिय, भत्तिं इमं पढेउ।
सो सुरणरवरवंदिदो, मोक्खं सिग्घ लहेउ।।30।।

30. मुनि प्रणम्य सागर रचित इस भक्ति को जो पढेगा वह देव, मनुष्यों से वंदित होता हुआ शीघ्र मोक्ष को प्राप्त करेगा।

(श्लोक)

भिवाणीणयरे कदा पुण्णा सुरयणा मए।
सुक्कपक्खे य मासम्मि मगसिरे दुवे तिही।।31।।

31. मैंने यह श्रेष्ठ रचना भिवानी नगर (हरियाणा) में मगसिरमास के शुक्लपक्ष की दोज तिथी को भगवान नेमिनाथ जिनालय में पूर्ण की है। तदनुसार दिनांक 20-11-2017 है।

प्रस्तावना

तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के प्रथम गणधर श्री गौतम स्वामी की वाणी आज भी विद्यमान है। यह हमारा सौभाग्य है कि गौतम गणधर स्वामी की वाणी आचार्य परम्परा से शिष्य-प्रशिष्य के माध्यम से निरन्तर आती हुई आज भी उपलब्ध है। महाश्रमण निर्ग्रन्थ भट्टारक ज्ञातृवंशीय अन्तिम तीर्थंकर श्री वर्धमान महावीर भगवान की शिष्य परम्परा में जो छह आवश्यक प्रतिदिन के लिए कहे गये हैं उनमें प्रतिक्रमण पाठ पढ़ना सभी शिष्यों के लिए अनिवार्य है। यह प्रतिक्रमण प्रतिदिन चौबीस घण्टे में दैवसिक, रात्रिक के भेद से दो बार अनिवार्य रूप से किया जाता है। इसके अतिरिक्त, अष्टमी की आलोचना, चतुर्दशी आदि के भेद से सभी प्रतिक्रमणों का विधान भी है। इन सभी प्रतिक्रमणों के मुख्य रचनाकार श्री गौतम गणधर स्वामी हैं। दैवसिक प्रतिक्रमण, बृहत्प्रतिक्रमण एवं आलोचना के भेद से तीन प्रकार के प्रतिक्रमण पाठ के विभाग हैं। इन तीनों ही तरह के मुख्य प्रतिक्रमण के भेदों की टीका पं. प्रभाचन्द्र जी ने की है। जो अपने आप में प्रतिक्रमण के भावों को स्पष्ट करने वाली एकमात्र संस्कृत टीका है। इस टीका के प्रारम्भ में, तीनों प्रतिक्रमण के प्रारम्भ में उन्होंने इस बात का स्पष्टीकरण किया है कि गौतम स्वामी ने यह प्रतिक्रमण इस दुष्षम काल में मुनियों के लिए प्रतिदिन दुष्परिणाम आदि से उपार्जित कर्मों की शुद्धि के लिए बनाया है। वह 'दैवसिक प्रतिक्रमण' की टीका के प्रारम्भ में कहते हैं-' श्री गौतमस्वामी मुनीनां दुष्षम-काले दुष्परिणामादिभिः प्रतिदिनमुपार्जितस्य कर्मणो विशुद्ध्यर्थं प्रतिक्रमणलक्षणमुपायं...।'

इसी तरह बृहत्प्रतिक्रमण की टीका के प्रारम्भ में भी लिखा है कि-

'श्री गौतमस्वामी दैवसिकादिप्रतिक्रमणादिभिर्निराकर्तुमशक्यानां दोषाणां निराकरणार्थं बृहत्प्रतिक्रमणलक्षणमुपायं.....।'

इसी तरह आलोचना के प्रारम्भ में लिखा है कि- 'श्री गौतमस्वामी मुनीनां दुष्षम-काले.....।'

इतना ही नहीं, दैवसिक प्रतिक्रमण के अन्त में भी एक काव्य रचकर गौतमगणधर कृत रचना का उल्लेख किया है।

'श्रीमद्गौतमनामभिर्गणधरैर्लोकत्रयोद्योतकैः' इत्यादि। तथा बृहत्प्रतिक्रमण के अन्त में भी एक स्वतंत्र काव्यरचना में कहा है कि-'मत्वेदं गणभृत्प्रतिक्रमणया' इत्यादि।

इसके अतिरिक्त, गौतम स्वामी विरचित एक चैत्यभक्ति और है जिसका कृतित्व भी संस्कृत टीकाकार ने गौतम स्वामी के लिए किया है। 'जयति भगवान्' इत्यादि। इस चैत्य भक्ति का 'द्रव्यसंग्रह' के संस्कृत टीकाकार ने भी उल्लेख किया है।

प्रतिक्रमण ग्रन्थत्रयी-एक संक्षिप्त मूलाचार -

प्रतिक्रमण ग्रन्थत्रयी अपनी टीका के साथ सभी पदों का जब व्याख्यान करती है तो मूलाचार का स्मरण हो आता है। अट्ठाईस मूल गुणों का कथन हो या उत्तरगुणों की बात हो, सभी का वर्णन इस कृति में उपलब्ध है। प्रत्येक महाव्रत का वर्णन, समिति-गुप्ति में लगने वाले अतिचारों का वर्णन, महाव्रत-समिति-गुप्ति के पालन की सम्पूर्णता की विधि बता देता है। प्रत्येक श्रमण के लिए प्रतिदिन मूलाचार जैसे बृहत्काय ग्रन्थ का स्वाध्याय करना भले ही संभव न हो किन्तु प्रतिक्रमण के पदों का अर्थ सहित अध्ययन संक्षेप में करने से मूलाचार का अध्ययन हो जाता है। प्रत्येक महाव्रत आदि गुणों का जो वर्णन इस ग्रन्थ में अत्यन्त बारीकी और विस्तार के साथ उपलब्ध होता है वह मूलाचार, भगवती आराधना जैसे विशाल ग्रन्थों से भी नहीं हो पाता है। इसका भी कारण यह है कि इस कृति में व्रतों के दोष लगने का आधार और भाव इन दोनों का विस्तार से वर्णन है। बृहत्प्रतिक्रमण में प्रत्येक महाव्रत का जो सविस्तार कथन है वह महाव्रतों की महनीयता को अत्यधिक बढ़ा करके व्रतों के निर्दोष परिपालन हेतु बलात् प्रेरित करता है।

प्रतिक्रमण ग्रन्थत्रयी-चित्त संस्कार प्रमार्जनी -

अनादिकाल से संबद्ध चित्त के संस्कारों का प्रमार्जन इसी प्रतिक्रमण से होता है। कभी-कभी पाठक को लग सकता है कि बार-बार उसी बात को दोहराने से क्या प्रयोजन है? तो इसका वास्तविक रहस्य यह ही है कि प्रतिक्रमण के इन पदों को बार-बार दोहराने से ही चित्त के बुरे संस्कार, मिथ्या संस्कार टूट कर अच्छे संस्कार में परिवर्तित होते हैं। यह एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है और मनोविज्ञान का सिद्धान्त है कि आप जो चाहते हैं, उसे बार-बार दोहरायें, बार-बार बोलें, बार-बार पढ़ें, बार-बार सोचें, बार-बार स्मरण में लाएं। यह मनोविज्ञान पूर्वाचार्यों को ज्ञात था तभी वह एक-एक महाव्रत की भावना को बार-बार एक साथ और अलग-अलग कहलवाकर चित्त को मार्जित करते हैं। जैसे कि मैं अण्णाणं वोस्सरामि-अज्ञान को छोड़ता हूँ। सण्णाणं अब्भुट्ठेमि- सम्यग्ज्ञान को प्राप्त करता हूँ। इत्यादि। इस तथ्य का उपसंहार भी इस भावना में हो जाता है कि 'अभावियं भावेमि भावियं ण भावेमि' अर्थात् जिसकी मैंने अभी तक भावना नहीं की है उसकी भावना करता हूँ और जिसकी भावना की है उसकी भावना नहीं करता हूँ।

श्री प्रभाचन्द्र कृत टीका वैशिष्ट्य-

प्रतिक्रमण पाठ की एक मात्र संस्कृत टीका उपलब्ध है जो इस मूल ग्रन्थ के साथ निबद्ध है। इस संस्कृत टीका की बहुत सी विशेषताएँ है जो सर्वगोचर होते हुए भी उल्लेखनीय हैं। टीका सरल संस्कृत में, अत्यन्त संक्षिप्त है फिर भी विषय-स्पष्टीकरण के दृष्टिकोण से, मूलपाठ का निर्णय करने के दृष्टिकोंण से और क्वचित् शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

1. यदि यह टीका उपलब्ध न होती तो हम पूर्णतया प्रामाणिकता से यह नहीं कह पाते कि यह प्रतिक्रमण-पाठ श्री गौतम गणधर देव रचित है। वर्तमान में इस कलिकाल के मध्य में भी भगवान तीर्थंकर वर्धमान के अतिनिकटवर्ती महान् पुण्यशाली, ऋद्धिसम्पन्न गणधर परमेष्ठी की रचना आज मौजूद है, यह बात ही श्रद्धालु के लिए बड़े सौभाग्य की है और इसी कारण उस प्रतिक्रमण को बार-बार पढ़ने पर भी उत्साह बराबर बना रहता है। श्री गौतम स्वामी ने मुनियों के लिए इस दुष्षमकाल में दुष्परिणामों से उपार्जित कर्मों की विशुद्धि के लिए यह प्रतिक्रमण लिखा है, ऐसा टीकाकार के प्रतिक्रमण-त्रयी के प्रत्येक अध्याय के प्रारंभ में अपनी एक स्वतन्त्र पद्य रचना के द्वारा स्पष्ट किया है।
2. इस टीका में श्रीवर्धमान स्वामी के नामों के विषय में तीन बार वर्णन आता है। प्रथम वर्णन में 'श्रीमते वर्धमानाय' श्लोक की व्याख्या में 'नमितविद्विषे' पद की व्याख्या करते हुए संगमदेव आदि शत्रुओं को चरणों में नमाने की बात कही है। द्वितीय बार निषीधिका-दण्डक में 'महदिमहावीरवड्ढमाण' पद की व्याख्या में कहा है कि यहाँ अन्तिम तीर्थंकर देव के दो नामों का उल्लेख है। महति महावीर और वर्धमान। वर्धमान नाम का सम्बन्ध गर्भावतार आदि की पूजा और रत्नवृष्टि आदि आश्चर्यों से किया है। पश्चात् पूजातिशय और ज्ञानातिशय से भी व्युत्पत्ति-परक अर्थ किया है तथा रूद्र के द्वारा किए गए उपसर्ग से चलायमान न होने के कारण 'महतिमहावीर' नाम रखने का हेतु दिया है। तीसरी बार 'महदि महावीर वड्ढमाण बुद्ध-रिसिणेा चेदि।' इस गणधर-वलय के अंतर्गत आए पद की व्याख्या में किया है। यहाँ पर 'वर्धमान' शब्द की पूर्वोक्त व्याख्या के साथ-साथ वीर, महावीर, महतिमहावीर इन तीन नामों की और व्याख्या सहेतुक की है। शंकित वृत्ति वाले इन्द्र के लिए अपनी सामर्थ्य दिखाने के लिए पादांगुष्ठ से मेरू चालन की बात पर 'वीर' नाम रखा गया। कुमार-काल में संगमदेव ने भयानक सर्प का रूप बनाकर डराया। नहीं डरने पर 'महावीर' नाम पड़ा। और जिस रूद्र कृत उपसर्ग की बात पहले भी की थी उसी 'महति महावीर' नाम में उस उपसर्ग को वाराणसी में होना बताया है।

   यह विषय जितना पढ़ने में रोचक प्रतीत होता है उतना ही विद्वानों की दृष्टि में परम्परागत भेद और प्रामाण्य कोटि में रखने के लिए विवादित भी बना है। कारण भी स्पष्ट है-

   पादांगुष्ठ से मेरू चालन की बात पद्मपुराण आदि कुछ पुराणों से मेल खाती है, वहीं उत्तरपुराण आदि से असंगत प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त, कुछ विशेषता पर ऊहापोह करना भी आवश्यक है, जैसे- उत्तरपुराण में उपसर्ग का वर्णन उज्जयिनी नगरी में होना कहा है किन्तु यहाँ वाराणसी में लिखा है।

पाँच नामों का उल्लेख क्यों नहीं किया? यदि कहो कि जो नाम प्रासंगिक थे उन्हीं का उल्लेख किया, अन्य का नहीं, सो बात भी नहीं है क्योंकि वीर, महावीर नाम का उल्लेख मूलपद में नहीं है। फिर भी, उनका वर्णन स्वयं प्रेरित होकर किया है। यह वर्णन करते हुए भी 'सन्मति' नाम का किंचित् भी वर्णन क्यों नहीं किया? यह भी विचारणीय है। इसके साथ ही 'अतिवीर' नाम का भी कोई उल्लेख नहीं है।

3. यदि यह टीका न होती तो शायद बहुत से ऐसे विषय थे जो कि अनजाने ही बने रहते। आज न तो ऐसे कोई परम्परागत आचार्य ही रहे जिन्हें प्रतिक्रमण के प्रत्येक पद का मौखिक ज्ञान परम्परा से प्राप्त हो और न ही लिखित-उपलब्ध जैनवाङ्मय में ऐसी स्पष्ट प्ररूपणा है जिससे कि प्रतिक्रमण के विशिष्ट पदों का खुलासा हो सकता हो। इसलिए एक मात्र उपलब्ध यह टीका साहित्यिक, ऐतिहासिक और परम्परागत ज्ञान की धरोहर के रूप में उपलब्ध होती हुई महा उपकारी है। यहाँ हम कुछ उस तथ्य पर प्रकाश डालना उचित समझते हैं जो मूलाचार, भगवती आराधना आदि उपलब्ध ग्रन्थों में भी उपलब्ध नहीं होता है।

   अ- निषीधिका शब्द के सत्रह (17) अर्थों का प्रतिपादन कहीं भी उपलब्ध नहीं होता है। इसी के साथ 'णिसीधिए' के व्याख्यान में जो गाथा दी है उसका भी प्रयोग और अर्थ अप्राप्त है।

   ब- बारह प्रकार की भिक्षुप्रतिमा, सोलह प्रकार के प्रवचन, सत्रह प्रकार के असंयम, अठारह प्रकार के असांपराय, उन्नीस प्रकार की नाथाध्ययन कथाएँ, बीस असमाधिक के स्थान, छब्बीस प्रकार की पृथिवियाँ, सत्ताईस अनगार गुण, उनतीस पापसूत्रों के प्रसंग, तीस मोहनीय के स्थान, तैंतीस अत्यासदना इत्यादि दैवसिक प्रतिक्रमण के पदों का खुलासा इसी टीका से होता है।

   स- पाक्षिक प्रतिक्रमण में आई भावनाओं में तृतीय व्रत की पाँच भावनायें 'अदेहणं भावणं चादि' इस गाथा मात्र से अर्थ-गम्य नहीं होता है। इस टीका से ही इस गाथा का अर्थ ज्ञात हो पाता है। इसी तरह पंचम महाव्रत की भावना 'सचित्ताचित्त' गाथा का अर्थ भी टीका से ही ज्ञात होता है।

   द- अनेक ऐसे पद जो मात्र प्रतिक्रमण में ही दोष रूप कहे हैं उनकी व्याख्या अन्यत्र ग्रन्थों में नहीं मिलती है। जैसे- अच्छा कारिदं, मिच्छामेलिदं, आमेलिदं, वामेलिदं, अपसत्थसंकिलेसपरिणामाणं, पील, सल्लघट्टाणं सल्लघत्ताण, अंगंगेसु इत्यादि।

4. इसी के साथ इस टीका में कुछ ऐसे भी विषय हैं जो पूर्वाचार्यों की कृति अनुसार ज्यों के त्यों रखे गए हैं। जैसे-

   अ- पच्चीस भावनाओं का वर्णन तत्त्वार्थसूत्र के अनुसार है।

ब- पच्चीस क्रियाओं का वर्णन सर्वार्थसिद्धि के अनुसार ज्यों का त्यों है।

स- दस मुंडन के लिए मूलाचार की गाथा ज्यों की त्यों है।

द- दस प्रकार के धर्मध्यानों के विषय में भी अन्वेषण किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त आठ प्रकार की शुद्धियाँ, प्राण, भूत , सत्त्व का वर्णन, नव ब्रह्मचर्य की गुप्ति, शील, गुण के भेद इत्यादि पूर्वाचार्यों के अनुसार ही उपलब्ध होते है।

5. **व्याकरण वैशिष्ट्य**- इस टीका में समय-समय पर शब्दसिद्धि के लिए संस्कृत-प्राकृत के व्याकरण सम्बन्धी सूत्रों का और नियमों का भी उल्लेख मिलता है जिससे टीकाकार का प्राकृत और संस्कृत भाषा-गत वैदुष्य प्रवीण प्रतीत होता है। जैसे-

अ- लिम्प् धातु से लेश्या शब्द बनाने के लिए व्याकरण के तीन सूत्रों का प्रयोग करके दिखाया है जो 'तिण्हं लेस्साणं' की व्याख्या में दृष्टव्य है।

ब- 'पाणभोयणाए' इस प्राकृतपद में पान और भोजन दो शब्द हैं जिनके समास होने पर द्विवचन होना चाहिए फिर एक वचन का प्रयोग क्यों?

तो इसके समाधान में लिखा है कि प्राकृत में द्विवचन नहीं होता है इसलिए एकवचन का प्रयोग किया है।

प्राकृत भाषा के अध्येताओं के लिए इस पर एक नई बात यह ध्यान रखने योग्य है कि अधिकतर 'द्विवचन' का प्रयोग जहाँ करना होता है वहाँ बहुवचन का प्रयोग किया जाता है। उपर्युक्त टीका के नियम से यह भी स्पष्ट होता है कि 'द्विवचन' के प्रयोग का स्थान 'एकवचन' भी ले सकता है।

स- प्राकृत में प्रयोग हुआ-कोह सल्लाए। इस पर प्रश्न उत्पन्न हुआ 'शल्य' शब्द स्त्रीलिंग तो है नहीं, फिर सल्ला बनाकर विभक्ति लगाकर पद रचना कैसे संभव हुआ ? तो टीकाकार ने इसी का समाधान इन शब्दों में दिया कि 'प्राकृत में लिंग व्यभिचार भी देखा जाता है।'

द- 'अविसंति' इस क्रिया पद की व्याख्या आविशन्ति क्रिया से की है। फिर प्रश्न उठता है कि आविसंति का अविसंति कैसे हो गया तो उत्तर दिया कि गुरू स्वर, भी ह्रस्व होने का नियम है।

इ- समय-समय पर जैनेन्द्रव्याकरण के सूत्रों का भी प्रयोग दिखाया है। जैसे- समितिकलिकभारः की व्याख्या में (जै. 4/3/173) सूत्र का, सिंहसेन का सिंहसैन्यं सिद्ध करते हुए (जै. 3/1/139) सूत्र का प्रयोग है। इसी तरह आमोसहिपत्ताणं में (जै. 1/3/20) का सूत्र का प्रयोग है। जरायिकः में (जै. 4/3/214) का प्रयोग है। संस्वेदिमः में (जै. 3/1/61) का प्रयोग है। इसके अलावा 'उपस्थानमंडल' शब्द की सिद्धि में मंडल प्रत्यय स्वार्थ में प्रयुक्त हुआ है और जो प्रशस्तार्थ वाची है जैसे कि कपोलपाली में पाली शब्द है। इत्यादि विवेचना टीकाकार की प्रशंसनीय प्रज्ञा की परिचायक है।

फ- न केवल संस्कृत शब्द की व्याकरणात्मक सिद्धि है अपितु प्राकृत लक्षणों की व्याकरण का यथासमय प्रयोग किया है। जैसे- बृहत् प्रतिक्रमण में 'देवियं वा माणुसियं वा तिरिच्छयं वा' इस प्रकार का पाठ होने पर भी 'देवीसु वा.. ' इत्यादि अर्थ को जानना चाहिए क्योंकि 'अन्यार्थेऽन्या' इस सूत्र के बल से प्राकृतलक्षण का आश्रय लेकर सप्तमी विभक्ति के अर्थ में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग किया गया है। इसी तरह तृतीय महाव्रत की भावना में 'देहणं' शब्द से 'देहधनं' शब्द को दिखाया है। ध कार का लोप 'प्रषोदरादीनि यथोपदिष्ट....' इस सूत्र से किया गया है। इसी तरह 'अंगंगेसु' इस पद में एक अंग शब्द और जुड़ा है जिसका कि लोप हुआ है। आलोचना प्रकरण में 'अन्यार्थेऽन्या' इस सूत्र का प्रयोग तृतीया के अर्थ में सप्तमी विभक्ति का प्रयोग करके भी दिखाया है।

कुछ पाठ भेदों पर विचारः-

चाहे दैवसिक प्रतिक्रमण हो या पाक्षिक प्रतिक्रमण, अन्त में जब यह पढ़ा जाता है कि 'जाव अरिहंताणं भयवंतणां पज्जुवासं करेमि तावकालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।' इस पाठ में तावकालं की जगह 'ताव कायं' यह पढ़ना चाहिए। इस टीका से यह बात ज्ञात हुई कि ताव का अर्थ ही तावत्कालं यानि उतने काल तक होता है। 'काय' शब्द की व्याख्या टीका में आगे दिए गए पावकम्मं और दुच्चरियं इन दोनों पदों का विशेषण रूप से स्वीकारा है। टीका के अनुसार-

कायं वोसरामि-कायं व्युत्सृजामि त्यजामि। तत्रोदासीनो भवामीत्यर्थः-

1. कथम्भूतं कायम् ? पावकम्मं पापं कर्म यस्मात्....

अर्थात् उस काय को मैं छोड़ता हूँ जो कि पाप कर्म रूप है और दुष्ट चेष्टाएँ जिसकी हैं।

अब तक कई प्रकाशनों से कई प्रतिक्रमण पाठ छप चुके हैं किन्तु 'तावकायं' यही सही पाठ नहीं संजोया गया। अपेक्षा है प्रकाशक आगे

इस पाठ का ध्यान रखेंगे। 'तावकालं' पाठ मात्र 'अड्ढाइज्जदीव दो समुद्वेसु' वाले दण्डक के अन्त में ही पढ़ना चाहिए क्योंकि उसकी टीका उसी प्रकार है।

2. इसी तरह इसी पाठ के साथ टीका में एक जगह 'वोसरामि' और एक जगह 'वोसिरामि' लिखा है, 'वोस्सरामि' नहीं, जो कि बहुधा प्रचलित है। इस तरह के अन्य पाठभेद भी हैं जिन्हें मूल से देखकर ही पाठक समझ सकते हैं।
3. इमस्स णिग्गंथस्स ..... इत्यादि पाक्षिक प्रतिक्रमण के दण्डक में 'ण भूदं ण भविस्सदि' यह पाठ ही वर्तमान में छप रही किताबों में मिलता है। जबकि इस टीका में मूल के साथ- 'ण भूदं ण भव्वं ण भविस्सदि' ऐसा पाठ दिया है अत: बीच में 'ण भव्वं' यह पाठ छूटा ही आ रहा है। पुरानी छपी प्रतियों में तो कही-कहीं यह पाठ मिलता था।
4. पाक्षिक प्रतिक्रमण में चतुर्थ महाव्रत में 'देविएसु वा माणुसिएसु वा तिरिच्छएसु वा' यह पाठ वर्तमान में चलता है। जबकि टीका के अनुसार 'देवियं वा माणुसियं वा तिरिच्छयं वा' यह पाठ स्वीकृत है। हाँ इसका अर्थ 'देवीसु' इत्यादि इस सप्तमी विभक्ति अर्थ में करना, ऐसा लिखा है। मूल पाठ तो 'देवियं' इत्यादि ही पढ़ना चाहिए। 'देविएसु' इत्यादि पाठ आलोचना प्रकरण में है।
5. 'देवा वि तस्स पणमंति' इस पाठ की जगह कई प्रतियों में 'देवा वि तं पणमंति' यह पाठ सुधार कर लिखा गया है। संस्कृत की दृष्टि में तो सुधार ठीक है किन्तु प्राकृत भाषा में ऐसे प्रयोग होते हैं। यही षष्ठी विभक्ति का रूप 'तस्स' न होकर चतुर्थी विभक्ति का मानना चाहिए। नमस्कार अर्थ में नमस्कारार्थक धातु के साथ चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग हो सकता है, वही हुआ है।
6. अंचलिका में 'अंचेमि पूजेमि' लिखा रहता है तो कुछ लोग इसे अच्चेमि पुज्जेमि ठीक बताते हैं। यह उचित नहीं है, क्योंकि संस्कृत में भी 'अंच' धातु पूजा अर्थ में है। इसी तरह पुज् धातु का पुज्ज और पूज दोनों रूप होते हैं इसलिए चला आ रहा पाठ समुचित है। दूसरी बात यह भी है कि प्राकृत के शब्द और धातुएं पूर्णतया संस्कृत से निष्पन्न हों कोई जरूरी नही है। प्राकृत की अपनी धातुपाठावली है जो अपनी विशेषता रखती है। यदि ऐसा न होता तो संस्कृत की तरह प्राकृत में भी पठ् धातु होगी 'पढ़' नहीं होगी। इत्यादि।
7. अड्ढाइज्ज दीवदो समुद्वेसु 'वाले दण्डक में ण करेमि, ण कारेमि, करंतं पि ण समुणमणामि' यह पाठ उपलब्ध होता है। इसमें करंतं पि से पहले कई पुस्तकों में 'अण्णं' पद भी जोड़ा है। 'अण्णं करंतं पि' यह पाठ भी मूल का नहीं है। इसी के साथ 'कीरंतं पि ण समणुमणामि' यह पाठ भी मिलता है। यह भी मूल का नहीं है। इसकी संस्कृत टीका भी इस प्रकार है- 'अन्यं कुर्वन्तमपि सावद्यं योगं न समनुमन्ये।'

टीका की लोकप्रियताः-

आ. प्रभाचन्द्र जी की दश भक्ति की टीका 'क्रियाकलाप' के नाम से है एवं प्रतिक्रमण ग्रन्थत्रयी की यह टीका भी है जिसका कि कोई पृथक् नाम नहीं है। फिर भी यह 'क्रियाकलाप' के नाम से ही समझी जाती है। यह संस्कृत टीका एक ही है और पदों का अर्थ स्पष्ट करने के लिए सरल एवं संक्षिप्त है। इसलिए यह टीका लोकप्रिय रही है। लोकप्रियता के कुछ फायदे होते हैं। लोकप्रिय इसलिए नहीं कि जनसामान्य को इसकी जानकारी है, वह तो शायद है ही नहीं। साधुसंघ भी वर्तमान में भक्ति और प्रतिक्रमण की टीका का अध्ययन ना के बराबर ही करते हैं। आचार्य गुरूदेव विद्यासागर जी की सदैव भावना रही है कि प्रत्येक श्रमण को दीक्षोपरान्त ग्रन्थत्रयी की टीका का अध्ययन अवश्य करना चाहिए। इसी कारण से आचार्यगुरूदेव दीक्षोपरान्त प्रत्येक शिष्य को ग्रन्थ का अध्ययन कराते हैं। स्वयं मैं भी आचार्य श्री के मुखारविन्द से इस ग्रन्थ को तीन बार पढ़ चुका हूँ। अध्ययन होता है तो नए चिन्तन आते भी हैं। बारीकियाँ पकड़ में आती हैं। कुण्डलपुर में साधुसंघ को पढ़ाते हुए एक नई बात कही कि आप लोग जो प्रतिक्रमण की शुरूआत में 'जीवे प्रमादजनिताः-' वाला पद्य पढ़ते हैं वह मूल प्रतिक्रमण का नहीं है। जब यह पाठ मूल प्रतिक्रमण का नहीं है फिर इसी काव्य से प्रतिक्रमण का प्रारंभ होना ही मैं टीका की लोकप्रियता मानता हूँ। यह सच है कि 'जीवे प्रमादजनिता' वाला काव्य टीकाकार का मंगलाचरण है। इसका एक कारण यह भी है कि जो मुद्रित प्रति मूल में उपलब्ध है उसमें इस काव्य पर नं. 1 पड़ा है उसके बाद मूल ग्रन्थ लिखने का कारण बताया है और फिर 'श्रीमते वर्धमानाय' श्लोक है जिस पर भी नं. 1 पड़ा है। यदि यह 'जीवे प्रमादजनिता' वाला पाठ मूल ग्रन्थकार गौतम स्वामी रचित होता तो 'श्रीमतेः' वाले श्लोक पर नं. 2 लिखा जाता। मूल सम्पादित कृति के संपादन में भी यह सावधानी रखी गई है जो प्रशंसनीय है। इसी तरह एक नमूना और दिखाते है-

ईयापथ शुद्धि भक्ति में भी एक पद निबद्ध है जो टीकाकार का मंगलाचरण है लेकिन वर्तमान में सभी प्रतियों में भक्ति के साथ निबद्ध होकर ही पढ़ा जाता है। वह पद्य इस प्रकार है-

जिनेन्द्रमुन्मूलितकर्मबन्धं प्रणम्य सन्मार्गकृतस्वरूपम्।
अनन्तबोधादिभवं गुणौघं क्रियाकलापं प्रकटं प्रवक्ष्ये।।

इस काव्य में स्पष्ट रूप से 'क्रियाकलाप' शब्द आया है जिससे टीकाकार का यह मंगलाचरण है, यह स्पष्ट प्रतीति में आता है। यह काव्य भक्ति की टीका में प्रारम्भ में लिखा भी है। यह काव्य कब कैसे ईयापथ भक्ति का अंग बन गया, यह विचारणीय है। इसका कारण यह भी है यह भक्ति भी अपने मूल में 'ईयापथे' इस काव्य पर ही समाप्त हो जाती है, बाद में सब जोड़ा हुआ लगता है। इसी तरह 'चैत्यभक्ति' में प्रारंभ में लिखित पद्य भी चैत्यभक्ति का ही बन गया है। वह पद्य इस प्रकार है-

'श्री गौतमादिपदमद्भुत-' यह पद्य भी चैत्य भक्ति का मंगलाचरण रूप में टीकाकार ने लिखा है।

कुछ विचारणीय तथ्य- यह टीका जब प्रतिक्रमण पर लिखी गई है तो वर्तमान में जो प्रतिक्रमण पाठ उपलब्ध होता है उस पाठ की पूरी की पूरी टीका क्यों नहीं रची गई। इसमें दो बातें सामने आती है-

1. जो पाठ सरल हो, सर्वगम्य हो इसलिए उसकी टीका करना उचित न लगा हो।
2. यह पाठ मूल नहीं प्रतिभासित हुआ हो या गौतमगणधरदेवकृत न प्रामाणित हुआ हो।

यदि पहली बात है तब तो सब ठीक है। लेकिन यदि दूसरी बात है तो वर्तमान में उपलब्ध प्रतिक्रमण का स्वरूप समय, परिस्थिति के अनुसार बनता हुआ, एक बृहद् रूप दिखाई देता है। यहाँ थोड़ी देर के लिए यदि पहली बात को सही मानकर के भी विचार करें तो भी सन्तुष्टि नहीं होती है। कारण कि कहाँ तो दुक्खक्खओ, पंचमहवदाणि आदि सरल पद की व्याख्या उपलब्ध है और कहीं वर्तमान में उपलब्ध पाठ, गाथाओं पर कुछ भी टीका उपलब्ध नहीं होती है। जो पाठ या गाथाएँ या दण्डक छूटे हैं इन पर भी विचार करना आवश्यक है। प्रतिक्रमण पाठ के प्रारम्भ के सभी श्लोक टीका में अनुपलब्ध हैं। जैसे-

1. पापिष्ठेन दुरात्मना-, खम्मामि सव्वजीवाणं-, रागबंध पदोसं-, हा दुट्ठकयं-, दव्वे खेत्ते.....,
2. श्रावक प्रतिक्रमण की टीका तो है ही नहीं।
3. पाक्षिक प्रतिक्रमण में सम्प्रति उपलब्ध श्रावक प्रतिक्रमण पाठ की भी टीका नहीं है। पढ़मं ताव सुदं मे आउस्संतो.....तिदियं अब्भोवस्साणं चेदि।
4. से अभिमद जीवाजीव....., जो एदाइं वदाइं ....., तं जहा ..... इत्यादि सभी पाठों की कोई टीका नहीं है। यह उपलब्ध टीका अभी तक संस्कृत हिन्दी संस्करण के साथ कहीं भी देखने में नहीं आई। इस टीका की बहु उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए तथा इसका संरक्षण सदैव बना रहे, इस हेतु हिन्दी अनुवाद के साथ यह ग्रन्थ आचार्य गुरूदेव श्री विद्यासागर जी की कृपा से सबके समक्ष है।

इत्यलम् ।

मुनि प्रणम्यसागर

रोहतक-पौष सुदी अष्टमी

26 दिसम्बर, 2017

विषयानुक्रमणिका

1.	इष्ट देवता नमस्कार	3
2.	दैवसिक प्रतिक्रमण की पीठिका दण्डक	5
3.	पच्चीस भावनाओं का वर्णन	9
4.	पच्चीस क्रियाओं का वर्णन	11
5.	दस प्रकार के धर्मध्यान	15
6.	सात प्रकार का संसार	19
7.	छह आवश्यक का कथन	19
8.	अतिक्रमादि चार दोषों का वर्णन	25
9.	निषीधिका शब्द के सतरह अर्थ	27
10.	महावीर के दो नामों के कारण	33
11.	अर्हंत आदि से लेकर चैत्य वृक्ष पर्यन्त मंगलों का कथन	33–37
12.	तीन लोक के सिद्ध स्थान	37
13.	निषीधिका दण्डक का वर्णन समाप्त	39
14.	दैवसिक प्रतिक्रमण के दण्डक	41
15.	19 नाथ अध्ययन का वर्णन	59
16.	20 असमाधि के स्थान	63
17.	23 सूत्रकृत अधिकार	65
18.	26 पृथ्वियों का वर्णन	67
19.	29 पापसूत्र का वर्णन	69
20.	30 मोहनीय के स्थान	69
21.	33 अत्या सादनाएं	71
22.	वीर भक्ति	81
23.	चौबीस तीर्थंकर भक्ति	89
24.	बृहत्प्रतिक्रमण	99
25.	गणधर वलय प्रतिक्रमण दण्डक समाप्त	107
26.	प्रथम महाव्रत का विस्तार से वर्णन	109
27.	द्वितीयादि महाव्रत का वर्णन	133
28.	चूलिका अर्न्तगत महाव्रती भावनाओं का कथन	139
29.	क्षमा याचना	145
30.	मूल पदों की अत्यासादना	147
31.	आलोचना	163
32.	परिशिष्ट	202

श्री गौतमस्वामिविरचिता

प्रतिक्रमण-ग्रन्थत्रयी

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

श्रीप्रभाचन्द्राचार्यविरचितटीकयाऽलङ्कृता

प्रतिक्रमणग्रन्थत्रयी

जीवे प्रमादजनिताः प्रचुराः प्रदोषा
यस्मात्प्रतिक्रमणतः प्रलयं प्रयान्ति।
तस्मादर्थममलं मुनिबोधनार्थं
वक्ष्ये विचित्रभवकर्मविशोधनार्थम्॥1॥

श्रीगौतमस्वामी मुनीनां दुष्षमकाले दुष्परिणामादिभिः प्रतिदिनमुपार्जितस्य कर्मणो विशुद्ध्यर्थं प्रतिक्रमणलक्षणमुपायं विदधानस्तदादौ मङ्गलार्थमिष्टदेवताविशेषं नमस्करोति–

श्रीमते वर्धमानाय नमो नमितविद्विषे।
यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा त्रैलोक्यं गोष्पदायते॥1॥

टीका—नमो नमस्कारोऽस्तु। कस्मै? वर्धमानाय अन्तिमतीर्थंकरदेवाय। कथम्भूताय? श्रीमते। श्री अंतरंग-बहिरंग-लक्षणाऽनंतज्ञानदर्शन-समवसरणादिरूपा विभूतिर्यस्यासौ श्रीमान्। तस्मै श्रीमते। पुनरपि किंविशिष्टाया? नमितविद्विषे नमिताः नमिताः प्रणामं कारिताः विद्विषः उपसर्गकारिणः संगमदेवादयः शत्रवः येन तस्मै (नमः) यस्य भगवतो ज्ञाने त्रिभुवनादयो भवतीत्याह-'यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा त्रैलोक्यं गोष्पदायते।' यस्य ज्ञाने सकलविमलस्वरूपेऽन्तर्गतं भूत्वा ग्राह्यतयाऽन्तः प्रविश्य त्रैलोक्यं गोष्पदायते गोष्पदमित्यात्मानमाचरति।

प्रतिक्रमणग्रन्थत्रयी

अन्वयार्थ–(जीवे) जीव में (प्रमादजनिताः) प्रमाद से उत्पन्न हुए (प्रचुराः) प्रचुर (प्रदोषाः) प्रदोष (यस्मात्) चूँकि (प्रतिक्रमणतः) प्रतिक्रमण से (प्रलयं) क्षय (प्रयान्ति) हो जाते हैं (तस्मात्) इसलिए (तदर्थं)–उन दोषों के क्षय के लिए (विचित्रभव-कर्मविशोधनार्थम्)–नाना प्रकार के भवों के कर्म का विशेष शोधन करने के लिए (मुनिबोधनार्थम्)–मुनि को समझाने के लिए (अमलं)–निर्दोषता को, (वक्ष्ये)–कहूँगा।

अर्थ—जीव-आत्मा में प्रमाद से प्रचुर दोष उत्पन्न होते हैं, उन दोषों का शोधन प्रतिक्रमण से होता है। ये दोष अनेक भवों में संचित कर्मों के कारण होते हैं, उन कर्मों का क्षय भी प्रतिक्रमण से होता है। इसलिए श्रमण को जाग्रत करने के लिए निर्दोष आचरण को कहूँगा।

विशेषार्थ—यह छन्द प्रतिक्रमण की टीका लिखने वाले श्री प्रभाचन्द्र आचार्य का मंगलाचरण है।

श्री गौतमस्वामी मुनियों को दुष्षमकाल में दुष्परिणाम आदि के द्वारा प्रतिदिन उपार्जित कर्मों की विशुद्धि के लिए प्रतिक्रमण लक्षण रूप उपाय को करते हुए सबसे पहले मंगल करने के लिए इष्टदेवता विशेष को नमस्कार करते हैं-

अन्वयार्थ—(श्रीमते)–श्री युत, (नमितविद्विषे)–शत्रुओं को नमन कराने वाले, (वर्धमानाय)–वर्धमान स्वामी के लिए, (नमः)–नमस्कार हो, (यज्ज्ञानान्तर्गतं)-जिनके ज्ञान के अन्तर्गत, (भूत्वा)–होकर, (त्रैलोक्यं)–तीन लोक, (गोष्पदायते)–गोष्पद के समान आचरण करता है।

अर्थ—जिनके ज्ञान के अन्तर्गत तीन लोक गोखुर के समान दिखते हैं, जिन्होंने विद्वेषियों को अपने चरणों में झुकाया है, जो समवशरण आदि वैभव से सहित हैं उन वर्धमान स्वामी के लिए नमस्कार हो।

टीकार्थ—नमो अर्थात् नमस्कार हो। किसके लिए ? **वर्धमानाय**- अन्तिम तीर्थंकर देव वर्धमान के लिए। कैसे हैं वह? **श्रीमते**- श्री अर्थात् अंतरंग और बहिरंग लक्ष्मी। (अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन आदि अंतरंग लक्ष्मी है और समवशरण आदि बहिरंग लक्ष्मी है)। ऐसी लक्ष्मी या विभूति जिनकी होती है वह श्रीमान् हैं, उनके लिए नमस्कार हो। और क्या विशेषता है? **नमितविद्विषे**- संगमदेव आदि उपसर्ग करने वाले शत्रुओं को जिन्होंने नमाया है अर्थात् प्रणाम कराया है, उनके लिए नमस्कार हो। जिन भगवान का ज्ञान किस प्रकार का है? **यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा त्रैलोक्यं गोष्पदायते**-सकल विमल रूप जिनके ज्ञान में तीन लोक अन्तः प्रवेश करके गोष्पद के समान आचरण करते हैं।

विशेषार्थ—गोष्पद-गोखुर को कहते हैं। जिनके ज्ञान में तीन लोक गोखुर के समान दिखते हैं उनके ज्ञान की यहाँ विशेषता दर्शायी है।

अथेष्टदेवतानमस्कारानन्तरं दैवसिक-पाक्षिक-चातुर्मासिकभेदेन त्रिप्रकाराणां प्रतिक्रमणानां मध्ये दैवसिकप्रतिक्रमणायास्ता-वत्पीठिकादण्डकमाह-

'इच्छामि भंते।' इत्यादि।

टीका—भंते भगवन्। **इच्छामि** अभिलषामि। किं कर्तुम्? **आलोचेदुं** आलोचयितुं विशुद्धिं कर्तुम्। क्व? **दिवसियम्हि**। दिवसे भवो दैवसिकः। 'तत्र भव ' इत्यस्मिन्नर्थे ' कालाट्ठञ् ' इति ठञ्। यः कश्चित्प्रमादादेर्व्रतसमितिगुप्त्यादौ दोषः सञ्जातस्तस्मिन्। तत्थ तत्र। व्रतानि तावत्पञ्च। तेषु मध्ये **पढमं महव्वदं** प्रथमं महाव्रतं **पाणादिवादादो वेरमणं** इन्द्रियादिदशप्रकारप्राणानामतिपातो व्यपरोपणं विनाशनं तस्मात्। वेरमणं विरमणं व्यावृत्तिः। विरमणमेव वैरमणम्। प्रज्ञादित्वात्स्वार्थिकोऽण्। अभिसन्धिकृतो हि नियमो व्रतम्। महत् त्रसस्थावरजीववधाद्विरतेर्महद्भिरनुष्ठितत्वान्मोक्ष-लक्षणार्थसाधकत्वाच्चोत्कृष्टं व्रतं महाव्रतम्॥ तथा **द्वितीयं** महाव्रतं **मुसावादादो वेरमणं** मृषावादाद्विरमणम्॥ तथा **तदियं** तृतीयं महाव्रतं **अदत्तादाणादो वेरमणं** केनचिदप्यदत्तस्य वस्तुन आदानं ग्रहणं तस्माद्विरमणम्॥ तथा चतुर्थं महाव्रतं **मेहुणादो वेरमणं** मिथुनस्य कर्म मैथुनं स्त्रीपुरुषयोः कामोद्रेकात्सरागं चेष्टितम्। तस्माद्विरमणम्॥

अर्थ - अब इष्टदेवता को नमस्कार करने के बाद दैवसिक-पाक्षिक-चातुर्मासिक भेद से तीन प्रकार के प्रतिक्रमणों में से सर्वप्रथम दैवसिक प्रतिक्रमण की पीठिका दण्डक को कहते हैं-

टीकार्थ—भंते! हे भगवन्! मैं इच्छा करता हूँ, अभिलाषा करता हूँ। क्या करने की? आलोचना करने की, विशुद्धि करने की। दिवस में जो होता है वह दैवसिक है। 'तत्र भव' इस अर्थ में कालाट्ठञ् इस सूत्र से ठञ् प्रत्यय होता है। तभी दिवस शब्द से दैवसिक शब्द बनता है।

जो कुछ प्रमाद आदि से व्रत, समिति, गुप्ति आदि में दोष उत्पन्न हुआ उसमें दिवस सम्बन्धी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ।

व्रत पाँच होते हैं। उनमें प्रथम महाव्रत प्राणातिपात से दूर होना है। इन्द्रिय आदि दश प्रकार के प्राणों का अतिपात अर्थात् व्यपरोपण या विनाश है, उससे व्यावृत्ति (दूर होना) प्रथम महाव्रत है।

विरमण शब्द से ही 'प्रज्ञादित्वात्स्वार्थिकोऽण्' इस व्याकरण के सूत्र से वैरमण शब्द अण् प्रत्यय लगाकर बनता है। संकल्पपूर्वक लिया गया नियम ही व्रत कहलाता है। त्रस और स्थावर जीवों के वध से विरत हो जाने से, महान पुरुषों के द्वारा अनुष्ठान किये जाने से और मोक्ष लक्षण रूप अर्थ का साधक होने से यह व्रत उत्कृष्ट या महत् है इसलिए महाव्रत कहलाता है।

तथा द्वितीय महाव्रत मृषावाद (झूठ बोलने) से विरक्ति (दूर होना) है।

तथा तृतीय महाव्रत अदत्तादान से दूर होना है। किसी के द्वारा नहीं दी गई वस्तु का ग्रहण नहीं करना तृतीय महाव्रत है।

तथा चतुर्थ महाव्रत मैथुन से दूर होना है। मिथुन (दो के बीच) की क्रिया मैथुन है। स्त्री और पुरुषों का काम के उद्रेक से सराग चेष्टा करना मैथुन है। उससे दूर होना मैथुन से विरति नाम का चतुर्थ महाव्रत है।

विशेषार्थ—यहाँ दो प्रकार से मैथुन की परिभाषा की है। एक सामान्य है जिसमें दो के बीच की क्रिया मैथुन कही है। इस परिभाषा से पुरुष और पुरुष के बीच, स्त्री और स्त्री के बीच, नपुंसक और नपुंसक के बीच या पुरुष और नपुंसक इत्यादि के मध्य जो शरीर के अंगों को छूना, सहलाना आदि काम के उद्रेक से या तीव्र राग के उद्रेक से जो कुचेष्टा की जाती है? वह सभी मैथुन क्रिया है। इससे भी ब्रह्मचर्य महाव्रत खण्डित होता है।

दूसरी परिभाषा स्त्री और पुरुष के बीच काम चेष्टा होना मैथुन कहा है जो विशेष है क्योंकि मुख्यता से लोग स्त्री पुरुष की काम चेष्टा को ही मैथुन समझते हैं। समलैंगिक के भी परस्पर सम्बन्ध से मैथुन कर्म होता है, जो अब्रह्म है यह प्रथम परिभाषा से स्पष्ट हो जाता है।

तथा पंचम महाव्रत परिग्रह से दूर होना है। बाह्य और अभ्यन्तर परिग्रह से व्यावृत्ति अपरिग्रह महाव्रत है।

तथा पञ्चमं महाव्रतं **परिग्गहादो वेरमणं** परिग्रहाद्बाह्यादभ्यन्तराच्च विरमणम्॥ तथा **छट्ठं अणुव्वदं राइभोयणादो वेरमणं** षष्ठमणुव्रतं रात्रिभोजनाद्विरमणम्। कथमेतस्याणुव्रतत्वमिति चेत्, हिंसादिवदत्र साकल्येन विरतेरसम्भवात्। रात्रावेव हि भोजननिवृत्तिरस्ति, न पुनर्दिवसे। एतेषु व्रतेषु च क्रियमाणेषु यः कश्चित्प्रमादाद्दोषो जातस्तमालोचयितुमिच्छामि।

इरियासमिदीए। ईरणमीर्या गमनमित्यर्थः। ईर्यायां गमनं समितिः [ईयासमितिः] जीवबाधापरिहारेण गमनमित्यर्थः। एतस्यां यः कश्चित्प्रमादाद्दैवसिको दोषस्तमालोचयितुमिच्छामि। तथा **भासासमिदीए**। हित-मित-निश्चितार्थपरिभाषणं भाषासमितिः। तस्याम्। **एसणासमिदीए**। अन्नादेरुद्गमादिदोषपरिवर्जनेन ग्रहणमेषणासमितिः। तस्याम्। **आदाणणिक्खेवणसमिदीए**। जीववधपरिहारेण संयमोपकरणादि-ग्रहणविसर्जनमादाननिक्षेपणसमितिः। तस्याम्। **उच्चारपस्सवणखेलसिंघाणयवियडिपइट्ठावणियासमिदीए**। उच्चारः पुरीषः। प्रस्रवणं मूत्रम्। **खेलसिंघाणय**। खेलो निष्ठीवनम्। शिंघाणको नासिकाविनिर्गतः श्लेष्मा। **वियडिपइट्ठावणियाए**। विकृतिर्गोमयादि। तस्याः प्रतिष्ठापनिकायामित्युपलक्षणमेतत्कुण्डिकाद्युपकरणप्रतिष्ठापनिकायाः। एतस्यां च यः कश्चित्प्रमादाद्दैवसिको दोषो जातस्तमालोचयितुमिच्छामि। तथा **मणुगुत्तीए**। मनोगुप्तौ। सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः। रत्नत्रयस्य गोपनं रक्षणं गुप्तिः। रत्नत्रयं वा गोपयति रक्षति पालयतीति गुप्तिः प्रशस्ता मनोवाक्कायाः। **वचिगुत्तीए**। वचनगुप्तौ। **कायगुत्तीए**। कायगुप्तौ। एतस्यां क्रियमाणायां यदि

तथा छठवां अणुव्रत रात्रिभोजन से विरक्ति (दूर होना) है।

शंका—इसे अणुव्रत क्यों कहा जाता है?

समाधान—हिंसा आदि की तरह इसमें पूर्णरूप से विरति सम्भव नहीं हैं इसलिए अणुव्रतपना है। क्योंकि इस अणुव्रत में रात्रि में ही विरति रहती है, दिवस में भोजन करने की विरति नहीं है।

इन व्रतों का पालन किये जाने पर जो कुछ प्रमाद से दोष लगा हो उसकी मैं आलोचना करने की इच्छा करता हूँ।

ईर्या समिति में - ईरण अर्थात् गमन करना ईर्या है। गमन करते समय समिति होना ईर्या समिति है। जीवों को बाधा न हो, इस तरह बच कर चलना ईर्या समिति है। इस ईर्या समिति में जो किसी प्रमाद से दिवस में दोष लगा हो उसकी आलोचना करने की मैं इच्छा करता हूँ।

भाषा समिति में- हित-मित (थोड़ा) और निश्चित अर्थ को कहना भाषा समिति है। उसमें लगे दोषों की मैं आलोचना करता हूँ।

एषणा समिति में- उद्गम आदि दोषों से रहित अन्न आदि ग्रहण करना एषणा समिति है। उसमें लगे दोषों की मैं आलोचना करता हूँ।

आदान-निक्षेपण समिति में- जीवों का वध न हो इस भाव से संयम के उपकरण आदि का ग्रहण करना और रखना आदान-निक्षेपण समिति है। उसमें लगे दोषों की मैं आलोचना करता हूँ।

उच्चार-प्रस्रवण-खेल-सिंघाणक-विकृति प्रतिष्ठापन समिति में- उच्चार पुरीष है, जो शरीर का गुदा द्वार से निकलने वाला मल है। प्रस्रवण मूत्र है। खेल अर्थात् थूँक, सिंघाणक अर्थात् नाक से निकला मल है, विकृति प्रतिष्ठापन समिति में-विकृति गोबर आदि है। इन सब की प्रतिष्ठापना में अर्थात् भूमि पर छोड़ने में। ये उच्चार आदि उपलक्षण हैं, इससे कमण्डलु आदि उपकरणों के रखने में भी यही प्रतिष्ठापन समिति होती है। इस समिति में जो कुछ प्रमाद से दैवसिक दोष लगा हो, उसकी आलोचना करने की मैं इच्छा करता हूँ।

तथा **मनः गुप्ति में**- समीचीन रूप से योगों का निग्रह करना गुप्ति है। रत्नत्रय की रक्षा करना गुप्ति है। अथवा रत्नत्रय की जो रक्षा करती है, जो रत्नत्रय को पालती है वह गुप्ति है। वह गुप्ति प्रशस्त मन, वचन, काय रूप है। मन से रागादि से विरत होना मनोगुप्ति है।

वचन गुप्ति में-असत्य अभिप्रायों से वचन को रोकना अथवा मौन रहना वचन गुप्ति है।

काय गुप्ति में-काय की क्रिया का अभाव रूप कायोत्सर्ग करना काय से सम्बन्धित गुप्ति है।

इन गुप्ति आदि को करने में अथवा व्रत आदि के पालन करने में जो कोई दैवसिक दोष किसी कारण से हुआ हो उसकी आलोचना करने की मैं इच्छा करता हूँ।

प्रश्न—यह दोष किस कारण से उत्पन्न होते हैं?

वैतेषु व्रतादिषु क्रियमाणेषु यः कश्चिद्दोषो दैवसिकः कुतश्चित्कारणाज्जातस्तस्मिन्नालोचनां कर्तुमिच्छामि। कुतः कारणादसौ दोषो जातः? **कोहेण वा।** क्रोधेन वा कोपेन। **माणेण वा**। मानेन वा गर्वेण। वाशब्दः परस्परसमुच्चये। **माएण वा।** मायया परवञ्चनाभिप्रायेण। **लोहेण वा**। परिग्रहकांक्षया। **रागेण वा**। प्रीत्यनुबन्धेन[1]। **दोसेण वा**। द्वेषेणामर्षेण। **मोहेण वा**। अज्ञानेन हिताहितविवेकविकलतया। **हस्सेण वा।** क्रीडया वर्करेण[2] । **भयेण वा**। राजभयादिना। **पदोसेण वा**। प्रद्वेषेणातीवामर्षवशात्प्रचुरोत्पन्नोत्कटरोषेण। **पमादेण वा**। प्रमादोऽप्रयत्नपरत्वम्। **पिम्मेण वा**[3]। स्नेहेन। **पिवासेण वा**। विषयातिगृद्ध्या।

लज्जेण वा। लज्जाया। **गारवेण वा**। गुरुत्वेन महत्वाभिनिवेशेन। तथा **दंसणेसु**[4] **णाणेसु।** मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानेषु। तद्वत्सु च। **चरित्तेसु**। सामायिकछेदोपस्थापनापरिहार-विशुद्धिसूक्ष्मसाम्परायययथाख्यातलक्षणेषु तद्वत्सु चात्मसु विषये यः कश्चित्प्रमादात्क्रोधमानादिना दोषो जातः। तथा च **बावीसाए परीसहेसु** द्वाविंशतिसंख्येषु परीषहेषु। कर्मनिर्जरार्थं ये परीषह्यन्ते ते परीषहाः क्षुत्पिपासाशीतोष्ण दंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्याशय्याक्रोशवधयाचनालाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कार-पुरस्कारप्रज्ञाज्ञानादर्शनलक्षणाः।

---

1. बन्धनेन इतिपाठः।
2. वर्क्करेण इति झा-प्रतौ पाठः
3. 'पेमेण वा' इति झा-प्रतौ पाठः।
4. 'दंसणेसु' इति पाठस्य टीका नोपलभ्यते।

उत्तर—क्रोध से अर्थात् कोप से।

मान से अर्थात् गर्व से।

वा शब्द परस्पर में समुच्चय करने के लिए है। अर्थात् क्रोध से भी, मान से भी, दोष होते हैं। इसी तरह वा शब्द का अर्थ सर्वत्र लगाना।

माया से अर्थात् दूसरों की वंचना (ठगना) के अभिप्राय से।

लोभ से अर्थात् परिग्रह की आकांक्षा से।

राग से-प्रीति के बन्धन से अर्थात् द्वेष से अर्थात् आमर्ष से। आमर्ष क्रोध को कहते हैं।

मोह से अर्थात् अज्ञान से। वह अज्ञान है जिसमें हिताहित का विवेक नहीं रहता है।

हास्य से अर्थात् क्रीड़ा या वर्कर से। वर्कर अर्थात् मनोरंजन।

भय से अर्थात् राजा के भय आदि से।

प्रद्वेष से अर्थात् तीव्र कोप के कारण अत्यधिक उत्पन्न हुए उत्कृष्ट रोष से।

प्रमाद से अर्थात् प्रयत्न करने के अभाव से (सावधानी का अभाव)

प्रेम से अर्थात् स्नेह से।

पिपासा से अर्थात् पंचेन्द्रिय विषय की अति गृद्धि से अर्थात् अत्यधिक लालसा से।

लज्जा से अर्थात् शर्म होने से

गारव से अर्थात् महत्त्व के अभिप्राय से; जिसमें अपनी महत्ता, मैं कुछ हूँ ऐसा मान आता है वह भाव गारव है।

तथा ज्ञानों में- मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवलज्ञान में और इन ज्ञान को धारण करने वालों में।

चारित्रों में- सामायिक, छेदोपस्थापन, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म साम्पराय और यथाख्यात लक्षण वाले चारित्रों में और उन चारित्र धारण करने वाले आत्माओं के विषय में जो कुछ प्रमाद से क्रोध, मान आदि के द्वारा दोष उत्पन्न हो गया है।

इसी प्रकार-

बाईस परीषहों में- कर्म निर्जरा के लिए जो सहन किए जाते हैं वे परिषह हैं। क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंशमशक, नागन्य, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या, शय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कार पुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान और अदर्शन ये बाईस परीषह हैं।

पच्चीस भावनाओं में- व्रतों की स्थिरता करने के लिए जो भायी जाती हैं वे पच्चीस भावनायें हैं। जो इस प्रकार हैं–

पणुवीसाए भावणासु पञ्चविंशतिसंख्यासु भावनासु। व्रतानां हि स्थैर्यार्थं भाव्यन्त इति भावनाः पञ्चविंशतिः। तथा हि-हिंसाविरतिव्रतस्थैर्यार्थं तावद्वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपान-भोजनानि पञ्च। तथाऽनृतविरतिव्रतस्थैर्यार्थं क्रोधलोभ-भीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पञ्च। स्तेयविरतिव्रतस्थैर्यार्थं शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धि-सधर्माविसंवादाः पञ्च। अब्रह्मचर्यविरतिव्रतस्थैर्यार्थं स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहराङ्गनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीर-संस्कारत्यागाः पञ्च। परिग्रहविरति-व्रतस्थैर्यार्थं मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पञ्च। इत्युक्तपरीषहविषये भावनाविषये च यः कश्चिद्दैवसिको दोषः क्रोधादिना जातस्तस्मिन्नलोचयिमुमिच्छामि।

पणुवीसाए किरियासु पञ्चविंशतिसंख्यासु क्रियासु। क्रियन्त इति क्रियाः शुभाशुभकर्मादानहेतवो व्यापाराः पञ्चविंशतिः। तथा हि-चैत्यगुरुप्रवचनपूजादिलक्षणा सम्यक्त्ववर्धिनी क्रिया सम्यक्त्वक्रिया।

1- हिंसा से विरति रूप व्रत की स्थिरता के लिए - वचन गुप्ति, मनोगुप्ति, ईर्या समिति, आदान-निक्षेपण समिति, आलोकितपान भोजन ये पाँच भावनायें हैं।

2- झूठ से विरति रूप व्रत की स्थिरता के लिए- क्रोध का त्याग, लोभ का त्याग, भीरुत्व का त्याग, हास्य का त्याग और अनुवीचिभाषण ये पाँच भावनायें हैं।

3- चोरी से विरति रूप व्रत की स्थिरता के लिए- शून्यागार में रहना, विमोचित आवास में रहना, दूसरे का उपरोध (रोकना) नहीं करना, भिक्षाशुद्धि और सधर्मी से विसंवाद (विवाद) नहीं होना, ये पाँच भावनायें हैं।

4- अब्रह्मचर्य से विरति रूप व्रत की स्थिरता के लिए-स्त्री सम्बन्धी राग कथा का श्रवण नहीं करना, स्त्रियों के मनोहर अंगों का निरीक्षण नहीं करना, पूर्व रति का स्मरण नहीं करना,गरिष्ठ रसों का सेवन नहीं करना और स्वशरीर के संस्कार का त्याग ये पाँच भावनायें हैं।

5- परिग्रह विरति रूप व्रत की स्थिरता के लिए- मनोज्ञ और अमनोज्ञ इन्द्रिय के विषयों में राग और द्वेष का त्याग होना ये पाँच भावनायें हैं।

इस प्रकार कहे हुए परीषह के विषय में और भावना के विषय में जो कोई दैवसिक दोष, क्रोध आदि से उत्पन्न हुआ हो उसकी आलोचना करने की मैं इच्छा करता हूँ।

पच्चीस क्रियाओं में- क्रियाएँ पच्चीस हैं। जो की जाती हैं वह क्रियाएँ हैं। शुभ-अशुभ कर्मों के ग्रहण में कारणभूत व्यापार ही क्रिया हैं, जो पच्चीस हैं। वह इस प्रकार है-

चैत्य, गुरु और प्रवचन अर्थात् जिनवाणी की पूजा आदि लक्षण वाली, सम्यक्त्व बढ़ाने वाली क्रिया सम्यक्त्व क्रिया है।

अन्यदेवताओं के स्तवन आदि करने रूप मिथ्यात्व के लिए हेतुभूत कर्म की प्रवृत्ति मिथ्यात्व क्रिया है।

काय आदि के द्वारा गमनागमन आदि में प्रवर्तन होना प्रयोग क्रिया है।

संयत जन का अविरति के प्रति अभिमुख होना समादान क्रिया है।

ईर्यापथ के निमित्त होने वाली ईर्यापथ क्रिया है। ये पाँच क्रियाएँ हैं।

क्रोध के आवेश से होने वाली प्रादोषिकी क्रिया है।

अत्यधिक दुष्ट होते हुए उद्यम करना कायिकी क्रिया है। हिंसा के उपकरण रखने से आधिकरणिकी क्रिया है।दु:खों की उत्पत्ति की अधिकता होने से पारितापिकी क्रिया है। आयु, इन्द्रिय और बल प्राणों का वियोग करने से प्राणातिपातिकी क्रिया है। ये पाँच क्रियाएँ हैं।

अन्यदेवतास्तवनादिरूपा मिथ्यात्वहेतुका कर्मप्रवृत्तिर्मिथ्यात्वक्रिया। गमनागमनादिप्रवर्तनं कायादिभिः प्रयोगक्रिया। संयतस्य सतोऽविरतिं प्रत्याभिमुख्यं समादानक्रिया। ईर्यापथनिमित्तेर्यापथक्रिया। एताः पञ्च क्रियाः॥ क्रोधावेशात्प्रादोषिकी क्रिया। प्रदुष्टस्य सतोऽभ्युद्यमः कायिकी क्रिया। हिंसोपकरणाधिकरणिकी क्रिया। दुःखोत्पत्तितन्त्रत्वात्पारितापिकी क्रिया। आयुरिन्द्रियबलप्राणानां वियोगकरणात्प्राणातिपातिकी क्रिया। एताः पञ्च क्रियाः। रागान्धीकृतत्वात्प्रमादिनो रमणीयरूपावलोकनाभिप्रायो दर्शनक्रिया। प्रमादवशात्स्पृष्टव्यसंवेदनानुबन्धः स्पर्शनक्रिया। अपूर्वाधिकरणोत्पादनात्प्रात्ययिकी क्रिया। स्त्रीपशुषण्ढसम्पाते देशेऽन्तर्मलोत्सर्गकरणं समन्तानुपातक्रिया। अप्रमृष्टादृष्टभूमौ कायादिनिक्षेपोऽनाभोगक्रिया। एताः पञ्च क्रियाः॥ यां परेण निर्वर्त्यां क्रियां स्वयं करोति सा स्वहस्तादानक्रिया। पापादानादिप्रवृत्ति-विशेषाभ्यनुज्ञानं निसर्गक्रिया पराचरितसावद्यादिप्रकाशनं विदारणक्रिया। यथोक्तामाज्ञामावश्यकादिषु चारित्रमोहात्कर्तु-मशक्नुवतोऽन्यथाप्ररूपणादाज्ञाव्यापादिकी क्रिया। शाठ्यालस्याभ्यां प्रवचनोपदिष्टविधिकर्तव्यतानादरोऽनाकाङ्क्षक्रिया। एताः पञ्च क्रियाः। छेदनभेदनविशसनादिक्रियादिपरत्वमन्येषां चारभ्ये क्रियमाणे प्रहर्षः प्रारम्भक्रिया। ज्ञानदर्शनादिषु निकृतिर्वञ्चनं मायाक्रिया। परिग्रहाविनाशार्था पारिग्राहिकी क्रिया। अन्यं मिथ्यादर्शनक्रियाकरणकारणाविष्टं

राग से अन्ध होकर प्रमादी बनकर रमणीयरूप को देखने का अभिप्राय दर्शन क्रिया है।
प्रमाद के वश से स्पर्श योग्य संवेदना का अनुबन्ध स्पर्शन क्रिया है।
अपूर्व अधिकरणों के उत्पन्न करने से प्रात्ययिकी क्रिया है।
स्त्री, पुरुष और नपुंसकों के रहने के स्थान में अन्तर्मल का त्याग करना समन्तानुपात क्रिया है।
अप्रमृष्ट और अदृष्ट भूमि पर काय आदि का रखना अनाभोग क्रिया है। -ये पाँच क्रियाएँ हैं।
जो क्रियाएँ दूसरों के द्वारा करने योग्य हैं ऐसी क्रियाओं को स्वयं करना स्वहस्तादान क्रिया है।
पाप को ग्रहण करने वाली प्रवृत्ति आदि का विशेष ज्ञान करना निसर्ग क्रिया है।
दूसरे के द्वारा आचरित सावद्य (पाप) आदि का प्रकाशन करना / दूसरों को बताना विदारण क्रिया है।
आवश्यक आदि करने के विषय में जो जिनाज्ञा है उसे चारित्रमोह कर्म के कारण करने में समर्थ नहीं होने से अन्यथा प्ररूपण करना आज्ञाव्यापादिकी क्रिया है।
शठता (मूर्खता) और आलस्य के द्वारा प्रवचन (जिनागम) में कही गई विधि के अनुसार कर्तव्यता में अनादर होना अनाकाङ्क्ष क्रिया है।
ये पाँच क्रियाएँ हैं।
छेदन, भेदन, हिंसन आदि क्रिया में तत्परता होना तथा अन्य के द्वारा आरम्भ करने पर अत्यन्त हर्ष होना भी प्रारम्भ क्रिया है।
ज्ञान, दर्शन आदि के विषय में मायाचार होना माया क्रिया है।
परिग्रह का विनाश न हो इसके लिए की जाने वाली पारिग्राहिकी क्रिया है।
मिथ्यादर्शन क्रिया करने के कारणों से सहित अन्य किसी को प्रशंसा आदि से दृढ़ करना जैसे कि-
'तुम अच्छा कर रहे हो' वह मिथ्यादर्शन क्रिया है।
संयमघाति कर्मोदय के कारण निवृत्ति नहीं होना (विषय का परित्याग नहीं करना) यह अप्रत्याख्यान क्रिया है।ये पाँच क्रियाएँ हैं।
इन पच्चीस क्रियाओं में सम्यक्त्व क्रिया अनुष्ठान योग्य है, अन्य चौबीस क्रियाएँ नहीं। उन क्रियाओं के अनुष्ठान होने पर आलोचना करना चाहिए।

अठारह हजार शील के भेदों का और चौरासी लाख गुणों का स्वरूप परमागम में कहा गया है। उनमें जो कोई क्रोध आदि के द्वारा दैवसिक दोष हुआ हो उसकी मैं आलोचना करता हूँ।

बारह प्रकार के संयमों में- इन्द्रिय संयम छह प्रकार का है। पाँच इन्द्रियों और मन का संयमन करने के कारण अपने विषय में जाती

प्रशंसादिभिर्द्रढयति यथा 'साधु करोषी-' ति सा मिथ्यादर्शनक्रिया। संयमघातिकर्मोदयवशादनिवृत्तिर्-प्रत्याख्यानक्रिया। एताः पञ्च क्रियाः॥ एतासां पञ्चविंशतिक्रियाणां मध्ये सम्यक्त्वक्रियाऽनुष्ठेया, नान्याश्चतुर्विंशतिक्रियाः। तासामनुष्ठान आलोचना कर्तव्या। **अट्ठारससीलसहस्सेसु चउरासीदिगुण-सदसहस्सेसु**। अष्टादशशीलसहस्राणि चतुरशीति गुणशतसहस्राणि लक्षाः परमागमे प्रतिपादितस्वरूपाः। तत्र यः कश्चित्क्रोधादिना दैवसिको दोषो जातस्तत्रालोचना। **बारसण्हं संजमाणं**। द्वादशानां संयमानाम्। इन्द्रियसंयमो हि षड्विधः, पञ्चानामिन्द्रियाणां षष्ठस्य च मनसः संयमनात् स्वविषये गच्छतामेतेषां नियन्त्रणात्। प्राणिसंयमश्च षड्विध इति, पञ्चानां स्थावराणां त्रसानां चाविराधनात्॥ **बारसण्हं तवाणं**। द्वादशानां तपसाम्। अनशनादिरूपं हि षड्विधं बाह्यं तपः। प्रायश्चित्तादिलक्षणं षड्विधं पुनराभ्यन्तरम्। **बारसण्हं अंगाणं**। द्वादशानामाचारं सूत्रकृतमित्याद्यङ्गानाम्। **चोद्दसण्हं पुव्वाणं**। चतुर्दशानामुत्पादपूर्व-मग्रायणीयमित्यादिपूर्वाणाम्। **दसण्हं मुंडाणं**। मुण्डनं निरोधनं मुण्डः। स दशप्रकारो भवति। तदुक्तम्-

पंच वि इंदियमुंडा वचिमुंडा हत्थपायतणुमुंडा।
मणमुंडेण य सहिया दसमुंडा वण्णिदा समए॥

दसण्हं समणधम्माणं। दशानां श्रमणधर्माणामुत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागा-किञ्चन्यब्रह्मचर्यलक्षणानाम्। **दसण्हं धम्मज्झाणाणं**। दशानां धर्मध्यानानामपायविचयोपायविचयविपाक-विचयविरागविचयलोकविचयभवविचयजीवविचयाज्ञाविचयसंस्थानविचयसंसारविचयलक्षणानाम्। तत्र विचयः परीक्षा। (1) सन्मार्गान्मिथ्यादृष्टयो दूरमेवापेता इति चिन्तनमपायविचयः। मिथ्यादर्शनज्ञान-चारित्रेभ्यो वा जीवस्य कथमपायः स्यादिति चिन्तनमपायविचयः। (2) दर्शनमोहोदयादिकारणवशाज्जीवाः सम्यग्दर्शनादिभ्यः पराङ्मुखा इति चिन्तनमुपायविचयः। (3) कर्मणां ज्ञानावरणादीनां द्रव्यक्षेत्रकालभवभावप्रत्ययं फलानुभवनं प्रति प्रणिधानं विपाकविचयः। (4) संसारदेहविषयेषु

हुई उन इन्द्रियों और मन पर नियंत्रण होने से इन्द्रिय संयम होता है।

प्राणिसंयम छह प्रकार का है। पाँच स्थावरों और त्रस जीवों की विराधना नहीं करने से प्राणिसंयम होता है।

बारह प्रकार के तप- अनशन आदि रूप छह बाह्य तप है और प्रायश्चित्त आदि लक्षण वाले छह अंतरंग तप हैं।

बारह अंग- आचारांग, सूत्रकृतांग, इत्यादि बारह अंग हैं।

चौदह पूर्व- उत्पाद पूर्व, अग्रायणीय पूर्व आदि चौदह पूर्व हैं।

दस मुंडन- चेष्टा रोकने का नाम मुंडन है।

वह दश प्रकार का होता है। मूलाचार में कहा भी है- पाँच इन्द्रियों का मुंडन, वचनों का मुंडन, हाथ, पैर और शरीर का मुंडन और मन मुंडन से सहित होना-आगम में ये दस प्रकार के मुंडन वर्णित हैं।

दस प्रकार के श्रमण धर्म- उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य-ये श्रमणों के दस धर्मों के लक्षण है।

दस प्रकार के धर्म ध्यान- अपाय विचय, उपाय विचय, विपाक विचय, विराग विचय, लोक विचय, भव विचय, जीव विचय, आज्ञा विचय, संस्थान विचय और संसार विचय-ये दस धर्मध्यान के लक्षण हैं। विचय परीक्षा करने को कहते हैं।

1- सन्मार्ग से मिथ्यादृष्टि जीव दूर ही हैं इस प्रकार चिन्तन करना अपायविचय धर्मध्यान है। अथवा मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र से जीव को कैसे बचाया जाय, इस प्रकार चिन्तन करना अपायविचय धर्मध्यान हैं।

2- दर्शनमोह के उदय आदि के कारण से जीव सम्यग्दर्शन आदि से विमुख हैं इस प्रकार चिन्तन करना उपाय विचय धर्मध्यान है।

3- द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव के कारण ज्ञानावरण आदि कर्मों के पुण्य और पाप रूप फलानुभव में उपयोग लगना विपाक विचय धर्मध्यान है।

4- संसार, देह और पंचेन्द्रिय के विषयों में ये दु:खों के हेतु हैं और अनित्य हैं ऐसा चिन्तन करना विराग विचय धर्मध्यान है।

5- ऊर्ध्व, अध:, और मध्यलोक के विभाग से अनादिनिधन आदि स्वरूप का चिन्तन करना या लोक के स्वरूप का चिन्तन करना लोक विचय धर्मध्यान है।

6- नरक आदि चारों गति के भव भ्रमण का चिन्तन करना भवविचय है।

7- विद्यमान जीव हैं, उपयोग स्वभाव वाले हैं, अनादिनिधन हैं, मुक्त और संसारी रूप हैं, इत्यादि रूप से जीव के स्वरूप का चिन्तन करना जीवविचय धर्मध्यान है।

दुःखहेतुत्वानित्यत्वचिन्तनं विरागविचयः। (5) ऊर्ध्वाधोमध्यलोकविभागेनानाद्य-निधनादिस्वरूपेण वा लोकस्वरूपचिन्तनं लोकविचयः। (6) नरकादिचतुर्गतिभवचिन्तनं भवविचयः। (7) सन्ति (विद्यमान-) जीवा उपयोगस्वभावा अनाद्यनिधना मुक्तेतररूपा इत्यादिजीवस्वरूपचिन्तनं जीव विचयः। (8) सर्वज्ञागमं प्रमाणीकृत्यात्यन्तपरोक्षार्थावधारणमाज्ञाविचयः। सर्वज्ञज्ञातार्थसमर्थनं वा, हेतुसामर्थ्यात्। (9) अधोमध्योर्ध्वलोकस्य शराववज्रमृदंगाद्याकारचिन्तनं संस्थानविचयः। (10) स्वोपात्तकर्म-विपाकवशादात्मनो भवान्तरावाप्तिस्संसारः। तत्र परिभ्रमञ्जीवः पिता भूत्वा पुत्रः पौत्रश्च भवति, माता भूत्वा भगिनी भार्या दुहिता च भवति, स्वामी भूत्वा दासो भवति, दासो भूत्वा स्वाम्यपि भवति-इति चिन्तनं संसारविचयः। एतेषां द्वादशसंयमप्रभृतीनां दशधर्म्यध्यानपर्यन्तानामनुष्ठाने यः कश्चित्क्रोधादिवशाद्दैवसिको दोषो जातस्तत्रालोचनां कर्तुमिच्छामि। **दिट्ठियाए**। स्त्रीपुरुषाणां साभिलाषमङ्गोपाङ्गनिरीक्षणं दृष्टिक्रिया। तया। **पुट्ठियाए**। स्त्रीपुरुषाणां सानुरागमङ्गोपाङ्गस्पर्शनं स्पृष्टिक्रिया। तया। **पादोसियाए**। प्रकृष्टा दोषाः क्रोधादयः प्रदोषाः। तेषु भवा प्रादोषिकी क्रिया दुष्टमनोवाक्कायव्यापारलक्षणा। तया। अनया च दृष्टिक्रियाप्रभृत्युक्तत्रिविधक्रियया यः कश्चिद्दोषो जातस्तत्रालोचनां कर्तुमिच्छामि॥ **सोलसण्हं कसायाणं**। कषाया इव कषायाः। यथा नैयग्रोधादिकषाया वस्त्रादीनां रागसंश्लेषहेतवस्तथा क्रोधमानमायालोभा अपि जीवस्य कर्मसंश्लेषहेतुत्वात्कषाया इत्युच्यन्ते। ते च प्रत्येकमनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसञ्ज्वलन-विकल्पात् षोडशभेदा भवन्ति॥ णवण्हं **णोकसायाणं**। कषायेभ्योऽन्य ईषत्कषाया नोकषायाः। ते च नव हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्री-पुंनपुंसकभेदात्। एतेषां कषायाणां नोकषायाणं चोत्पत्तं न दातव्यम्। उत्पादेवाऽऽलोचना कर्तव्येति।

8- सर्वज्ञ भगवान के आगम को प्रमाण मानकर अत्यन्त परोक्ष अर्थ का अवधारण (निश्चय) करना आज्ञाविचय धर्मध्यान है। अथवा हेतुओं की सामर्थ्य से सर्वज्ञ द्वारा ज्ञात अर्थ का समर्थन करना आज्ञाविचय धर्मध्यान है।

9- अधोलोक, मध्यलोक, और ऊर्ध्वलोक का आकार शराव (कटोरा), वज्र और मृदंग आदि के समान आकार वाला है, ऐसा चिन्तन करना संस्थानविचय धर्मध्यान है।

10- अपने ही अर्जित कर्म मल के कारण आत्मा को जो भवान्तर की प्राप्ति होती है वह संसार है। इस संसार में परिभ्रमण करता हुआ जीव पिता होकर भ्राता, पुत्र और पौत्र हो जाता है, माता होकर बहिन, पत्नी और बेटी हो जाती है, स्वामी होकर दास हो जाता है और दास होकर स्वामी भी हो जाता है, इस प्रकार चिन्तन करना संसारविचय धर्मध्यान है।

इन बारह प्रकार के संयम आदि से लेकर दशधर्मध्यान पर्यन्त तक के अनुष्ठान में जो कुछ क्रोध आदि के कारण दैवसिक दोष हुआ हो उसमें मैं आलोचना करने की इच्छा करता हूँ।

दृष्टि के द्वारा - स्त्री-पुरुषों का अनुराग पूर्वक अंगोपांग का देखना दृष्टि क्रिया है। उस क्रिया से दोष होता है।

स्पृष्टि के द्वारा-स्त्री-पुरुषों का अनुराग पूर्वक अंगोपांग का स्पर्श करना स्पृष्टि क्रिया है। उस क्रिया से दोष होता है।

प्रदोष के द्वारा- क्रोध आदि उत्पन्न होना ये प्रकृष्ट दोष है। इन दोषों के साथ होने वाली दुष्ट मन, वचन, काय के व्यापार लक्षण वाली क्रिया प्रादोषिकी क्रिया है। उससे दोष लगता है। इन दृष्टि आदि तीन क्रियाओं से जो कुछ दोष उत्पन्न हुआ हो उस विषय में आलोचना करने की मैं इच्छा करता हूँ।

सोलह कषाय- कषायले पदार्थ के समान ही कषाय होती हैं। जैसे न्यग्रोध (बट वृक्ष) आदि का कषायला पदार्थ वस्त्र आदि रंगने के लिए रंग को चिपकाने में कारण होता है, उसी प्रकार क्रोध, मान, माया, लोभ ये कषायें भी जीव के कर्म बन्ध के लिए कारण होती हैं, इसलिए ये कषायें कही जाती हैं। उन क्रोध आदि प्रत्येक कषाय के अनन्तानुबन्धी , अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, और संज्वलन के भेद से सोलह भेद हो जाते हैं।

नौ नोकषाय- कषायों से भिन्न जो कुछ हलकी कषायें होती हैं वे नोकषाय होती हैं। वे संख्या में नौ होती हैं। हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, और नपुंसकवेद-ये नौ भेद हैं।

इन कषायों की और नोकषायों की उत्पत्ति नहीं होने देना चाहिए। उत्पन्न होने पर आलोचना करना चाहिए।

नौ प्रकार की ब्रह्मचर्यगुप्ति- नौ प्रकार की ब्रह्मचर्य की गुप्ति हैं।

प्रश्न- वह नौ प्रकार कैसे होते हैं?

णवसु बंभचेरगुत्तीसु। नवप्रकारासु ब्रह्मचर्यगुप्तिषु। कथं पुनस्तासां नवप्रकारतेति चेदुच्यते, तिर्यङ्मनुष्यदेवस्त्रीणां प्रत्येकं मनोवचःकायैरसेवनं नवविधं ब्रह्मचर्यम्। अथवा स्त्रीसामान्यस्य मनोवचःकायैः कृतकारितानुमतविशेषैरसेवनं नवविधं ब्रह्मचर्यम्। तस्य च गुप्तयो रक्षणानि पालनानि नवप्रकाराणि भवन्तीति नवब्रह्मचर्यगुप्तयः॥ **अट्ठण्हं कम्माणं**। अष्टानां ज्ञानावरणादिकर्मणां क्रोधादिवशादुपार्जनं वर्जनीयम्। तदवर्जन आलोचना कर्तव्या। **अट्ठण्हं पवयणमाउआणं**। अष्टानां प्रवचनमातृकाणां पञ्चसमितित्रिगुप्तिलक्षणानां प्रमादाददननुष्ठान आलोचना कर्तव्या॥ **अट्ठण्हं सुद्धीणं**। अष्टानां शुद्धीनाम्। अष्टौ हि शुद्धयो भवन्ति।

मनोवाक्कायभैक्ष्येर्यासूत्सर्गे शयनासने।
विनये च यतेः शुद्धिः शुद्ध्यष्टकमुदाहृतम्॥

इत्यभिधानात्। ताश्च प्रतिदिनं मुनिभिरनुष्ठातव्याः। अननुष्ठान आलोचना कर्तव्या॥ **सत्तण्हं भयाणं**। सप्त भयानि भवन्ति। 'इहपरलोयत्ताणं अगुत्तिमरणं च वेयणाकस्स। भय-' मित्यभिधानात्। तानि च मुनिभिः प्रतिदिनं वर्जनीयानि। तदवर्जन आलोचना कर्तव्या॥ **सत्तविहसंसाराणं**। सप्तविधः संसारश्चतुर्गतिपरिभ्रमणं येषां जीवानां ते सप्तविधसंसारास्तेषाम्। सप्तविधो हि संसारः-एकेन्द्रियाणां सूक्ष्मबादरलक्षणौ द्वौ भेदौ, विकलेन्द्रियाणां द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियस्वरूपास्त्रयो भेदाः, पञ्चेन्द्रियाणां, संज्ञ्यसंज्ञिलक्षणौ द्वौ भेदाविति। तेषां कारणभूतं कर्म तत्पीडादिकं च प्रतिदिनं न कर्तव्यम्। प्रमादात्तत्करण आलोचना कर्तव्या॥ **छण्हं आवासयाणं**। मुनिभिरवश्यं करणीयान्यावश्यकानि षट्। मनोज्ञादित्वात्कर्मणि वुञ्।

उक्तं च-

उत्तर- तिर्यंच, मनुष्य और देव स्त्रियों में प्रत्येक का मन, वचन, काय से सेवन नहीं करना नौ प्रकार से होता है अथवा स्त्री सामान्य के मन, वचन, काय से कृत, कारित, अनुमोदना से सेवन न करने से नौ प्रकार का ब्रह्मचर्य होता है। उसकी गुप्तियाँ, आरक्षण, पालन नौ प्रकार के होते हैं। इसलिए उस ब्रह्मचर्य की नौ प्रकार की गुप्ति होती हैं।

आठकर्म- ज्ञानावरण आदि आठ प्रकार के कर्मों का क्रोध आदि के कारण से उपार्जन वर्जनीय है। यदि उसका उपार्जन हुआ हो तो उसकी आलोचना करना चाहिए।

आठ प्रवचनमातृकायें- पाँच समिति और तीन गुप्ति के लक्षण से आठ प्रवचन मातृकायें हैं। प्रमाद से यदि इनका अनुष्ठान नहीं किया हो तो उसकी आलोचना करना चाहिए।

आठ शुद्धियाँ- आठ ही शुद्धियाँ होती है। कहा भी है- मनः शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि, भैक्ष्य शुद्धि, ईर्यापथशुद्धि उत्सर्गशुद्धि, शयन-आसन शुद्धि और विनय शुद्धि, ये यति की शुद्धि हैं जो शुद्ध्यष्टक कही जाती हैं।

इन शुद्धियों का प्रतिदिन मुनियों को अनुष्ठान करना चाहिए। अनुष्ठान नहीं करने पर आलोचना करना चाहिए।

सात भय- सात भय होते हैं। इहलोक भय, परलोक भय, अत्राणभय, अगुप्तिभय, मरणभय, वेदनाभय और आकस्मिक भय-ये सात भय होते है। मुनियों को प्रतिदिन इन भयों से मुक्त रहना चाहिए। यदि न रह पाये तो आलोचना करना चाहिए।

सात प्रकार का संसार- सात प्रकार का संसार है। जिन जीवों का चतुर्गति में परिभ्रमण रूप संसार है वे जीव सात प्रकार के हैं। वही उनका सात प्रकार का संसार है। 1- सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव, 2- बादर एकेन्द्रिय जीव -ये एकेन्द्रिय के दो भेद हैं। विकलेन्द्रियों के तीन भेद हैं। 3- दो इन्द्रिय, 4- तीन इन्द्रिय, 5- चार इन्द्रिय जीव। पंचेन्द्रिय के दो भेद हैं। 6- असंज्ञी पंचेन्द्रिय, 7- संज्ञी पंचेन्द्रिय।

इन जीवों के लिए कारणभूत कर्म और उनको पीड़ित करना आदि प्रतिदिन नहीं करना चाहिए। प्रमाद से यदि वैसा किया हो तो आलोचना करना चाहिए।

छह आवश्यक- मुनियों के द्वारा अवश्य करने योग्य आवश्यक छह हैं। मनोज्ञादित्वात् कमणि वुञ् -सूत्र से वुञ्(अक) प्रत्यय करने पर अवश्य+वुञ् =(आदि वद्धि होने पर) आवश्यक रूप होता है।

कहा भी है- 'समता, स्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, व्युत्सर्ग (कायोत्सर्ग) ये छह आवश्यक जानने चाहिए जो करणीय हैं।'

समता- शत्रु-मित्र आदि में जो राग-द्वेष होता है उसमें उपयोग (या चिन्ता) नहीं धरना समता है।

स्तव- चौबीस तीर्थंकर देव विषयक स्तुति स्तव हैं।

वन्दना- एक तीर्थंकर देव विषयक स्तुति वन्दना है।

समदा थवो य वंदण पाडिक्कमणं तहेव णादव्वं। पच्चक्खाणविसग्गो करणीयावासया छप्पि॥

समदा। समता। शत्रुमित्रादौ रागद्वेषयोरप्रणिधानमित्यर्थः। **थवो य**। स्तवः। चतुर्विंशतितीर्थंकरदेवविषया हि स्तुतिः स्तवः, एकतीर्थंकरदेवविषया वन्दना। प्रतिक्रमणं प्रत्याख्यानं, व्युत्सर्गश्च प्रसिद्धा एव। एतेषां प्रमादादकरण आलोचना कर्तव्या॥ **छण्हं जीवणिकायाणां**। षण्णां जीवनिकायानां जीवसङ्घातानां पञ्चस्थावरत्रसलक्षणानां हिंसादिकं न कर्तव्यम्। प्रमादात्तत्करण आलोचना कर्तव्या। **पंचण्हं समिदीणं**॥ पञ्चानां समितीनाम्॥ समितयः प्राक्प्रत्येकं व्यस्ता निर्दिष्टा अपि समुदितपञ्चसङ्ख्याप्रधानतया पुनर्निर्दिश्यन्ते। **पंचण्हं चरित्ताणं**॥ पञ्चानां चारित्राणां। समितयश्चारित्राणि च प्रतिदिनं मुनिभिरनुष्ठातव्यानि। प्रमात्तदननुष्ठान आलोचना कर्तव्या॥ **चउण्हं सण्णाणं**। चतसृणां सञ्ज्ञानामाहारभयमैथुनपरिग्रहलक्षणानां निग्रहो मुनिभिः प्रतिदिनं कर्तव्यः। तदकरण आलोचना॥ **चउण्हं पच्चयाणं।** चतुर्णां प्रत्ययानां कर्मबन्धकारणानां मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगलक्षणानां नित्यं त्यागः कर्तव्यः। तदकरण आलोचना। प्रमादस्य पंचमस्य सद्भावात्कथं चत्वारः प्रत्यया इति नाशंकनीयं, तस्याविरतावन्तर्भावात्॥ **चउण्हं उवसग्गाणं**। चतुर्णामुपसर्गाणां देवमनुष्यतिर्यगचेतनकृतोपद्रवलक्षणानां सहनं कर्तव्यम्। प्रमादात्तदसहन आलोचना॥ **मूलगुणाणं**। पंच महाव्रतानि, पंच समितयः,

प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और व्युत्सर्ग प्रसिद्ध ही हैं। इन आवश्यकों को प्रमाद से नहीं करने पर आलोचना करना चाहिए।

छह जीव निकाय- पाँच स्थावर और एक त्रस ऐसे छः जीव समूह हैं। इनकी हिंसा आदि नहीं करना चाहिए। प्रमाद से वैसा हो जाने पर आलोचना करना चाहिए।

पाँच समिति- पाँच समितियाँ हैं। पहले ये पाँच समितियाँ पृथक्-पृथक् कही हैं। उनको ही यहाँ पाँच संख्या की प्रधानता से एक साथ पुनः कहा है।

पाँच चारित्र- पाँच प्रकार के चारित्र है। समिति और चारित्र इनका अनुष्ठान प्रतिदिन मुनियों को करना चाहिए। प्रमाद से यदि उनका अनुष्ठान न हो तो आलोचना करना चाहिए।

चार संज्ञा- आहार, भय, मैथुन और परिग्रह लक्षण वाली चार संज्ञायें हैं। इनका निग्रह (रोकना, वश करना) मुनियों को प्रतिदिन करना चाहिए। नहीं करने पर आलोचना करना चाहिए।

चार प्रत्यय- मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, और योग लक्षण वाले चार प्रत्यय हैं जो कर्मबन्ध के लिए कारण हैं। इन प्रत्ययों का नित्य त्याग करना चाहिए। नहीं कर पाने पर आलोचना करना चाहिए। पाँचवाँ प्रत्यय प्रमाद भी होता है। चार प्रत्यय क्यों कहे, ऐसी आशंका नहीं करना क्योंकि उस प्रमाद प्रत्यय का अविरति में ही अंतर्भाव हो जाता है।

चार उपसर्ग- देव, मनुष्य, तिर्यंच, और अचेतन कृत उपद्रव के भेद चार प्रकार के उपसर्ग हैं उन्हें सहन करना चाहिए। प्रमाद से सहन ना किया हो तो आलोचना करना चाहिए।

मूलगुण- पाँच महाव्रत हैं, पाँच समिति हैं, पाँच इन्द्रिय निरोध हैं, छह आवश्यक हैं, अचेलकता, लोच, अदन्तधावन, अस्नान, भूशयन, स्थिति भोजन, एक बार भोजन ये सात शेष गुण - ये अट्ठाईस मूलगुण हैं।

उत्तरगुण- वृक्षमूल आदि अनेक प्रकार के तप विशेष उत्तर गुण हैं। इन मूलगुणों और उत्तरगुणों में प्रमाद से दोष लगने पर मैं आलोचना करता हूँ।

अत्यासादन- उन गुणों के अतिशय से (अतिशयेन) आसमन्तात् अस्येति (क्षिपति) इति अत्यासनम्। अत्यासन का भाव अत्यासनता। उन गुणों की अतिआसादना, आलसता, हीनता के तात्पर्य (प्रयोजन) से अनुष्ठान का अभाव होना, अत्यासादन है। उस अत्यासादना के होने पर जो दोष उत्पन्न होता है उसकी आलोचना करता हूँ।

तीन दण्ड- जो जीव को दंड देते हैं, पीड़ा देते हैं ऐसी दुष्ट मन-वचन-काय की प्रवृत्ति दण्ड हैं। उस संबंधी जो दोष हुआ उसकी मैं आलोचना करता हूँ।

पञ्चेन्द्रियनिरोधः षडावश्यकान्याचेलक्यं, लोचोऽदन्तधावनमस्नानं, क्षितिशयनं, स्थितिभोजनमेकभक्तं चेत्यष्टाविंशतिर्मूलगुणाः॥ **उत्तरगुणाणं**। वृक्षमूलादयोऽनेकप्रकारास्तपोविशेषा उत्तरगुणाः। एवंविधानां मुलगुणानामुत्तरगुणानां च प्रमादात्। **अच्चासणदाए**। तद्गुणानतिशयेन आ समन्तादस्यति क्षिपतीत्यत्यासनम्। तस्य भावोऽत्यासनता। तेषामत्यासादनालसता (हीलना) तात्पर्यतोऽनुष्ठानाभाव इत्यर्थः। तस्यां सत्यां यो दोषः समुत्पन्नस्तस्यालोचना॥ **तिण्हं दण्डाणं**। जीवं दंडयन्ति कदर्थयन्तीति दण्डा दुष्टमनोवाक्कायाः। तेषां संबंधी यो दोषस्तस्यालोचना॥ **तिण्हं लेस्साणं।** कषायानुरंजिता योगप्रवृत्तयो लेश्याः। जीवं हि कर्मणा लिम्पन्तीति लेश्याः। लिम्पे-'र्युड्व्या बहुल[1]' -मिति कर्तरि व्यः। 'ण्य' इत्यैप्। 'पृषोदरादीनि यथोपदिष्ट'-मिति पकारस्य शकारादेशः। ताश्च कृष्णनीलकापोतरूपास्तिस्त्रः पापकर्मणा जीवं लिम्पन्तीति कृत्वा परिहर्तव्याः। तेजः पद्मशुक्लरूपास्तु तिस्त्रः पुण्यकर्मणा जीवं लिम्पन्तीति कृत्वा ता भावयितव्याः। तदपरिहरणे तदभावने चालोचना कर्तव्या॥ **तिण्हं गारवाणं**। गौरवं महत्त्वाभिनिवेशः। तत् त्रिविधं-ऋद्धिगौरवं, रसगौरवं, स्वादगौरवं, शब्दगौरवं वा। एतेषां त्रयाणां गौरवाणां परिहारः कर्तव्यः। प्रमादात्तदकरण आलोचना॥ **तिण्हं अपसत्थसंकिलेसपरिणामाणं**। मायामिथ्यानिदानरूपाणामप्रशस्तानां पापोपार्जननिमित्तभूतानां संक्लेशपरिणामानां सर्वदा परित्यागः कर्तव्यः। प्रमादात्तदपरित्याग आलोचना॥ **दोण्हं अट्टरुद्दसंकिलेसपरिणामाणं**। द्वयोरार्तरौद्ररूपयोः संक्लेशपरिणामयोः परित्यागः कर्तव्यः। प्रमादात्तदकरण आलोचना॥ **मिच्छणाणमिच्छदंसणमिच्छचारित्ताणं**। मिथ्याज्ञानमिथ्यादर्शनमिथ्या-चारित्राणां सर्वदा परिहारः कर्तव्यः। प्रमादात्तदकरण आलोचना॥ **मिच्छत्तपाओग्गं**। मिथ्यात्वस्यादेवाधर्मतत्त्वेषु विपरीताभिनिवेशलक्षणस्य प्रकर्षेणा समन्ताद्योग्यं यद्वस्तु तस्य परित्यागः कर्तव्यः। तदकरण आलोचना॥ **असंजमपाओग्गं**। असंयमो द्वादशविधः-षड्जीवनिकायविषयः

---

1. 'लिंपेर्युद्यु बहुलमिति कर्तरिण्यो व्युड् इत्यैप्' इति टीकायां पाठः।

तीन लेश्या- कषाय से अनुरंजित योग की प्रवृत्ति लेश्या है अथवा कर्म से जो जीव को लेपती है वह लेश्या है। लिम्प् (लेपना) धातु से लेश्या रूप बनता है। इन लेश्याओं से, कृष्ण, नील, कापोत रूप तीन लेश्याएँ पाप कर्म से जीव का लेपन करती हैं, ऐसा जानकर इन तीन लेश्याओं से बचना चाहिए। तेज (पीत), पद्म और शुक्ल रूप तीन लेश्याएँ पुण्य कर्म से जीव का लेपन करती हैं ऐसा जानकर इन तीन लेश्याओं की भावना करनी चाहिए। अशुभ लेश्याओं से दूर न रह पाने पर और शुभ लेश्याओं की भावना न कर पाने पर आलोचना करनी चाहिए।

तीन गौरव- महत्त्व का अभिनिवेश (भाव) गौरव है। वह तीन प्रकार का है जो ऋद्धि गौरव, स्वाद या रस गौरव व शब्द गौरव है। इन तीनों गौरव से बचना चाहिए। प्रमाद से वैसा न हो पाए तो आलोचना करना चाहिए।

तीन अप्रशस्त संक्लेश परिणाम- माया, मिथ्या, निदान रूप संक्लेश परिणाम पाप उपार्जन के लिए कारणभूत हैं। उन अप्रशस्त परिणामों का सर्वदा परित्याग करना चाहिए। प्रमाद से वैसा न कर पाने पर आलोचना करना चाहिए।

दो आर्त रौद्र संक्लेश परिणाम- आर्त, रौद्र रूप इन संक्लेश परिणामों का परित्याग करना चाहिए। प्रमाद से वैसा न कर पाने पर आलोचना करना चाहिए।

मिथ्याज्ञान-मिथ्यादर्शन-मिथ्याचारित्र- मिथ्याज्ञान, मिथ्यादर्शन और मिथ्याचारित्र का सर्वदा परिहार (दूर)करना चाहिए। प्रमाद से वैसा न कर पाने पर आलोचना करना चाहिए।

मिथ्यात्व के प्रायोग्य- देव, धर्म और तत्त्वों में विपरीत अभिनिवेश लक्षण वाला मिथ्यात्व है। उस मिथ्यात्व के लिए प्रकर्ष रूप से चारों ओर से योग्य जो वस्तु हैं उनका परित्याग कर देना चाहिए। वैसा नहीं कर पाने पर आलोचना करना चाहिए।

असंयम के प्रायोग्य- असंयम बारह प्रकार का है। छह जीव निकाय और छह इन्द्रिय के विषय से यह बारह प्रकार का है। उसका परिहार करना चाहिए। नहीं कर पाने पर उसकी आलोचना करना चाहिए।

योग प्रायोग्य- आत्म प्रदेशों का परिस्पन्दन ही योग का लक्षण है। वह योग काय, वचन और मन के भेद से तीन प्रकार का है। उस योग के लिए कारणभूत वस्तु का परिहार करना चाहिए। उसका परिहार न कर पाने पर आलोचना करना चाहिए।

अप्रायोग्य का सेवन होने पर- जो करने योग्य नहीं है वह अप्रायोग्य है। वे अप्रायोग्य असंयम के निमित्त हैं। पुष्प, फल, पत्ते, तृणादि का नख आदि के द्वारा कर्तन करना अथवा पर का उपहास करना आदि अथवा गीत, नृत्य आदि करना। इन अप्रायोग्य का प्रमाद से सेवन होने से, **आसेवनता से**- इन अप्रायोग्य का प्रमाद से सेवन होने पर या उसका अनुष्ठान होने पर उसकी आलोचना करता हूँ।

षडिन्द्रियविषयश्चेति। तस्य परिहारः कर्तव्यः तदकरण आलोचना॥ **जोगपाओग्गं।** आत्मप्रदेशपरिस्पन्दलक्षणो योगः। स त्रिविधः–काययोगो वाग्योगो मनोयोगोश्चेति। तस्य प्रायोग्यं वस्तु परिहर्तव्यम्। तदपरिहरण आलोचना॥ **अपाओग्गसेवणदाए**। अप्रायोग्यान्यकरणीयान्यसंयमनिमित्तानि पुष्पफलपत्रतृणादीनां नखादिभिः कर्तनादीनि परोपहासकरणादीनि वा गीतनृत्यादीनि वा। तेषां प्रमादात्। **आसेवणदाए**। सेवनायामनुष्ठान आलोचना॥ **पाओग्गगरहणदाए**। प्रायोग्याणि सम्यक्त्वज्ञानसंयमतपसां वृद्धिकराणि संयतसेवादीनि। तेषां॥ **गरहणदाए**। अन्येषामग्रे गर्हायां निन्दायां यो दोषः समुत्पन्नस्तस्यालोचना॥ **एत्थ मे जो कोवि**। इत्यादि। अत्र विधिरूपतया निषेधरूपतया वा प्रतिपादिते दैवसिके यत्याचारविशेषे मम तदधिष्ठातुर्यः कश्चित्॥ **देवसियम्हि**। दैवसिकेऽनुष्ठाने दैवसिकस्य वा अनुष्ठानस्य सम्बन्धी॥ **अदिक्कमो**। कुतश्चिद्व्यासंगाच्चित्तसंक्लेशाद्वा–गमोक्तानुष्ठानकालादधिककाल आवश्यकादिक्रियाकरणमतिक्रमः। **वदिक्कमो**। विगतोऽतिक्रमो यस्मिन्नसौ व्यतिक्रमो विषयव्यासंगादिनाऽऽगमोक्तक्रियाकालाद्धीनकाले क्रियाकरणं व्यतिक्रमः॥ **अदिचारो**। आवश्यकादिक्रियाकरण आलस्यादिकमतिचारः॥ **अणाचारो**। व्रतसमित्यादीनामनाचरणं खण्डनं वाऽनाचारः। अथवा–

अतिक्रमो मानसशुद्धिहानि-र्व्यतिक्रमो यो विषयाभिलाषः।
तथाऽतिचारः करणालसत्वं भंगो ह्यनाचार इह व्रतानाम्॥

प्रायोग्य की गर्हा होने से- सम्यक्त्व, ज्ञान, संयम और तप की वृद्धि करने वाले संयत की सेवा आदि है यही प्रायोग्य अर्थात् प्रकृष्ट रूप से करने योग्य है।

गर्हणता से- इस प्रायोग्य की गर्हा होने से अर्थात् अन्य के सामने निन्दा करने पर जो दोष उत्पन्न हुआ हो तो उसकी आलोचना करता हूँ।

एत्थ- इसमें जो कुछ भी- इस यत्याचार के लिए जो विशेष दैवसिक प्रतिक्रमण में विधि रूप से या निषेध रूप से प्रतिपादन किया है उसका अनुष्ठान करने वाले मुझको जो कुछ भी।

दिवस सम्बन्धी- दैवसिक अनुष्ठान सम्बन्धी।

अतिक्रम- किसी व्यासंग से, चित्त संक्लेश से अथवा आगम में कहे हुए अनुष्ठान काल से अधिक काल में आवश्यक आदि क्रिया करना **अतिक्रम** है, अतिक्रम निकल गया है जिसमें से वह व्यतिक्रम है। विषय के व्यासंग से अर्थात् पंचेन्द्रिय के विषयों में मन उलझ जाने से आगमोक्त क्रियाओं के काल से हीन काल में क्रिया करना **व्यतिक्रम** है। **अतिचार**- आवश्यक आदि क्रियाओं के करने में आलस्य करना अतिचार है। **अनाचार**- व्रत, समिति आदि का आचरण नहीं करना अथवा उनका खण्डन कर देना अनाचार है।

अथवा- 'मन की शुद्धि में कमी होना **अतिक्रम** है। जो पंचेन्द्रिय विषयों की अभिलाषा है वह **व्यतिक्रम** है। क्रियाओं में आलस करना **अतिचार** है अथवा करण यानि इन्द्रियाँ, इसमें आलस होना **अतिचार** है। तथा व्रतों का भंग हो जाना **अनाचार** है।'

आभोग- कापोत लेश्या के कारण पूजा-महत्त्व की अभिलाषा से अतिप्रकट अनुष्ठान आभोग है। अतिप्रकट अनुष्ठान से तात्पर्य सबको दिखाने के भाव से अनुष्ठान करना है।

अनाभोग- लज्जा आदि के कारण लोक में कोई देख न ले इस प्रकार अप्रकट अनुष्ठान करना अनाभोग है।

भंते- - - हे भगवन्! अतिक्रम आदि दोषों का मैं निराकरण करता हूँ।

मए- - - अतिक्रमण आदि दूषण मेरे द्वारा जैसे भी हों वैसे शोधित हों।

सम्मत्त मरणं - - सम्यक्त्व न टूटे ऐसा मरण सम्यक्त्व मरण है। **होउ मज्झं**- वह मरण मेरे लिए हो।

समाहि मरणं- धर्म्य ध्यान और शुक्ल ध्यान समाधि है। उस समाधि के साथ मेरा मरण हो।

पंडित मरणं- भक्त प्रत्याख्यान, इंगिनी और प्रायोपगमन मरण के भेद से पंडितमरण तीन प्रकार का है। वह मरण मेरे लिए हो।

वीर्यमरण- वीर्य के साथ अर्थात् कायरता के बिना मेरा मरण हो।

दुक्खक्खओ- चातुर्गतिक दु:खों का क्षय हो।

आभोगो। कापोतलेश्यावशात्पूजामहत्वाभिलाषेणाऽतिप्रकटानुष्ठानमाभोगः।। **अणाभोगो**। लज्जादिवशाल्लोकानामप्रकटानुष्ठानकरण-मनाभोगः। **भंते ! पडिक्कमामि**। भगवन् ! अतिक्रमादिदोषं निराकरोमि॥ **मए पडिक्कंतं**। अतिक्रमणादिदूषणं मया प्रतिक्रान्तं शोधितं यदा भवति तदा॥ **सम्मत्तमरणं**। सम्यक्त्वयुक्तस्यापरित्यक्तसम्यक्त्वस्य मरणं॥ होउ मज्झं। मम भवतु॥ तथा। **समाहिमरणं**। धर्म्यं शुक्लं च ध्यानं समाधिः। तेन मरणं मम भवतु। **पंडियमरणं**। भक्तप्रत्याख्यानेंगिनीपादोपयानमरणभेदात् त्रिविधं पण्डितमरणं मम भवतु॥ **वीरियमरणं**। वीर्ययुक्तस्याक्लीबस्य मरणं मम भवतु॥ **दुक्खक्खओ**। दुःखानां चातुर्गतिकानां क्षयो विनाशः॥ **कम्मक्खओ**। कर्मणां ज्ञानावरणादीनां चतुर्गतिदुःखहेतुभूतानां क्षयः प्रलयो मम भवतु॥ **बोहिलाओ**। बोधे रत्नत्रयस्य लाभो मम भवतु। **सुगइगमणं**। शोभनायां गतौ मोक्षगतौ गमनं मम भवतु। **जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं**। जिनस्य प्रक्षीणाशेषकर्मणो भगवतो गुणा अनन्तज्ञानादयस्तेषां सम्प्राप्तिर्मम भवतु॥

प्रतिक्रमणपीठिकादण्डकविवरणम्।

णिसीहियाए। निषीधि[1] काशब्दोऽनेकार्थाभिधायी। तथाहि - (1) जिनसिद्धप्रतिबिंबानि कृत्रिमाकृत्रिमाणि। (2) तथा तदालयः। (3) बुद्ध्यादिलब्धिसम्पन्ना मुनयः (4) तैराश्रितानि क्षेत्राणि। (5) अवधिमनःपर्ययकेवलज्ञानिनः। (6) ज्ञानोत्पत्तिप्रदेशाः। (7) तैराश्रितक्षेत्राणि। (8) सिद्धजीवाः। (9) तन्निर्वाणक्षेत्राणि। (10) तैराश्रिताकाशप्रदेशाः। (11) सम्यक्त्वादिचतुर्गुणयुक्तास्तपस्विनः। (12) तैराश्रितक्षेत्रम्। (13) तत्त्यक्तशरीराश्रितप्रदेशाः। (14) योगस्थितास्तपस्विनः। (15) तैराश्रितं क्षेत्रम्। (16) तन्मुक्तशरीराश्रितप्रदेशाः। (17) त्रिविधपण्डित-मरणस्थिता मुनयः। इत्यादि। उक्तं च-

1. मूलाराधनाटीकायां 'निषद्या निषद्यका' चेति पाठद्वयं लभ्यते।

कम्मक्खओ- चारों गतियों के दुःख के लिए कारणभूत जो ज्ञानावरण आदि कर्म हैं उन कर्मों का क्षय हो।

बोहिलाओ-मुझे रत्नत्रय का लाभ होवे।

सुगइगमणं-शोभायमान गति मोक्षगति है, उस गति में मेरा गमन हो।

जिनगुण-सम्पत्ति - जिनके समस्त कर्म प्रकृष्ट रूप से क्षय हो गए हैं वह जिन भगवान हैं। उन भगवान् के अनन्तज्ञान आदि गुण हैं। उन गुणों की प्राप्ति मुझे होवे।

इस प्रकार प्रतिक्रमण पीठिका दण्डक विवरण समाप्त हुआ।

निषीधिका - निषीधिका शब्द अनेक अर्थों को कहता है। वह इस प्रकार है -

1. कृत्रिम और अकृत्रिम जिन भगवान् के प्रतिबिंब और सिद्ध भगवान के प्रतिबिंब
2. उन प्रतिबिंबों के जो आलय हैं
3. बुद्धि आदि लब्धि सम्पन्न मुनिगण
4. उन मुनियों के आश्रित क्षेत्र
5. अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान और केवलज्ञान
6. ज्ञान की उत्पत्ति का क्षेत्र
7. उस ज्ञान के द्वारा आश्रित क्षेत्र
8. सिद्ध जीव
9. उनके निर्वाण क्षेत्र
10. उस निर्वाण क्षेत्र के आश्रित आकाश प्रदेश
11. सम्यक्त्व आदि चारों गुणों से सहित तपस्वीगण
12. सम्यक्त्व आदि के आश्रित क्षेत्र
13. उस क्षेत्र के आश्रित त्यक्त शरीर के प्रदेश
14. योग में स्थित तपस्वीगण
15. उन तपस्वियों के आश्रित क्षेत्र
16. उन तपस्वियों के मुक्त शरीर आश्रित प्रदेश
17. तीन प्रकार के पण्डित मरण में स्थित मुनिगण।

जिणसिद्धबिंबणिलया किदगाकिदगा य रिद्धिजुदसाहू।
णाणजुदा मुणिपवरा णाणुप्पत्ती य णाणिजुदखेत्तं॥
सिद्धा य सिद्धभूमी सिद्धाण समासिओ णहोदेसो।
सम्मत्तादिचउक्कं उप्पण्णं जेसु तेहिं सिद्धखेत्तं॥
चत्तं तेहिं य देहं तट्ठवियं जेसु ता णिसीहीओ।
जेसु विसुद्धा जोगा जोगधरा जेसु संठिआ सम्मं॥
जोगिपरिमुक्कदेहा पंडितमरणट्ठिदा णिसीहीओ।
तिविहे पंडितमरणे चिट्ठंति महामुणी समाहीए॥
एयाओ अण्णाओ णिसीहियाओ सया वंदे।

एवंविधार्थस्य निषीधिकाशब्दस्य त्रिः प्रयोगः सर्वासां निषीधिकानामविशेषतः स्तुतिविषयत्वख्यापनार्थम्। अन्ये तु **'णिसीधिए'** इत्यस्यार्थमित्थं व्याख्यानयन्ति–

णि त्ति णियमेहिं जुत्तो सि त्ति य सिद्धिं तहा अहिग्गामि।
धि त्ति य धिदिबद्धकओ ए त्ति य जिणसासणे भत्तो॥ इति

णमोत्थु दे। दे तुभ्यं पूर्वोक्तायै निषीधिकायै नमो नमस्कारोऽस्तु। अत्रापि त्रिर्नमोऽस्तुशब्दप्रयोगो नमस्कर्तुः सर्वासु निषीधिकासु नमस्कारकरणेनाऽत्यन्तव्यावृत्तमात्मानं लक्षयति। **'णमो णिसीहिए'** इति पाठे **'णमोत्थु दे'** इत्यस्याऽरहंतेत्यादिभिः सम्बन्धः। **हे अरहंत**। अर्हन् घातिकर्मक्षयकारक ते तुभ्यं नमोऽस्तु। हे **सिद्ध**। निश्शेषकर्मोन्मूलक। हे **बुद्ध**। हेयोपादेयविवेकसम्पन्न। **हे णीरय**। रजसी ज्ञानादृगावरणे। ताभ्यां निष्क्रान्त। हे **णिम्मल**। द्रव्यभावकलंकरहित। हे **सममण**। समं तृणकांचने शत्रुमित्रे च तुल्यं मनो यस्य। रागद्वेषरहितचित्त इत्यर्थः। **हे सुमण।** शोभनमार्तरौद्ररहितं मनो यस्य। हे **सुसमत्थ**। कायक्लेशानुष्ठाने परिषहसहने च सुष्ठु समर्थाऽक्लीब। हे **समजोग**। शमेन परमोपशमेन योगः सम्बन्धो यस्य। हे **समभाव**।

इत्यादि। कहा भी है- 'जिन, सिद्ध के बिंब तथा उनके निलय, कृत्रिम-अकृत्रिम, ऋद्धि सहित साधु, ज्ञान से युक्त मुनीश्वर, ज्ञान की उत्पत्ति और ज्ञानी से युक्त क्षेत्र,

सिद्ध, सिद्धभूमि, सिद्धों के समाश्रित आकाश प्रदेश, सम्यक्त्व आदि चार जिन स्थानों पर उत्पन्न होते हैं उसमें उनके सिद्धक्षेत्र, उन तपस्वियों ने जहाँ शरीर छोड़ा है उस क्षेत्र (या प्रदेश) की जहाँ स्थापना हुई हो, उन निषिधिकाओं की, जहाँ पर योग धारण करने वाले विशुद्ध योगी और उनके द्वारा आश्रित समीचीन क्षेत्र, योगियों से छोड़ा गया शरीर, पंडित मरण से स्थित निषिधिकाएँ, तीन प्रकार के पंडितमरण में समाधि से जहाँ महामुनि रहते हैं, ये तथा अन्य भी निषिधिकाएँ हैं उनकी सदा मैं वन्दना करता हूँ।

इस गाथा में निषीधिका शब्द का तीन बार प्रयोग किया है जो सभी निषीधिकाओं की सामान्य से स्तुति विषय का ख्यापन (कथन) करने के लिए है। 'णिसीधिए' इसका अर्थ अन्य लोग इस प्रकार करते हैं- 'णि'अर्थात् नियमों से युक्त है 'सि' अर्थात् उसी प्रकार सिद्धि को प्राप्त करता हूँ , 'धि' अर्थात् धृति से बद्ध किया हुआ, 'ए' अर्थात् जिनशासन में भक्त है।

पूर्वाक्त निषीधिकाओं के लिए नमस्कार हो। यहाँ पर तीन बार नमोऽस्तु शब्द का प्रयोग है जो नमस्कार करने वाले की सभी निषीधिकाओं में नमस्कार करने से अत्यन्त भिन्न अपने को दर्शाता है।

'**णमो णिसीहिए**' इस पाठ के स्वीकार करने पर '**णमोत्थु दे**' इस नमोऽस्तु का संबंध 'अरिहंत' इत्यादि पाठ के साथ करना।

हे अरहंत - घाति कर्म का क्षय करने वाले अर्हन् हैं। उन अरहंत के लिए नमस्कार हो।

हे सिद्ध- समस्त कर्मों का नाश करने वाले सिद्ध हैं।

हे बुद्ध- जो हेय-उपादेय के विवेक से सम्पन्न हैं।

हे णीरय- ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्म रज रूप हैं, उन रजों से जो रहित हो गए हैं।

हे णिम्मल- द्रव्य और भाव कर्म के कलंक से रहित।

हे सममण- तृण और कांचन में समान तथा शत्रु-मित्र में जिनका मन तुल्य हो अर्थात् राग- द्वेष से रहित चित्त वाले।

हे सुमण- शोभन अर्थात् आर्त, रौद्र से रहित मन जिनका है वह।

हे सुसमत्थ- कायक्लेश के अनुष्ठान में और परीषह के सहने में जो समर्थ है वह पुरूषार्थहीन नहीं हैं।

हे समजोग- शम अर्थात् परम उपशम के साथ जिनका सम्बन्ध है वह समयोग हैं।

हे समभाव- संसार का उपशम करने के लिए अथवा राग, द्वेष का परिहार करने के लिए बारह अनुप्रेक्षाओं की भावना रूप भाव समभाव है।

शमार्थं संसारोपशमार्थंरागद्वेषपरिहारार्थं वा भावो द्वादशानुप्रेक्षाभावनारूपो यस्य। एवंविधा ये यूयमर्हदादयस्तेभ्यो नमोऽस्तु। एवं सामान्यतः सर्वानर्हदादीन् स्तुत्वा पुनर्विशेषतोऽन्तिमतीर्थकरं स्तुवन्। 'सल्लघट्टाणं'-मित्याद्याह। **सल्लघट्टाणं**। चतुर्गतिसंसारे जीवान् शृणन्ति शारीरमानसागन्तुकदुःखैर्हिंसंति पीडयन्तीति शल्यानि निदानादीनि क्रोधादीनि च बाणादिशल्यवत्। तैर्घट्टानां पीडितानाम्। ये हि शल्यैर्घट्ट्यन्ते पीड्यन्ते ते शल्यघट्टाः। तेषां शल्यघट्टानां प्राणिनाम्।

हे **सल्लघत्ताण**। तद्दुःखहेतुभूतशल्यविनाशन। हे **णिब्भय**। सप्तभयरहित। हे **णीराय**। नीराग। निर्गतो रागो विषयासक्तिर्यस्य। हे **णिद्दोस**। हे निर्दोष। निष्कलंक अथवा अष्टादशदोषरहित। हे **णिम्मोह।** मोहादज्ञानाद्दर्शन-चारित्रमोहाद्वा निष्क्रान्त। हे **णिम्मम**। निर्मम। क्वचिदपि विषये ममत्वरहित। हे **णिस्संग**। बाह्याभ्यन्तरेण संगेन परिग्रहेण रहित। हे **णिस्सल्ल**। मायादिशल्यरहित। हे **माणमायामोसमूरण**। मानश्च गर्वो, माया च योगवक्रता, मोषश्च मृषावादस्तेषां मूरण मर्दक। हे **तवप्पहावण**। तपसां प्रभावो माहात्म्यम्। प्रकृष्टानां वा तपसां भावनाऽनुष्ठानं यत्र। तपसा वा कायक्लेशादिना प्रभावना दर्शनोद्योतो यस्मात्। हे **गुणरयणसीलसायर**। गुणाश्चतुरशीतिलक्षसंख्याः, रत्नानि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि शीलान्यष्टादशसहस्रसंख्यानि तेषां सागर समुद्र निवासस्थान। हे **अणंत**। अनंतकेवलज्ञानदर्शनादियुक्त। हे

इस प्रकार जो आप सभी अर्हन्त आदि हैं उनके लिए नमस्कार हो।

इस तरह सामान्य से सभी अर्हन्त आदि की स्तुति करके पुनः विशेष रूप से अन्तिम तीर्थंकर की स्तुति करते हुए।

'सल्लघट्टाणं' - अब इसको कहते हैं-

सल्लघट्टाणं- चतुर्गति संसार में शरीर और मन से होने वाले दु:खों के द्वारा जो जीवों को बाण आदि की पीड़ा के समान पीड़ा देते हैं उन निदान आदि और क्रोध आदि को शल्य कहते हैं। उन शल्यों से जो पीड़ित हैं उनको अथवा जो शल्यों के द्वारा पीड़ित हुए हैं उन प्राणियों को।

सल्लघत्ताण-उस दु:ख के कारणभूत शल्य के विनाशक।

हे णिब्भय!- हे सप्तभय से रहित!

हे णीराय! हे नीराग, जिनका राग निकल गया या विषयासक्ति से जो रहित हैं वह नीराग हैं।

हे णिद्दोस! हे निर्दोष!, हे निष्कलंक! अथवा हे अठारह दोषों से रहित!

हे णिम्मोह! मोह से, अज्ञान से अथवा दर्शनमोह, चारित्रमोह से जो रहित हैं, ऐसे हे निर्मोह!

हे णिम्मम! - हे निर्मम! किसी भी विषय में ममता से रहित ऐसे हे निर्मम!

हे णिस्संग! - हे नि:संग! बाह्य और अभ्यन्तर संग (परिग्रह) से रहित!

हे णिस्सल्ल! हे माया आदि शल्य से रहित!

हे माण माया मोस मूरण! मान अर्थात् गर्व, माया अर्थात् योगों की कुटिलता, मोष अर्थात् झूठ बोलना- इन मान, माया, मोषों के मूरण मर्दक।

हे तवप्पहावण! जिनमें तप का प्रभाव या महिमा है वे अथवा प्रकृष्ट तप की भावना, अनुष्ठान जिनमें है वह। अथवा काय क्लेश आदि तप के द्वारा प्रभावना करना, जिनदर्शन का उद्योत करना जिनके माध्यम से होता है ऐसे हे तवप्पहावण!

हे गुणरयण सीलसायर! चौरासी लाख गुण हैं, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रत्न हैं। अठारह हजार शील हैं।

उन गुण, रत्न और शील के सागर, समुद्र या निवासस्थान।

हे अनंत! अनंत केवलज्ञान और दर्शन आदि से सहित हे अनंत!

अप्पमेय। इन्द्रियज्ञानापरिच्छेद्य। एवंविधविशेषणविशिष्ट- **महदिमहावीरवड्ढमाण**। अन्तिमतीर्थकरदेवस्य हीदं नामद्वयम्। भगवतो हि गर्भावतारादौ पित्रोरिन्द्रादिभिर्महती पूजा कृता रत्नवृष्ट्यादिका च। अतो बन्धुजनैर्भगवतो वर्धमान इति नाम कृतम् । अव समन्तात्ऋद्धो मानःपूजातिशयो ज्ञानाद्यतिशयो वा यस्मादिति कृत्वा दीक्षां च गहीत्वा ध्यानेन स्थितस्य तच्चालनार्थं रुद्रेण महत्युपसर्गे कृते ध्यानादचलित इति हेतोर्महतिमहावीर इति तेन नाम कृतम्। तस्येत्थम्भूतस्य **बुद्धरिसिणो** बुद्धो यथावत् परिज्ञाता शेषार्थस्वरूपः। स **चासौ** ऋषिश्च केवलज्ञानादिक्षायिक-नवकेवललब्धिसम्पन्नः। तस्मै **णमोत्थु दे।** नमोऽस्तु ते। नमोऽस्तु ते। नमोऽस्तु ते। तथा-**मम मंगलं।** मलगाननिमित्तम् भवंतु। के ते? **अरहंता य।** अर्हन्तश्च। **सिद्धा य।** सिद्धश्च। **बुद्धा य।** बुद्धश्च हेयोपादेयविवेकसम्पन्नाः। **जिणा य।** जिनाश्चानेक-भवगहनव्यसनप्रापणहेतुकर्मारात्युन्मूलकाः। च शब्दः सर्वत्र परस्परसमुच्चय। **केवलिणो ओहिणाणिणो।** केवलिनोऽवधिज्ञानिनश्च। **मणपज्जवणाणिणो।** मनःपर्ययज्ञानिनः। **चोद्दसपुव्वंगमिणो**। चतुर्दशपूर्वाणामंगानां च मा परिज्ञानम्। सा येषामस्ति ते चतुर्दशपुर्वांगमिणः। **ब्रीह्यादि**त्वादिन्। चतुर्दशपूर्व-द्वादशांगविद इत्यर्थः। **सुदसमिदिसमिद्धा य।**श्रुतस्यांगबाह्यस्य कालिकोत्कालिकादिभेदभिन्नस्य समितिः समूहस्तेन समृद्धाश्च तत्परिज्ञानवन्तः। न केवलमेत एवार्हदादयो मम मलगाननिमित्तं भवन्तु, अपि तु॥

हे अप्पमेय-इन्द्रिय ज्ञान से नहीं जानने योग्य।

इस प्रकार के विशेषणों से विशिष्ट-

महतिमहावीरवर्धमान!। अन्तिम तीर्थंकर देव के ही ये दो नाम हैं-महति महावीर और वर्धमान।

भगवान के गर्भावतार आदि के समय इन्द्र आदि के द्वारा जो माता-पिता की महती पूजा की रत्नवृष्टि आदि हुई। इसलिए बन्धुजनों ने भगवान का नाम वर्धमान रखा था।

पूजातिशय अथवा ज्ञानादि का अतिशय मान है। वह मान चारों ओर से जिनका बढ़ा हुआ था। जिस कारण से दीक्षा ग्रहण करके ध्यान में स्थित हुए, उस ध्यान से चलायमान करने के लिए रुद्र ने भगवान पर बहुत बड़ा उपसर्ग किया फिर भी वह ध्यान से विचलित नहीं हुए, इस हेतु से उनका नाम 'महतिमहावीर' रखा गया।

इस प्रकार के बुद्धिऋषि के लिए नमस्कार हो। **बुद्धरिसिणो**- जिन्हें समस्त पदार्थों का स्वरूप यथावत् (ज्यों का त्यों) परिज्ञात है, तथा वह ऋषि भी हैं। क्योंकि वह केवलज्ञान आदि क्षायिक नव केवल लब्धियों से सहित हैं।

णमोत्थु दे- उनके लिए नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो।

तथा **मम मंगलं**- तथा मेरे लिए मंगल हों, मलगालन में निमित्त हों। वे कौन?

अरहंता य - अर्हन्त भगवान

सिद्धा य -सिद्ध भगवान

बुद्धा य - हेय-उपादेय के विवेक से सम्पन्न बुद्ध हैं।

जिणा य - अनेक प्रकार के संसार के गहन दुःखों को प्राप्त कराने के लिए कारणभूत कर्म शत्रुओं के उन्मूलक (विनाशक) हैं। च शब्द सर्वत्र परस्पर समुच्चय के लिए है।

केवलिणो ओहिणाणिणो - केवलज्ञानी, अवधिज्ञानी के लिए नमस्कार हो।

मणपज्जवणाणिणो - मनःपर्यय ज्ञानी के लिए नमस्कार हो।

चोद्दसपुव्वंगमिणो - चौदह पूर्व और अंगों का ज्ञान जिनको है ऐसे चौदह पूर्व के धारी द्वादशांग के ज्ञाता के लिए नमस्कार हो।

सुदसमिदि समिद्धा य - जो श्रुत समिति (समूह) से समृद्ध हैं। कालिक-उत्कालिक आदि के भेद से भिन्नता को प्राप्त अंग बाह्य श्रुत के समूह से समृद्ध हैं अर्थात् अंग बाह्य श्रुत के परिज्ञाता हैं।

न केवल ये ही मंगल हों किन्तु अर्हन्त आदि भी मेरे पापों को नष्ट करने में निमित्त हों।

तवो य बारसविहो। तपो द्वादशप्रकारं मम मंगलं भवतु। **तवस्सी**। तेन तपसा युक्तास्तपस्विनो मुनयो मम मंगलं भवंतु। **गुणा य। गुणवंतो य** चतुराशीतिलक्षसंख्याः गुणाश्च। गुणवन्तो ये तैर्गुणैर्युक्ता मुनयः। **महरिसी तित्थं तित्थंकरा य**। महर्षयः कोष्ठबुद्धिबीजबुद्ध्यादिपरमर्द्धियुक्ता मुनयः। तीर्थमागमस्तदाधारसंघश्च। तीर्थकराश्च तीर्थकरदेवा गणधरदेवाश्च। **पवयणं**। प्रकृष्टं पूर्वापरविरोधादिदोषरहितं वचनम्। **पवयणी य**। प्रवचनी च प्रकृष्टवचनयुक्तः पुरुषविशेषः। **णाणं**। मत्यादिज्ञानं पञ्चविधम्। **णाणी य**। ज्ञानी च तज्ज्ञानयुक्तः पुरुषविशेषः। **दंसणं**। औपशमिकादिदर्शनत्रयम्। **दंसणी य**। दर्शनी च तद्दर्शनयुक्तः पुरुषविशेषः। **संजमो**। संयमो द्वादशप्रकारः। **संजदा य**। संयताश्च तद्युक्ता मुनयः। **विणओ**। विनयश्च ज्ञानदर्शनचारित्रोपचार लक्षणश्चतुर्विधो विनयः। **विणीदा य।** विनीताश्च विनयेन युक्ता मुनयः। बंभचेरवासो य। ब्रह्मचर्यवासश्च। ब्रह्मणि गुरुकुले व्रते वा चर्यतेऽनुष्ठीयत इति ब्रह्मचर्यम्। तेन सह वासस्तद्युक्तत्वेनावस्थानम्। **बंभचेरवासी य**। तत्सहवासवानात्मा। **गुत्तीओ चेव**। गुप्तयश्चैव सम्यग्योगनिग्रहलक्षणास्तिस्रः। **गुत्तिमंतो य**। गुप्तिमन्तश्चात्मानः। **मुत्तीओ चेव**। मुक्तयश्चैव। बहिरन्तर्वापरिग्रहमोचनानि परित्यागाः। **मुत्तिमंतो य**। तद्वन्तश्चात्मानः। **समिदीओ चेव**। ईर्यादयः पञ्चसमितयश्चैव। **समिदिमंतो य**। तद्वन्तचात्मानः। **ससमयपरसमयविदू**। स्वसमयो जैनमतं, परसमयः

तवो य बारस विहो- बारह प्रकार का तप मेरे लिए मंगल हो। **तवस्सी**-उस तप से सहित तपस्वी, मुनि मेरे लिए मंगल हों।

गुणा य। गुणवंतो य- चौरासी लाख गुण हैं। उन गुणों से सहित जो मुनि हैं वे गुणवान् हैं। वे मंगल हों।

महरिसी तित्थं तित्थंकरा य - कोष्ठ बुद्धि, बीज बुद्धि आदि परम ऋद्धियों से सहित मुनि महर्षि हैं। आगम और उस आगम के आधार से रहने वाला संघ तीर्थ है। तीर्थंकर देव और गणधर देव भी मंगल हों।

पवयणं-प्रवचन-पूर्वापर विरोध आदि दोषों से रहित प्रकृष्ट वचन प्रवचन हैं। वे मंगल हों।

पवयणी य- प्रवचनी च- प्रकृष्ट वचन से युक्त पुरुष-विशेष प्रवचनी है। वे मंगल हों।

णाणं - ज्ञान - मति आदि पाँच प्रकार का है। वह मंगल हो।

णाणी य-ज्ञानी-उस ज्ञान से युक्त पुरुष-विशेष ज्ञानी है।

दंसणं - दर्शन - औपशमिक आदि तीन प्रकार के सम्यग्दर्शन हैं। वह मंगल हो।

दंसणी य -दर्शनी-उस सम्यग्दर्शन से युक्त पुरुष-विशेष दर्शनी है। वह मंगल हो।

संजमो - संयम - बारह प्रकार का है। वह मंगल हो।

संजदा य - संयत - बारह प्रकार के संयम से सहित मुनि हैं।

विणओ - विनय - ज्ञान, दर्शन, चारित्र और उपचार के लक्षण से चार प्रकार का विनय है।

विणीदा य - विनीत - विनय से सहित मुनि विनीत है।

बंभचेरवासो य - ब्रह्मचर्य में वास करना। ब्रह्म में, गुरुकुल में अथवा व्रत में चर्या करना, अनुष्ठान करना ब्रह्मचर्य है। उस ब्रह्मचर्य के साथ रहना अर्थात् उस ब्रह्मचर्य से सहित होकर अवस्थान; आत्मा में ठहरना है।

बंभचेरवासी य - उस ब्रह्मचर्य के साथ रहने वाला आत्मा।

गुत्तीओ चेव - समीचीन रूप से योगों के निग्रहलक्षण वाली तीन गुप्तियाँ हैं।

गुत्तिमंतो य - गुप्ति धारण करने वाली आत्माएँ।

मुत्तीओ चेव - मुक्तियाँ। बहिरंग और अंतरंग परिग्रह को छोड़ना परित्याग है, वही मुक्ति है।

मुत्तिमंतो य - उस परित्याग से सहित (मुक्त) आत्माएँ।

समिदीओ चेव- ईर्या आदि पाँच समितियाँ हैं।

समिदिमंतो य- उन समितियों से सहित आत्माएँ।

परमतानि। तौ विदन्ति ये ते तद्विदः। **खंतिखवगा य**। क्षान्त्या सकलपरीषहसहनेन परमक्षमया वा '**खवगा य**' क्षपकाश्च। क्षपकश्रेण्यारूढाः। **खीणमोहा य**। क्षीणमोहाश्च। क्षीणो मोहो दर्शनचारित्रमोहनीयं कर्म येषां ते क्षीणमोहाः। क्षीणकषायगुणस्थानवर्तिनः। **बोहियबुद्धा य**। बोधितबुद्धाश्च। संसारशरीरविषयादौ हि परोपदेशादेर्वैराग्यं प्रतिपन्नास्ते बोधितबुद्धिः। **बुद्धिमंतो य**। बुद्धियो हि कोष्ठबुद्धिप्रभृतयो विद्यंते येषां ते बुद्धिमंतः। **चेदियरुक्खा य**। चैत्यवृक्षाश्च। चैत्यानि हि जिनादिप्रतिबिम्बानि। तेषामाधारभूता वृक्षाश्चैत्यवृक्षाः। **चेदियाणि**। कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यानि। य अर्हंत इत्यादयचैत्यवृक्षपर्यन्ता व्याख्यातास्ते सर्वे मम मंगलं भवन्त्विति सम्बन्धः। तथा - **उड्ढमहतिरियलोए सिद्धायदणाणि णमंसामि**। सिद्धायतनानि सिद्धप्रतिमानामधिष्ठानानि। **णमंसामि**। नमस्करोमि। क्व ? **उड्ढमहतिरियलोए**। मेरोरुपर्यूर्ध्वलोकस्ततोऽधस्तादधोलोकः। मेरुप्रमाणस्तिर्यग्लोकस्तत्र। तथा -**सिद्धणिसीहियाओ**। सिद्धानां मुक्तात्मनां निषीधिका निर्वाणक्षेत्राणि नमस्यामि। क्व ताः सिद्धनिषीधिकाः ? **अट्ठावयपव्वए**। अष्टापदपर्वते कैलासपर्वते। **सम्मेदे**। सम्मेदपर्वते। **उज्जंते**। ऊर्जयन्तपर्वते। **चंपाए**। चम्पानगर्याम्। **पावाए**। पावानगर्याम्। **मज्झिमाए**। मध्यमानगर्याम्। **हत्थिवालियसहाए**। हस्तिवालिकामण्डपे। **जाओ अण्णाओ**। इत्यादि। अन्या उक्तनिषीधिकाभ्यो व्यतिरिक्ता अनिर्दिष्टनामानो याः काश्चिदपि निषीधिकाः। **जीवलोयम्हि**। अर्धतृतीयद्वीपसमुद्रद्वये । केषां निषीधिका इत्याह-**इसीत्यादि**। सिद्धानां निषीधिकाः। कथम्भूतानां सिद्धानां? **इसिपब्भारतलगयाणं**। ईषत्प्राग्भारो मोक्षशिला। तस्य तलमुपरितनभागः। तत्र गतानां स्थितानाम्। तथा-**बुद्धाणं**। पदार्थस्वरूपपरिज्ञानवतां, न पुनर्जडरूपाणाम्। तथा-**कम्मचक्कमुक्काणं**।

स-समय पर-समय विदू-स्वसमय जैनमत है, पर समय परमत है। उन दोनों को जो जानते हैं वे स्वसमय परसमय वेत्ता कहलाते हैं।

खंति खवगा य-क्षांति अर्थात् सकल परीषह को सहन करना या परम क्षमा से युक्त होना। उस क्षांति से सहित क्षपक श्रेणी पर आरूढ क्षपकजीव खंतिखवगा कहलाते हैं।

खीणमोह य - क्षीणमोह - मोह अर्थात् दर्शन मोहनीय और चारित्रमोहनीय कर्म जिनका क्षीण हो गया है अर्थात् विनष्ट हो गया है वे क्षीण मोह हैं। ये जीव क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती (12वें गुणस्थानवर्ती) हैं।

बोहिय बुद्धा य- बोधितबुद्धा-परोपदेश से जो संसार, शरीर और इंद्रिय विषय आदि में वैराग्य को प्राप्त हुए हैं वह बोधितबुद्ध हैं।

बुद्धिमंतो य- कोष्ठबुद्धि आदि (ऋद्धियाँ) बुद्धि हैं। ये बुद्धियाँ जिनके होती हैं वह बुद्धिमंत है।

चेदिय रुक्खा य- चैत्यवृक्ष - जिन आदि के प्रतिबिम्ब चैत्य हैं। उन प्रतिबिम्बों के आधारभूत वृक्ष चैत्यवृक्ष हैं।

चेदियाणि - कृत्रिमाकृत्रिमचैत्य।

जो अर्हंत इत्यादि से लेकर चैत्यवृक्ष पर्यन्त तक कहे गये हैं वे सभी मेरे लिए मंगल हो, इस प्रकार प्रत्येक पद के साथ संबंध कर लेना।

तथा -**उड्ढमहतिरियलोए सिद्धायदणाणि णमंसामि**-सिद्धप्रतिमाओं के अधिष्ठान-स्थान सिद्धायतन हैं।

णमंसामि - उनके लिए नमस्कार करता हूँ। कहाँ ?

उड्ढमहतिरियलोए - मेरुपर्वत के ऊपर ऊर्ध्व लोक है और मेरुपर्वत के नीचे अधोलोक है। मेरु की ऊँचाई के बराबर तिर्यग्लोक है। इन तीनों लोकों में।

तथा- **सिद्ध णिसीहियाओ**- सिद्धों अर्थात् मुक्त आत्माओं के

निषीधिका- निर्वाण क्षेत्रों को मैं नमस्कार करता हूँ। वह निषीधिकाएँ कहाँ हैं?

अट्ठावयपव्वए - अष्टापदपर्वत पर- कैलास पर्वत पर। **सम्मेदे**-सम्मेद शिखर पर्वत पर। **उज्जंते**-ऊर्जयन्त पर्वत पर।

चंपाए - चम्पानगरी में। **पावाए** - पावानगरी में। **मज्झिमाए** - मध्यमा नगरी में। **हत्थिवालियसहाए** - हस्तिवालिका मण्डप में।

जाओ अण्णाओ - कही हुई निषीधिकाओं से अन्य भी जिनके नाम नहीं कहे हैं, वे जो भी निषीधिकाएं हैं, उनमें।

जीवलोयम्हि- अढाई द्वीप और समुद्र में।

किनकी निषीधिकाएं हैं ? ऐसा पूछने पर कहते हैं-सिद्धों की निषीधिकाएं। कैसे सिद्धों की ?

इसिपब्भारतलगयाणं- ईषत् प्राग्भार मोक्षशिला है। उसका तल-उपरिम भाग। उस पर जाकर जो स्थित हुए हैं, उनकी। तथा

बुद्धाणं-(बुद्धों की) जो पदार्थों के स्वरूप के पूर्ण ज्ञाता हैं, जड रूप नहीं हैं। तथा-

कर्मणां ज्ञानावरणादिनां चक्रं मूलोत्तरप्रकृतिभेदप्रपञ्चः। तेन मुक्तानां रहितानाम्। तथा-**णीरयाणं**। रजो ज्ञानदृगावरणे पापं वा। ततो निष्क्रान्तानाम्। तथा-**णिम्मलाणं।** मलः सम्यग्दर्शनाद्यतिचारः भावकर्म वा। ततो निष्क्रान्तानाम्। तथा-**गुरु-आयरिय-उवज्झायाणं**। गुरवो दीक्षागुरवः शिक्षागुरव इत्यादयः। आचार्याः पञ्चविधाचारचरणाचरणकुशलाः। उपाध्याया अंगप्रविष्टांगबाह्यश्रुतोपदेशकाः। एतेषां च याः काश्चिन्निषीधिकाः। तथा-**पव्वत्तिथेरकुलयराणं**। प्रवर्तिनां सन्मार्गप्रवर्तकानां, स्थविराणां वयोवृद्धानां, गुणज्येष्ठानां वा, कुलकराणां नन्दिदेवसेनसिंहसंघदेशिगणबलात्कारगणकाणूरगणसूरस्थगण-प्रभृतिसंघगणभेदकराणां च याः काश्चिन्निषीधिकास्ता नमस्यामि। तथा-**चाउवण्णो य समणसंघो य**। श्रमणानां व्रतिनां सङ्घः समुदायः। चातुर्वर्णश्चतुष्प्रकारः, ऋषियतिमुन्यनगारभेदात्, अथवा ऋष्यार्यिकाश्रावकश्राविकाभेदात्। क्वत्यस्तत्संघः? **भरहेरावएसु दससु**। अर्धतृतीयद्वीपेषु हि पंच भरताः पंचैरावताश्च तेषु यस्तत्संघः। तथा-**पंचसु महाविदेहेसु**। यस्तत्संघः स मम मङ्गलं भवत्विति। तथा-**जे लोए संति साहू**। लोके मानुषोत्तरवलयाकृतिपर्वतावधिक्षेत्रे ये सन्ति साधवः। सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैर्मोक्षं साधयन्ति साधितवन्तश्च ये ते साधवः॥ तथा-**संजदा तवस्सी।** संयतास्तपस्विनः। **एदे मम मंगलं पवित्तं।** ऐते कर्तृभूता मम पवित्रं मंगलं मलगालननिमित्तं सुखावाप्तिनिमित्तं वा भवन्तु। **एदेहं मंगलं करेमि भावदो विसुद्धो सिरसा**। एतान्कर्मतापन्नानहं भावतो विशुद्धः शिरसोत्तमांगेन मंगलं करोमि स्तुतिगोचरतां नयामि, 'आदौ मध्येऽवसाने च मंगलं भाषितं बुधैः। तज्जिनेन्द्रगुणस्तोत्र'-मित्याभिधानात्। किं कृत्वा तान्मंगलं करोमि? **सिरसा अहिवंदिऊण सिद्धे**। शिरसाऽभिवंद्य सिद्धान्। किं कृत्वा? **काऊण अंजलिं मत्थयम्हि**। मस्तके अंजलिं करमुकुलं कृत्वा। अहं किंविशिष्टः? **तिविहं तिरयणसुद्धो**। देववंदनाप्रतिक्रमणस्वाध्याय-लक्षणत्रिविधक्रियानुष्ठाने त्रीणि करणानि मनोवाक्कायलक्षणानि शुद्धानि यस्य।

॥ इति निषीधिकादण्डकविवरणम् ॥

कम्मचक्कमुक्काणं - ज्ञानावरण आदि कर्मों का चक्र अर्थात् मूलोत्तर प्रकृति के भेदों का विस्तार है। उस कर्म-समूह से मुक्त हुए हैं उनकी। तथा- **णीरयाणं** - ज्ञानावरण, दर्शनावरण आदि कर्म अथवा पाप रज है। उस रज से जो निष्क्रान्त हुए हैं उनकी।

णिम्मलाणं - सम्यग्दर्शन आदि का अतिचार मल है अथवा भावकर्म मल है। उस मल से जो रहित हैं उनकी।

तथा-**गुरु-आयरिय-उवज्झायाणं**-दीक्षागुरु, शिक्षागुरु इत्यादि गुरु हैं। पाँच प्रकार के आचार का चरित्र आचरण करने में कुशल आचार्य हैं। अंग प्रविष्ट और अंगबाह्य श्रुत के उपदेशक उपाध्याय हैं। इनकी जो कोई निषीधिकाएँ हैं।

तथा- **पव्वत्तिथेरकुलयराणं** - प्रवर्तिन् अर्थात् सन्मार्ग के प्रवर्तक। वयोवृद्ध स्थविर हैं अथवा गुणों में ज्येष्ठ स्थविर हैं। कुलकरों के नन्दि, देव, सेन, सिंह के संघों और देशिगण, बलात्कारगण, काणूरगण, सूरस्थगण आदि संधगणों के भेद से जो कोई भी निषीधिकाएं हैं उनको नमस्कार करता हूँ।

तथा-**चाउवण्णो य समणसंघो य** - श्रमणों का और व्रतियों का संघ है वह चातुर्वर्ण है। जो चार प्रकार का है। ऋषि, यति, मुनि और अनगार के भेद से अथवा ऋषि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका के भेद से चार प्रकार का है। यह संघ किस स्थान से संबन्ध रखता है ?

भरहेरावएसु दससु - अढ़ाई द्वीप में पाँच भरत और पाँच ऐरावत क्षेत्र हैं। उन क्षेत्रों में जो है वह संघ है।

तथा-**पंचसु महाविदेहेसु**-तथा पाँच महाविदेहों में जो संघ है वह मेरे लिए मंगल हो।

तथा- **जे लोए संति साहू** - वलयाकार मानुषोत्तर पर्वत के अन्दर का क्षेत्र मनुष्य लोक है। उस लोक में जो साधु रहते हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र के द्वारा मोक्ष की सिद्धि करते हैं और जो पहले सिद्धिकर चुके हैं वे साधु हैं।

तथा- **संजदा तवस्सी**- संयत और तपस्वी।

ये सभी मेरे लिए पवित्र हों, मंगल हों, पाप-विनाश के निमित्त हों अथवा सुख की प्राप्ति के निमित्त हों।

एदेहं मंगलं करेमि भावदो विसुद्धो सिरसा-कार्यों को सिद्ध करने वाले इन सभी को भाव से विशुद्ध होता हुआ शिर से मंगल करता हूँ, स्तुति के विषय को प्राप्त होता हूँ। 'प्रारम्भ में, मध्य में, और अन्त में बुद्धिमानों के द्वारा मंगल करना कहा गया है। वह मंगल जिनेन्द्र भगवान के गुणों का स्तोत्र है।' इत्यादि वचन कहे हैं। क्या करके उनका मंगल करता हूँ ?

सिरसा अहिवंदिऊण सिद्धे-शिर से सिद्धों की वन्दना करके।

काऊण अंजलिं मत्थयम्हि-मस्तक पर अंजुलि बनाकर। मैं कैसा हूँ ?

तिविहं तिरयणसुद्धो - देववन्दना, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय लक्षण वाले तीन प्रकार के क्रियानुष्ठान में मन, वचन, काय ये तीनों करण जिसके शुद्ध हैं। ऐसा होता हुआ मैं वन्दना करता हूँ।

यह निषीधिका दण्डक का विवरण समाप्त हुआ।

पडिक्कामि भंते। भंते भगवन् प्रतिक्रमामि विशुद्धिं करोमि। कस्येत्याह। **देवसियस्से**त्यादि। दैवसिकस्य दिवसे संजातस्यातिचारस्यानाचारस्य च प्रागुक्तलक्षणस्य॥ तथा-**मणदुच्चरियस्स**। मनसो दुश्चरित्रं दुश्चेष्टितं तस्य॥ **वचिदुच्चरियस्स**। वचसो दुश्चरित्रस्य दुश्चेष्टितस्य॥ **कायदुच्चरियस्स**। कायस्य दुश्चरित्रं विरूपकं चेष्टितं तस्य विशुद्धिं करोमि। तथा- **णाणाइचारस्स दंसणाइचारस्स तवाइचारस्स वीरियाइचारस्स चारित्ताइचारस्स**। दैवसिकस्य ज्ञानातिचारस्य दर्शनातिचारस्य तपोऽतिचारस्य वीर्यातिचारस्य चारित्रातिचारस्य च विशुद्धिं करोमि। तथा-**पंचण्हं महव्वयाणं**। पंचानां महाव्रतानाम्। **पंचण्हं समिदीणं**। पंचानां समितीनाम्। **तिण्हं गुत्तीणं**। तिसृणां गुप्तीनाम्। **छण्हं आवासयाणं**। षण्णामावश्यकानाम्। **छण्हं जीवणिकायाणं**। षण्णां जीवनिकायानाम्। **विराहणाए**। विराधनायाम्। **आगमोत्त**—आगमोक्तमार्गेण हि प्राणिनां प्रमादादप्रवृत्तौ व्रतादीनां विराधना भवति। तस्यां सत्याम्। **पील कदो वा** इत्यादि। **पील** पीडा। **कदो वा**। कृतो वा। आगमोक्तविधिना हि प्रवृत्त्यभावे व्रतादीनां खंडनं सातिचारता वा पीडा। जीवानां तु दुःखोत्पत्तिः पीडा। स स्वयं कृतः। **कारिदो वा**। अन्येन वा नरेण कारितः। **कीरंतो वा समणुमण्णिदो**। अन्येन क्रियमाणो वा समनुमतः। **तस्य मिच्छा मे दुक्कडे**। तस्य पीलस्य संबंधिनि। **दुक्कडे** दुष्कृते पापे मिथ्या विफलता मे भवतु। 'दुक्कड-' मिति पाठे तत्पीडायाः संबंधि दुष्कृतं मे मिथ्या निष्फलं भवत्विति।

पडिक्कमामि भंते। इत्यादि। **अइगमणे**। अतीववेगेन रभसाद्गमने। **णिग्गमणे**। निर्गमने गमनक्रियाप्रथमप्रारम्भे। **ठाणे**। स्थितिक्रियायाम्। **गमणे**। सामान्येन गमनक्रियायाम्। **चंकमणे**। निरर्थकपरिभ्रमणे। **उव्वत्तणे**। उद्वर्तने। **परियत्तणे**। परिवर्तने। **आउंचणे**। हस्तपादादीनामाकुंचने। **पसारणे**। तेषामेव प्रसारणे। **आमासे**। आमर्शे नियतशरीरप्रदेशसंस्पर्शे। **परिमासे**। परि समन्तान्मर्शे सर्वशरीरसंस्पर्शे। **कूइदे**। उत्स्वप्नायिते, पूत्कृते वा। **कक्कराइदे**। दन्तकडकडा**यिते**, अतीवकर्कशशब्दे वा। **चलिदे**। गमनार्थं शरीरपरिस्पन्दे। **णिसण्णे**। उपवेशने। **सयणे**। शयनक्रियायाम्। **उव्वटणे**। सुप्तस्योत्थायोद्भवने। **परियट्टणे**। उद्भस्य सत उपविश्य शयने। एतेषु स्थानेषु। **एइंदियाणं बेहंदियाणं तेइंदियाणं चउरिंदियाणं पंचिदियाणं जीवाणं**। एकेन्द्रियाणां द्वीन्द्रियाणां त्रीन्द्रियाणां चतुरिन्द्रियाणां पंचेन्द्रियाणां वा जीवानाम्। **विराहणाए**। विराधनायां पीडायाम्। कया कृत्वा सा विराधना। **संघट्टणाए**।

पडिक्कमामि भंते। -हे भगवन् मैं प्रतिक्रमण करता हूँ अर्थात् विशुद्धि करता हूँ। किसकी? ऐसा पूछने पर कहते हैं।

देवसियस्स इत्यादि। दैवसिक अर्थात् दिन में हुए अतिचार और अनाचार की, जिनका कि लक्षण पहले कहा गया है, उनकी मैं विशुद्धि करता हूँ तथा - **मणदुच्चरियस्स—** मन से हुए दुश्चरित्र या दुश्चेष्टा उसकी **वचिदुच्चरियस्स—**वचनों से हुए दुश्चरित्र या दुश्चेष्टा उसकी **कायदुच्चरियस्स—**काय से हुए दुश्चरित्र विरूपक चेष्टाएँ उसकी मैं विशुद्धि करता हूँ तथा **णाणाइचारस्स दंसणाइचारस्स तवाइचारस्स वीरियाइचारस्स चारित्ताइचारस्स—**दैवसिक ज्ञानातिचार की, दर्शनातिचार की, तपोतिचार की, वीर्यातिचार की, और चारित्रातिचार की मैं विशुद्धि करता हूँ। तथा- **पंचण्हं महव्वयाणं—**पाँच महाव्रतों की **पंचण्हं समिदीणं—**पाँच समितियों की **तिण्हं गुत्तीणं—**तीन गुप्तियों की। **छण्हं आवासयाणं—**छह आवश्यकों की **छण्हं जीवाणिकायाणं—**छह जीवनिकायों की **विराहणाए—**उनकी विराधना करने में **आगमोत्त—**आगमोक्त मार्ग से प्राणियों की प्रमाद से विपरीत प्रवृत्ति होने पर जो व्रत आदि की विराधना होती है उसके हो जाने पर **पील कदो वा** पील अर्थात् पीड़ा की गई हो आगमोक्त विधि से प्रवृत्ति के अभाव में व्रतादि का खण्डन या अतिचारता से सहित होना पीड़ा है। जीवों को दुःख की उत्पत्ति होना ही पीड़ा है। **कदो वा—**वह स्वयं की गई हो, **कारिदो वा—**अन्य किसी मनुष्य से कराई गई हो, **कीरंतो वा समणु- मण्णिदो—**अन्य के द्वारा किये जाने पर उसकी अनुमोदना की गई हो। **तस्स मिच्छा मे दुक्कडे—**उस पीड़ा सम्बन्धी दुष्कृत या पाप मेरा मिथ्या हो, विफल हो। 'दुक्कडमिति' इस प्रकार का पाठ होने पर उस पीड़ा सम्बन्धी दुष्कृत मेरा मिथ्या अथवा निष्फल होवे।

पडिक्कमामि भंते। इत्यादि। **अइगमणे—**बहुत तेज गमन करने में। **णिग्गमणे**-निर्गमन में अर्थात् गमन क्रिया का सर्व प्रथम प्रारंभ करने में। **ठाणे**- स्थिति क्रिया अर्थात् खड़े होने में। **गमणे**-सामान्य से गमन क्रिया में। **चंकमणे**- निरर्थक परिभ्रमण करने में। **उव्वत्तणे**- उद्वर्तन, घूमने में। **परियत्तणे**-परिवर्तन में। **आउंचणे** - हस्त पाद आदि के संकोच करने में। **पसारणे**- उन्हीं हस्त पाद आदि के फैलाने में। **आमासे**- आमर्श अर्थात् नियत शरीर के प्रदेशों का स्पर्श करने में। **परिमासे**-चारों ओर से सम्पूर्ण शरीर के स्पर्श में। **कूइदे**-उत्स्वप्न में अथवा पूत्कार करने में। **कक्कराइदे**-दांतो के कड़कड़ाने में अथवा अत्यन्त कर्कश शब्द बोलने में। **चलिदे**- गमन करने के लिए शरीर का परिस्पंदन होने में। **णिसण्णे**- बैठने में। **सयणे**- शयन क्रिया में। **उव्वटणे**- सोकर के उठना फिर खड़े हो जाना इस क्रिया में । **परियट्टणे**- खड़े हुए का बैठ कर के सोने में। इन स्थानों में। **एइंदियाणं, बेइंदियाणं, तेइंदियाणं, चउरिंदियाणं, पंचिंदियाणं जीवाणं** - एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों की। **विराहणाए**-विराधना अर्थात् पीड़ा हो जाने पर। किसके द्वारा यह विराधना हुई हो। **संघट्टणाए**- परस्पर में संघट्टन के द्वारा उपमर्दन करने पर। **संघादणाए**- संघात करना अर्थात् एकत्रित करने में। **ओद्दावणाए**- प्राणों का वियोग करने से। **परिदावणाए**- परिताप अर्थात् संताप उत्पन्न करने से। **एत्थ**- इन विराधनाओं के होने पर। **मे**

अन्योन्यसंघट्टनयोपमर्देन। **संघादणाए**। संघातीकरणेन पुंजीकरणेन। **ओद्दावणाए**। प्राणवियोगकरणेन। **परिदावणाए**। परितापनया सन्तापजननेन। **एत्थ**। एतस्यां विराधनायां जाता**याम्**। **मे जो को वि**। मम यः कश्चिदपि व्रतादिविषये दैवसिकस्यातिचारस्यानाचारस्य वा संभवो जातः। **तस्स मिच्छा मे दुक्कडे**। तस्यातिचारादेस्सम्बन्धिनि दुष्कृते मे मिथ्या विफलता भवतु॥

पडिक्कमामि भंते। इत्यादि। **इरियावहियाए विराहणाए**। ईरणमीर्या गमनं तस्याः पन्थाः मार्गस्तत्र भवा। **विराहणाए**। ईर्यापथिके विराधना प्राणिपीडा तस्याम्। कथम्भूतेन सता या विराधना कृता। **उड्ढमुहंचरंतेण।** ऊर्ध्वमुखं यथा भवति। एवं चरता गच्छता। **अहोमुहं चरंतेण वा**। अधोमुखं यथा भवति। एवं चरता गच्छता। वाशब्दः सर्वत्र परस्परसमुच्चये। **तिरियमुहं चरंतेण वा**। तिर्यङ्मुखं वामदक्षिणतः पृष्ठतो वा मुखं यथा भवति। एवं गच्छता। **दिसिमुहं चरंतेण वा**। दिशोमुखं चतुर्दिगवलोकनं यथा भवति। एवं गच्छता। **विदिसिमुहं चरंतेण वा**। विदिशोमुखं चतुर्दिगवलोकनं यथा भवति। एवं गच्छता। **पाणचंकमणदाए**। प्राणा द्वित्रिचतुरिन्द्रियास्तेषामुपरि प्रमादाच्चंक्रमणतो गमनात्। **बीयचंकमणदाए**। गोधूमादिबीजोपरिगमनात्। **हरियचंकमणदाए**। हरितस्य वनस्पतिकायस्योपरि गमनात्। **उत्तिंगपणयदयमट्टियमक्कडयतंतुसत्ताण चंकमणदाए**। **उत्तिंग** क्षुम्भक उद्वेहिका वा ईलिकृमिका वाऽतिसुकुमारा पुच्छभागमग्रभागेण या संस्पृश्य व्रजति। **पणय**-सेवालः कंजिकाद्युपरिपुष्पिका वा। **दय**-उदकविकारो हिममेघपाषाणादिः। **मट्टिय**बहुपादा खर्जूरसदृशी। **मक्कडय**-मर्कटकः कोलिकजातीयः। **तंतु**-तंतुणको जीवविशेषः। **सत्ताण**-सत्त्वानां पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकानाम्। अथवा। **उत्तिंग**-उच्छ्वसितमृत्तिका। **दय**-अप्रासुकमुदकम्। **मट्टिय**-खातमृत्तिका। **मक्कडयतंतुसंताण**-मर्कटस्य तंतवस्तेषां सन्तानो जालकरूपः। एतेषां सर्वेषामुपरि चंक्रमणतः। तथा-**पुढविकाइयसंघट्टणाए**। पृथ्वीकायिकानां संघट्टनया हस्तपादादिभिः संघट्टनेन। तथा-**आउकाइयसंघट्टणाए**। अप्कायिकसंघट्टनया। **तेउकाइयसंघट्टणाए**। तेजःकायिकसंघट्टनया। **वाउकाइयसंघट्टणाए**। वायुकायिकसंघट्टनया। **वणप्फदिकाइयसंघट्टणाए**। वनस्पतिकायिकसंघट्टनया। **तसकाइयसंघट्टणाए।** त्रसकायिकसंघट्टनया। एवमेतेषां जीवनामेतैः प्रकारैः। **उद्दावणदाए**। प्राणवियोगकरणेन। **परिदावणाए**। परितापकरणेन। **विराहणाए**। विराधनयानेकप्रकारपीडाकरणेन। **एत्थ**। एतस्यां जातायाम्। **मे जो को वि**। मम यः

जो को वि- मेरा जो कुछ भी व्रत आदि के विषय में दैवसिक अतिचार या अनाचार उत्पन्न हुआ हो। **तस्स मिच्छा मे दुक्कडे**- उसका अतिचार आदि से संबंधित दुष्कृत मेरा मिथ्या हो, निष्फल हो।

पडिक्कमामि भंते। इत्यादि। **इरियावहियाए विराहणाए**- ईरण, ईर्या और गमन यह एकार्थवाची हैं। उस गमन का मार्ग। उस मार्ग में होने वाले दोष। **विराहणाए**- ईर्या पथिक गमन में विराधना अर्थात् प्राणियों की पीड़ा हो जाने पर। किस प्रकार से यह विराधना की जाती है? **उड्ढमुहं चरंतेण**- उर्ध्व मुख होकर के जैसे संभव हो उसी प्रकार से चलने वाले के द्वारा होती हैं। **अहोमुहं चरंतेण वा**- नीचे मुख करके जैसे संभव हो उस प्रकार से चलने वाले के द्वारा होती हैं। वा शब्द सर्वत्र परस्पर में समुच्चय के लिए हैं। **तिरियमुहं चरंतेण वा**- तिर्यक् मुख करके दाई-बाई ओर से अथवा पीछे से मुख करके जैसे संभव हो उस प्रकार से चलना। **दिसिमुहं चरंतेण वा**-चार दिशाओं का अवलोकन जैसे होता है उस प्रकार जाते हुए। **विदिसिमुहं चरंतेण वा**-चारों विदिशाओं में देखते हुए चलना। **पाणचंकमणदाए**-दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय ये प्राण कहलाते हैं। इनके ऊपर प्रमाद से चंक्रमण अर्थात् गमन हो जाने से। **बीयचंकमणदाए**- गो धूम आदि बीजों के ऊपर गमन करने से। **हरियचंकमणदाए**-हरित वनस्पतिकाय के ऊपर गमन करने से। **उत्तिंगपणयदयमट्टियमक्कडयतंतुसत्ताण चंकमणदाए**- उत्तिंग, क्षुम्भक अथवा उद्देहिका, ईलि (इल्ली) अथवा कृमि या अत्यन्त कोमल पूंछ जिसकी है अथवा जो अग्र भाग से संस्पर्श करके चलती है वह उद्देहिका है। **पणय**- सेवाल को कहते हैं। कंजिका आदि के ऊपर जो छोटे-छोटे से पुष्प लग जाते हैं वह सेवाल हैं। **दय**- यह जल का विकार हैं जो हिम, मेघ, पाषाण आदि दय कहलाते हैं। **मट्टिय** खर्जूर जैसे बहुत पैर वाले होते हैं। **मक्कडय**- मर्कटक यह कोलिक जाति का होता है। तंतु- यह जीव विशेष है। **सत्ताण**- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, कायिक जीव सत्व कहलाते हैं। अथवा **उत्तिगं**- उच्छ्वास से निकली हुई माटी। **दय**- अप्रासुक जल दय है। **मट्टिय**- खुदी हुई मिट्टी मट्टिय है। **मक्कडयतंतुसत्ताण**- मर्कट के तंतु और उनके संतान अर्थात् मकड़ी के जाल बन जाना इन सबके ऊपर गमन करने से। तथा-**पुढविकाइयसंघट्टणाए**- पृथ्वीकायिक जीवों के संघट्टणा से हस्त, पाद आदि के द्वारा उनका संघट्टन करने से। तथा- **आउकाइयसंघट्टणाए**- जलकायिक जीवों की संघट्टणा से। **तेउकाइयसंघट्टणाए**- अग्निकायिक जीवों की संघट्टणा से। **वायुकाइयसंघट्टणाए**- वायुकायिक जीवों की संघट्टणा से। **वणप्फदिकाइयसंघट्टणाए—**वनस्पतिकायिक जीवों की संघट्टणा से। **तसकाइयसंघट्टणाए**- त्रसकायिक जीवों की संघट्टणा से। इस प्रकार इन जीवों के इन प्रकारों के द्वारा। **उद्दावणदाए**- प्राण वियोग करने से। **परिदावणाए**-परिताप करने से। **विराहणाए**- विराधना करने से अर्थात् अनेक प्रकार की पीड़ा करने से। **एत्थ**- इस प्रकार होने पर। **मे जो को वि**- मेरा यह जो कुछ भी व्रतादि के विषय में

कश्चिदपि व्रतादिविषये दैवसिकस्यातिचारस्यानाचारस्य वा संभवो जातः। **तस्स मिच्छा मे दुक्कडे**। तस्यातिचारादेः सम्बन्धिनि दुष्कृते मे मिथ्या विफलता भवतु।

पडिक्कमामि भंते। इत्यादि। **उच्चारपस्सवणखेलसिंहाणयवियडिपइट्ठावणियाए**। उच्चारप्रस्रवणादयः प्रागेव व्याख्याताः। तेषां प्रतिष्ठापनिकायां निक्षेपे। **पइट्ठावंतेण**। एतेषां प्रतिष्ठापनं कुर्वता ये केचिदपि। **पाणा वा**। विकलेन्द्रियाः प्राणाः। **भूदा वा**। वनस्पतिकायिका भूताः। वाशब्दः सर्वत्र परस्परसमुच्चये। **जीवा वा**। पंचेन्द्रियाः जीवाः। **सत्ता वा**। पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकाः सत्त्वाः। तदुक्तं। श्लोकः-

द्वित्रिचतुरिन्द्रियाः प्राणा भूतास्ते तरवः स्मृताः।
जीवाः पंचेन्द्रिया ज्ञेयाः शेषाः सत्त्वाः प्रकीर्तिताः॥

संघट्टिदा वा। इत्यादि। एते सर्वे संघट्टिता वा। **संघादिदा वा उद्दाविदा वा परिदाविदा वा**। संघट्टितादिशब्दानामर्थः प्रागेव व्याख्यातः। **एत्थ**। एतस्मिंस्तत्संघट्टनादौ मे यः कश्चिदपि व्रतादिविषये दैवसिकस्यातिचारस्यानाचारस्य वा संभवो जातस्तस्यातिचारादेः संबंधिनि दुष्कृते मे मिथ्या विफलता भवतु।

पडिक्कमामि भंते। इत्यादि। **अणेसणाए**। एषणा योग्यनिरवद्यचतुर्विधाहारग्रहणम्। न एषणाऽनेषणा उद्गमादिदोषदूषिताहारग्रहणम्। **तथा-पाणभोयणाए**। प्राणानामनुग्रहार्थं पीयत इति पानम्। तस्य **भोयणाए**। स्निग्धरूक्षादिपानकभोजनेन। अथवा-पानं च भोजनं च पानभोजने। ताभ्यामिति द्विवचने प्राप्ते प्राकृते द्विवचनं नास्तीत्येकवचनेन **निर्देशः** कृतः। प्राणानां वा द्वित्रिचतुन्द्रियाणां प्रमादाद्भोजनं तेन। **पणयभोयणाए**। पणयः पुष्पिका। तस्य भोजनेन। पुष्पिकासहितकांजिकमथितादिभोजनेनेत्यर्थः **पणियभोयणाए**। इति पाठे पणितस्य वृष्याहारस्य भोजनेनेत्यर्थः। **बीयभोयणाए**। अनग्निपक्कचणकादिभोजनेन। **हरियभोयणाए**। हरितस्यापक्वस्य पत्रपुष्पफलमूल-किसलयादेर्भोजनेन। **आहाकम्मेण**। अधःकर्मनिभं स्वयं षड्जीवनिकायविराधनां कृत्वा पाकादिकर्म। **पच्छाकम्मेण वा**। भुक्त्वा गते यतौ पुनः पाकप्रारम्भः पश्चात्कर्म। **पुराकम्मेण वा।** पुरा प्रथममभुंजाने मुनौ पाकादिप्रारम्भः पुराकर्म। **उद्दिट्ठयडेण वा**। मुनिमेवोद्दिश्य संकल्प्य यत्पाकादि कृतं देवातापाषंड्यादिकं वोद्दिश्य यत्कृतं तेन। **णिद्दिट्ठयडेण वा**। निर्दिष्टकृतेन। निर्दिष्टं तव कृते कृतमिदमिति कथनम्। **दयसंसिट्ठयडेण वा**।

दैवसिक अतिचार अथवा अनाचार संभव हुआ हो। **तस्स मिच्छा मे दुक्कडे**- उस अतिचार आदि से संबंधित दुष्कृत मेरा मिथ्या होवे। विफल होवे।

पडिक्कमामि भंते। इत्यादि। हे भगवन! मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। **उच्चारपस्सवण खेल सिंहाणयवियडिपइट्ठावणियाए**- उच्चार प्रस्रवण आदि की व्याख्या पहले ही की गई हैं। उन उच्चार प्रस्रवण आदि का निक्षेप करने में। **पइट्ठावंतेण**- इन्हीं की प्रतिष्ठापना के द्वारा जो कोई भी। **पाणा वा**- विकलेन्द्रिय जीवों को प्राण कहते हैं। **भूदा वा**- वनस्पतिकायिक जीव भूत हैं। वा शब्द सर्वत्र परस्पर के समुच्चय के लिए हैं। **जीवा वा**- पंचेन्द्रिय जीव हैं। **सत्ता वा**- पृथ्वी, जल, अग्नि, और वायुकायिक जीव सत्व हैं। कहा भी है-

दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, जीव प्राण हैं, वनस्पति जीव भूत कहे गये हैं। पंचेन्द्रिय जीव जानने चाहिए, शेष जीवों-पृथ्वी, जल, अग्नि, और वायुकायिक- को सत्व कहा गया है।

संघट्टिदा वा। इत्यादि। इन सब जीवों के संघट्टित हो जाने पर। **संघादिदा वा उद्दाविदा वा परिदाविदा वा** - संघात आदि शब्दों के अर्थ पहले कहे जा चुके हैं। **एत्थ**- इस विषय में, संघट्टन आदि में मेरे जो कुछ भी व्रत आदि के विषय में, दैवसिक अतिचार अथवा अनाचार संभव हुआ हो उस अतिचार आदि से संबंधित दुष्कृत मेरा मिथ्या होवे, विफल होवे।

पडिक्कमामि भंते- इत्यादि। **अणेसणाए**- योग्य और निर्दोष, चार प्रकार का आहार ग्रहण करना एषणा हैं। जहाँ यह एषणा नहीं है वह अनेषणा है। अर्थात् उद्गम आदि दोषों से दूषित आहार का ग्रहण अनेषणा हैं। तथा- **पाणभोयणाए**- प्राणों के अनुग्रह के लिए जो पिया जाता है वह पान है। उस पान के **भोयणाए**-भोजन में स्निग्ध, रुक्ष आदि पानक के पीने से अथवा पान और भोजन इन दोनों में इस प्रकार यहाँ पानं च भोजनं च पानभोजने इस तरह द्विवचन भी प्राप्त होता है। प्राकृत में द्विवचन नहीं होता इसलिए एकवचन के द्वारा ही निर्देश किया गया है। दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय प्राणों के प्रमाद से भोजन में आ जाने पर उसके द्वारा। **पणयभोयणाए**- पणय अर्थात् पुष्पिका, शैवाल आदि को कहते हैं। उसके भोजन से पुष्पिका से सहित कांजिक मथित आदि भोजन करने के द्वारा। **पणियभोयणाए**- इस प्रकार पाठ होने पर पणित अर्थात् वृष्य आहार, उसका भोजन करने से। **बीयभोयणाए**- जो अग्नि से नहीं पके हैं ऐसे चने आदि के भोजन के द्वारा। **हरिय भोयणाए**- पत्र, पुष्प, फल, मूल, किसलय आदि जो पके हुए नहीं है वह अपक्व हरित कहलाते हैं उनके भोजन करने से। **आहाकम्मेण**- अधः कर्म के समान स्वयं छह जीव निकाय की विराधना करके जो पाप आदि कर्म होता है वह अधः कर्म कहलाता है, उसके द्वारा। **पच्छाकम्मेण वा**- यति का भोजन के लिए जाने पर पुनः पाक क्रिया का प्रारम्भ करना पश्चात् कर्म है। **पुराकम्मेण वा**- मुनि के लिए भोजन करने से पहले ही पाक आदि का प्रारम्भ करना पुराकर्म है। **उद्दिट्ठयडेण वा**- मुनि को ही उद्देशित करके या संकल्प करके जो पाक आदि किया जाता है अथवा देवता पाखंडी आदि को उद्देश्य करके जो बनाया जाता है वह उद्दिष्ट है, उसके द्वारा। **णिद्दिट्ठयडेण वा**- निर्दिष्ट

दययाऽनुकम्पया संसृष्टं युक्तं यद्दानं तद्दयासंसृष्टं कृतम्। करुणादानमित्यर्थः। अथवोदकसंसृष्टकृतेन जलार्द्रेण भाजनेन हस्तेन वाऽऽहारं न गृह्णीयात्। **रससंसिट्ठयडेण वा**। घृततैलादिरसेन संसृष्टेन भाजनेन हस्तेन वाऽऽहारं न गृह्णीयात्, तत्र पिपीलिकादिजंतुसम्भवात्। **रससंसिट्ठयडेणेति** पाठे रजोमलं कापोतलेश्या, तत्संसृष्टकृतेन च। रजो वा धूलिखटिकाऽऽमपिष्टादिरूपम्। तत्संसृष्टकृतेन भाजनेनाहारं न गृह्णीयात्।

परिसादणियाए। परिसातनिकया पाणिपात्रगताहारं प्रक्षिप्य प्रक्षिप्य भुक्तिलक्षणया। **पइट्ठावणियाए**। प्रतिष्ठापनिकया स्वस्थानभाजनस्थान[1] भाजनधारकस्थानलक्षणभूमित्रिकशुद्धिरूपया। **उद्देसियाए**। प्राघूर्णि-कलिंगिभिक्षुकादिकमुद्दिश्य निष्पादिताहारलक्षणया। **णिद्देसियाए**। निर्देशिकया परहस्तेनाहारदानलक्षणया। **कीदयडे**। क्रीतकृते। तच्च क्रीतकृतं द्विविधं द्रव्यक्रीतकृतं भावक्रीतकृतं च। द्रव्यक्रीतकृतमपि द्विविधं चेतनद्रव्यक्रीतकृतमचेतनद्रव्यक्रीतकृतं च। तत्र चेतनद्रव्यं विक्रियाहारदानं चेतनद्रव्यक्रीतकृतम्। अचेतनद्रव्यक्रीतकृतं तु स्थिते मुनौ गृहान्तरान्मूल्येनानीयाऽऽहारदानम्। भावक्रीतकृतं तु मंत्रतंत्राद्युपार्जनयाऽऽहारदानम्। **मिस्से जादे**। लिंगिनां च गृहस्थानां च निमित्तं यज्जातं भोज्यं तन्मिश्रं जातं, तस्मिन्। **ठविदे**। पाकभाजनादुद्धृत्य भाजनान्तरे कृत्वा निहिते स्थापिते। **रइदे**। रसनेन्द्रियगृद्धिकरत्वेन नानारसविशेषै रचिते निष्पादिते। 'रतिदे वा' आसक्तिकरे गृद्धिकर इत्यर्थः। **अणिसिट्ठे।** अनिसृष्टे। गृहस्वामिना तदराध्येन वा निषिद्धे। **बलिपाहुडदे**। यक्षनागादीनां बलिर्नैवेद्यम्। **पाहुडदे**। प्राभृते। तच्च प्राभृतं द्विविधं भवत्युत्कर्षणापकर्षणभेदात्। तत्र परिपूर्णेऽपि पंचमीसौख्यसंपत्त्यादौ तदुद्योतनविधाने क्रियमाणे गौरविते गुर्वादावागते तत्करिष्यामीति माससंवत्सराद्युत्कर्षेण यदुद्योतनविधानं तदुत्कर्षणरूपं प्राभृतम्। अपरिपूर्णेऽपि तस्मिन्प्रघट्टकायातदुर्वादि लोभादनागतमेव (?) तदुद्योतनविधानमपकर्षणरूपं प्राभृतम्। **'लाहणकं'** प्राभृतमित्यन्ये। **घट्टिदे**। भोजनघट्टिते भोजनभाजनघट्टिते च। भोजनघट्टिते

---

1. 'दायकस्थान' इत्यणि पाठौ लभ्यते।

करने से जो बना हो। निर्दिष्ट अर्थात् आपके लिए यह बनाया है इस प्रकार से कहना यह निर्दिष्ट है। **दयसंसिट्ठयडेण वा**- दया से अर्थात् अनुकंपा से युक्त जो दान है वह दया से संसृष्ट है। अर्थात् वह करुणा दान है। अथवा जल से संसृष्ट करके अर्थात् गीले भाजन से अथवा गीले हाथ आदि के द्वारा आहार ग्रहण नहीं करना चाहिए। ऐसा आहार जिसमें भाजन (बर्तन)जल से गीला हो अथवा हाथ आदि गीले हो वह आहार ग्रहण नहीं करना चाहिए। **रससंसिट्ठयडेण वा**- घी, तेल, आदि रसों से जो भाजन अथवा हाथ आदि संसृष्ट हुए हों, मिले हुए हों वह आहार नहीं ग्रहण करना चाहिए। क्योंकि उस आहार में चींटी आदि जन्तुओं की सम्भावना होती हैं। **रयसंसिट्ठयडेणेति**- इस प्रकार पाठ होने पर रजोमल कापोत लेश्या है उससे संसृष्ट किये जाने से अथवा रज, धूलि, कच्चा चूर्ण आदि ये रज हैं। उससे मिले हुए भाजन आदि के द्वारा आहार को ग्रहण नहीं करना चाहिए।

पारिसादणियाए- पाणिपात्र में आये हुए आहार को छोड़-छोड़ करके या छिन्न-भिन्न करके भोजन करने के लक्षण के द्वारा। **पइट्ठावणियाए**- अपना स्वस्थान, भाजन का स्थान और भाजन को धारण करने का स्थान इन तीन भूमि की शुद्धि के द्वारा। **उद्देसियाए**- पाहुनि, लिंगी, भिक्षु आदि को उद्देश्य करके निष्पादित हुए आहार के द्वारा। **णिद्देसियाए**- दूसरे के हाथ से आहार दान के द्वारा। **कीदयडे**- खरीद करके लाये हुए आहार के द्वारा। वह क्रीतकृत् आहार दो प्रकार का होता है। द्रव्य क्रीतकृत और भाव क्रीतकृत। द्रव्य क्रीतकृत भी दो प्रकार का होता है। चेतन-द्रव्य-क्रीतकृत और अचेतन-द्रव्य-क्रीतकृत, उसमें चेतन द्रव्य को बेचकर के जो आहार दान किया जाता है वह चेतन द्रव्य-क्रीतकृत हैं। मुनि के घर में स्थित होने पर अन्य किसी मूल्य से आहार को ले आना अचेतन-द्रव्य-क्रीतकृत कहा गया हैं। मंत्र-तंत्र आदि के द्वारा उपार्जन किया हुआ आहार भावक्रीतकृत कहलाता है। **मिस्से जादे**- अन्य लिंगियों के और गृहस्थों के निमित्त से जो भोजन बना हो वह मिश्र कहलाता है। **ठविदे**- पाक भोजन बनाने के बर्तनों को उठा करके दूसरे बर्तन आदि में करके स्थापित कर देने पर। **रइदे**- रसना इन्द्रिय की गृद्धि करने वाले अनेक रस विशेषों के द्वारा निष्पादित हो जाने पर। **रतिदे वा**- इस प्रकार पाठ होने पर आसक्ति करने वाले अथवा गृद्धि करने वाले आहार में। **अणिसिट्ठे**- गृहस्वामी के द्वारा अथवा उसको बनाने वाले के द्वारा निषिद्ध किये जाने पर। **बलिपाहुडदे**- यक्ष, नाग आदि के लिए जो नैवेद्य तैयार की जाती है वह बलि है। **पाहुडदे**- प्राभृत दो प्रकार का है-उत्कर्षण व अपकर्षण । पंचमी, सौख्य, संपत्ति आदि व्रतों के परिपूर्ण हो जाने पर उनके उद्योतन का विधान किये जाने पर किसी गौरवान्वित (गौरव को प्राप्त) गुरु आदि के आ जाने पर मैं उसका उद्योतन करूँगा। इस प्रकार मास, वर्ष आदि के उत्कर्षण से जो विधान किया जाता है वह उत्कर्षण रूप प्राभृत कहलाता है। इसी तरह वह उद्योतन विधान के पूर्ण नहीं होने पर भी उसी बीच में कोई गुरु आदि आ जाते हैं तो लोभ के कारण से जो भविष्य में होना था उस उद्योतन विधान को पहले ही कर लेना वह अपकर्षण रूप प्राभृत कहलाता है। **लाहणकं**-अन्य लोग इसको लाहणक भी कहते हैं। **घट्टिदे**- भोजन घट्टिद होने पर या भोजन और भाजन इन दोनों के आपस में संघट्टित हो जाने पर जो दोष लगता है। भोजन घट्टिते का अर्थ

शुद्धाशुद्धाहारसंघट्टने। भोजनभाजनघट्टिते भोजनभाजनानां शुद्धाशुद्धानां संघट्टने संसर्गे। **मुच्छिदे**। मूर्च्छिते। अतिगृद्ध्याऽऽहारग्रहणे। **अइमत्तभोयणाहारे**। अतिमात्रं मात्राधिकं भोजनं यत्राहारे। **एत्थ**। एतस्यामुक्तप्रकारायामनेषणायां यः कश्चिदपि **गोयरस्स**। गोचरस्य। गोरिव चरणं भक्षणं गोचरस्तस्य संबंधिनोऽतिचारस्यानाचारस्य वा संभवो जातस्तस्य संबंधिनि दुष्कृते मिथ्या मे भवतु।

पडिक्कमामि भंते। इत्यादि। **सुमिणिंदियाए**। स्वप्नेनोपहतानीन्द्रियाणि यस्यां विराधनायां सा स्वप्नेन्द्रिया। तस्याम्। **विराहणाए**। विराधनायां विपरीतपरिणतौ। सा च विराधना यथा भवति तथा दर्शयति। **इत्थीत्यादि**। **इत्थिविप्परियासियाए**। स्त्रियां विषये विपर्यासोऽसेवनादावपि सेवनादिविपरीताभिनिवेशो यस्यां विराधनायां सा स्त्रीविपर्यासिका। तस्याम्। **दिट्ठिविप्परियासियाए**। स्त्रीतदवयववदनजघनादिगोचरो दृष्टि-विपर्यासः। तदनवलोकनेऽप्यवलोकनाभिनिवेशो यस्यां सा दृष्टिविपर्यासिका विराधना। तस्याम्। **मणविप्परियासियाए**। मनसो विपर्यासोऽस्त्र्यादिविषयेऽपि स्त्र्यादिसंकल्पो यस्याम्। **वचिविप्परियासियाए**। वचसो विपर्यासः संभाषणादिवाग्व्यवहाराभावेऽपि तद्व्यापाराभिनिवेशो यस्याम्। **कायविप्परियासियाए**। कायस्य विपर्यासोऽविद्यमानेऽप्यंगनाद्युत्संगस्थे स्वकायादौ तत्र स्थित्वाभिनिवेशो यस्याम्। **भोयणविप्परियासियाए**। भोजनस्य विपर्यासोऽभुंजानस्यापि भुंजान इत्यभिनिबेशो यस्याम्। **उच्चावयाए**। उद्गतः प्रवृत्तश्च्यावः स्त्रीरागाच्छुक्रच्युतिरुच्च्यावः। तस्माज्जाता उच्च्यावजाता। तस्याम्। **सुमिणदंसणविप्परियासियाए**। स्वप्नदर्शनेन विपर्यासो यस्याम्। क्व ? **पुव्वरए**। पूर्वं गृहस्थावस्थायां यद्रतं सेवितमनुभूतं तत्र। 'तथा-**पुव्वखेलिदे**। पूर्वं गृहस्थावस्थायां खलिते क्रीडिते। **णाणाचिंतासु**। पूर्वरतपूर्वक्रीडितयोर्या नानाचिन्ता तद्विषयाण्यनेकस्मरणानि। तासु। एत्थ। एतस्यामुक्तप्रकारायाम्। **जो को**। इत्यादि सुगमम्।

पडिक्कमामि भंते। इत्यादि। **इत्थिकहाए**। स्त्रीकथायां वदननयननाभिनितंबादिव्यावर्णनरूपायां कथायाम्। **अत्थकहाए**। अर्थस्योपार्जनरक्षणादिवचनरूपायां कथायाम्। **भत्तकहाए**। भक्तस्य भोजनस्य

है शुद्ध आहार में अशुद्ध आहार का संघट्टन हो जाना और भोजन भाजन घट्टिते का अर्थ है कि भोजन शुद्ध या अशुद्ध भोजन और भाजनों का संसर्ग हो जाना। **मुच्छिदे**- मूर्छित हो जाने पर। अतिगृद्धता से आहार का ग्रहण करने में आना यह मूर्छा हैं। **अइमत्त भोयणाहारे**- मात्रा से अधिक भोजन जहाँ किया जाता है वह अतिमात्रा वाला भोजन कहलाता है। **एत्थ**-इन सब कहे अनेषणा के प्रकारों में जो कोई भी। **गोयरस्स**-उस गोचर संबंधि अतिचार अथवा अनाचार संभव हुआ हो उस संबंधि दुष्कृत्य मेरा मिथ्या होवे। गोचर का अर्थ है-गाय के समान चरना या भोजन करना।

पडिक्कमामि भंते। इत्यादि। **सुमिणिंदियाए**- स्वप्न से ढकी हुई अथवा पीड़ित हुई इन्द्रियाँ जिसमें विराधना को प्राप्त होती हैं वह स्वप्नेन्द्रिय कहलाती है। उस स्वप्न के समय पर इन्द्रियों से विराधना होने पर अर्थात् विपरीत परिणति होने पर, वह विराधना जिस प्रकार से होती है उसे आगे दिखाते हैं। **इत्थित्यादि**। **इत्थिविप्परियासियाए**- स्त्रियों के विषय में विपर्यास। उन स्त्रियों का सेवन नहीं करने पर भी सेवन आदि विपरीत अभिनिवेश जिस विराधना में हो वह स्त्रीविपर्यासिका कहलाता है ,उसमें। **दिट्ठिविप्परियासियाए**- स्त्री और उसके अवयव, मुख, जांघ आदि को विषय बनाने वाली दृष्टि को दृष्टि विपर्यास कहते हैं। उसका अवलोकन नहीं होने पर भी अवलोकन का अभिनिवेश अर्थात् अभिप्राय जिसमें होता है वह दृष्टिविपर्यासिका विराधना हैं, उस विराधना के होने पर। **मणविप्परियासियाए**- मन का विपर्यास। स्त्री आदि विषयों के नहीं होने पर भी स्त्री आदि का संकल्प मन का विपर्यास हैं, उस मन का विपर्यास होने पर। **वचिविप्परियासियाए**- वचन का विपर्यास। संभाषण आदि वाग् व्यवहार का अभाव होने पर भी उस व्यापार का अभिप्राय होना वचन विपर्यास है, उस विराधना के होने पर। **कायविप्परियासियाए**- काय का विपर्यास। अंगना (स्त्री) आदि की गोद में स्थित नहीं होने पर भी अपनी काय आदि के विषय में वहाँ पर मैं स्थित हूँ इस प्रकार का अभिनिवेश होना कायविपर्यासिका हैं, उस विपर्यासिका में होने पर विराधना होना। **भोयणविप्परियासियाए**- भोजन का विपर्यास। भोजन नहीं करने पर भी भोजन किया है इस प्रकार का अभिप्राय जिसमें होता है, वह विराधना के होने पर। **उच्चावयाए**-स्त्री के प्रेम से जो शुक्र पतन होता है वह उच्चाव है। उससे उत्पन्न उच्चावजात है, उसमें। **सुमिणदंसणविप्परियासियाए**-स्वप्न देखने से विपर्यास जिसमें हो। कहाँ ? **पुव्वरए**- पूर्व में गृहअवस्था में जो सेवन किया है, अनुभूत किया है उसमें रति होने पर। तथा- **पुव्वखेलिदे**- उसी प्रकार से पहले गृहस्थ अवस्था में क्रीड़ा किये जाने पर या खेले जाने पर। **णाणाचिंतासु**- पूर्व में जो रति क्रिया की है और पूर्व में जो क्रीड़ा की है उन दोनों के विषय में अनेक प्रकार की चिंता आई, उन दोनों के विषय में अनेक प्रकार के स्मरण होना यह नाना चिंता कहलाती हैं, इन सबमें जो कोई भी। इत्यादि मेरे द्वारा दुष्कृत अर्थात् पाप किया गया वह सब मिथ्या होवे।

पडिक्कमामि भंते। इत्यादि। **इत्थिकहाए**- स्त्री कथा में स्त्री के मुख, नयन, नाभि, नितंब आदि का वर्णन करने रूप कथा स्त्री कथा है। उसमें। **अत्थकहाए**- अर्थ कथा में। अर्थ के अर्थात् धन के उपार्जन, रक्षण आदि वचन रूप कथा में। **भत्तकहाए**- भक्त अर्थात् भोजन

व्यावर्णनरूपायां कथायाम्। **रायकहाए**। राज्यस्य राज्ञो वा कथा राजकथा। तस्याम्। **चोरकहाए**। चोराणां कथायाम्। **वेरकहाए**। वैरकथायाम्। **परपासंडकहाए**। परेषां परिव्राजकवंदकत्रिदण्ड्यादीनां पाषंडानि लिंगानि तेषां कथायाम् । **देसकहाए**। देशाः कर्णाटलाटादयः। तेषां कथायाम्। ग्रामनगरादिकथापि देशकथाग्रहणेनैव संग्रहीता। **भासकहाए**। भाषा अष्टादशदेशोद्भवाः। तासां कथायाम्। **अकहाए**। तपःस्वाध्यायादिहीनाऽसम्बद्धप्रलापरूपा कथाऽकथा। तस्याम्। **विकहाए**। रागभोगत्यागार्थादिव्या-वर्णनरूपायां विविधकथायां विरूपककथायां वा। **णिट्ठुल्लकहाए**। निष्ठुरत्वकथायां तर्जनभीषणमर्म-चालनादिलक्षणायाम्। **परपेसुण्णकहाए**। परेषां पैशुन्यकथायां परोक्षे दोषोद्भावनरूपायाम्। **कंदप्पियाए**। कंदर्पो रागोद्रेकात्प्रहसनमिश्रोऽशिष्टवाक्प्रयोगः। तत्र भवा कांदर्पिकी कथा। तस्याम्। **कुक्कुच्चियाए**। कंदर्प एव परत्र दुष्टकायकर्मयुक्तः कौत्कुच्यमव्यक्तहृदयकण्ठशब्दकरणं वा। तत्र भवा कौत्कुची। तस्याम्। **डंबरियाए**। डंबरं विरहकलहादिकम्। तत्र भवा डांबरिकी। तस्याम्। **मोक्खरियाए**। धाष्टर्यप्रायं बहुप्रलापित्वं मौखर्यम्। तत्र भवा मौखरिकी। तस्याम्। **अप्पपसंसणदाए**। आत्मनः स्वयं प्रशंसनं गुणव्यावर्णनं यस्यां कथायां साऽऽत्मप्रशंसना। तस्या भावस्तत्ता। तस्याम्। **परपरिवादणदाए**। परेषां परिवादनं दोषोद्भावनं यस्यां कथायां सा। तस्या भावः परपरिवादनता। तस्याम्। **परदुगुंछणदाए**। परेषामग्रतो दुष्टत्वेन परस्य जुगुप्सनं यस्यां कथायां, तस्या भावः परजुगुप्सनता। तस्याम्। **परपीडाकराए**[1]। परेषां पीडाऽनिष्टादिरूपा यस्यां कथायां भवति सा परपीडाकरा। तस्याम्। **सावज्जाणुमोयणियाए**। सहाऽवद्येन दोषेण वर्तत इति सावद्यं हिंसादिकर्म। तस्यानुमोदोऽभ्युपगमो यस्यां कथायां सा सावद्यानुमोदनिका। तस्याम्। **एत्थ।** एतस्यामुक्तप्रकारायां स्त्रीकथादिकथायाम्। मे जो को इत्यादि सुगमम्।

पडिक्कमामि भंते। इत्यादि। **अट्टे झाणे**। आर्तध्यानं चतुर्विधं 'आर्तममनोज्ञस्य सम्प्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारः। विपरीतं मनोज्ञस्य। वेदनायाश्च। निदानं च' इत्यभिधानात्। **रुद्दे झाणे।** रौद्रध्याने हिंसानृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमित्येवंलक्षणे। कुतश्चित्कारणात्तदुभयध्यानपरिणतौ यो दोषस्तं

---

1. 'परपीलकहाए' इत्यणि पाठो लभ्यते।

के विशेष रूप से वर्णन रूप कथा में। **रायकहाए**- राज्य कथा में। राज्य की अथवा राजा की कथा राज्य कथा है, उसमें। **चोरकहाए**- चोर कथा। चोरों की कथा करने में। **वेरकहाए**- वैर कथा। वैर की कथा करने में। **परपासंडकहाए**- परिव्राजक, वंदक, त्रिदण्डि आदि पाखंड है ये पाखंड लिंग है, इनकी कथा करने में। **देसकहाए**- कर्नाट, लाट आदि देश हैं, इनके विषय में कथा करने में। ग्राम, नगर आदि की कथा भी देश कथा के ग्रहण से ही कर लेना चाहिए। **भासकहाए**- अट्ठारह देशों से उत्पन्न हुई भाषाएं, उनके विषय में कथा करने में। **अकहाए**- तप, स्वाध्याय आदि से रहित असम्बंधित प्रलाप रूप कथा अकथा कहलाती हैं। उसमें अर्थात् जिस कथा में तप, स्वाध्याय आदि की कोई चर्चा न हो वह अकथा है। **विकहाए**- विकथा में। राग, भोग, त्याग, अर्थ आदि के कथन करने वाली विविध कथाएँ विरूपक कथा कहलाती हैं। वह ही विकथा हैं। **णिट्ठुल्लकहाए**- निष्ठुरत्व कथा में। तर्जन, भयंकर मर्म चालन आदि जिन वचनों से होता हो वह वचन निष्ठुर कथा में कहे जाते हैं। **परपेसुण्णकहाए**- पर पैशुन्य कथा। परोक्ष में दूसरों के दोषों को उद्भावन करने रूप कथा परपैशुन्य कथा हैं। **कंदप्पियाए**- राग के उद्रेक से हास्य मिश्रित अशिष्ट वचनों का प्रयोग कंदर्प हैं। उस कंदर्प से संबंध रखने वाली कथा कांदर्पिकी कथा है, उसमें। **कुक्कुच्चियाए**- कंदर्प ही जब दूसरों के साथ दुष्ट काय-कर्म से युक्त हो जाता है तो वह कौत्कुच्य कहलाता है। जिसमें हृदय, कंठ, और शब्दों का करना अव्यक्त होता है वह कौत्कुच्य हैं। उस कौत्कुच्य से संबंधित कथा कौत्कुची कहलाती हैं। **डंबरियाए**-विरह, कलह आदि डंबर हैं। उस डंबर से संबंधित होने वाली कथा डांबरिकी कथा कहलाती हैं। **मोक्खरियाए**- धृष्टता की बहुलता से बहुत प्रलाप करना मौखर्य हैं। उस मौखर्य में होने वाली कथा मौखरिकी कथा कहलाती है। **अप्पपसंसणदाए**- आत्मा की (स्वयं की) प्रशंसा करना, अपने गुणों का वर्णन जिस कथा में हो वह आत्म प्रशंसना है। उसी का भाव आत्मप्रशंसना कहलाता है, उस कथा में। **परपरिवादणदाए**- दूसरों का परिवादन करना। अर्थात् दूसरों के दोषों को प्रगट करना जिस कथा में हो वह परपरिवादन कथा है और उसी का भाव परपरिवादनता कहलाता है, उस कथा में। **परदुगुंछणदाए**- दूसरों के आगे दुष्टपने से दूसरों से घृणा करना जिस कथा में हो वह परजुगुप्सा कथा है । उसी का भाव परजुगुप्सा कथा हैं, उस कथा में। **परपीडाकराए**- दूसरों को पीड़ा पहुँचाना अर्थात् जो दूसरों के लिए अनिष्ट आदि रूप है वह उनकी पीड़ा है। इस प्रकार की कथा में वह परपीड़ाकर कथा है, उसके होने पर। **सावज्जाणुमोयणियाए**- अवद्य अर्थात् दोष। दोष के साथ में जो कथा की जाती है वह सावद्य हिंसा आदि कर्म कहलाते हैं। उसकी अनुमोदना, उसकी स्वीकार्यता जिस कथा में हो वह सावद्यानुमोदनिकि कथा हैं उस कथा के होने पर। **एत्थ**- इन सब कहे हुए स्त्रीकथा आदि भेदों में जो कोई भी मेरे द्वारा अतिचार या अनाचार किया गया हो वह मेरा दुष्कृत्य अथवा पाप मिथ्या होवे।

पडिक्कमामि भंते। इत्यादि। **अट्टेझाणे**- आर्तध्यान चार प्रकार का है। आर्तममनोज्ञस्य सम्प्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृति समन्वाहारः- इस सूत्र के अनुसार विपरीतं मनोज्ञस्य, वेदनायाश्च, निदानं च इन सूत्रों के अनुसार आर्तध्यान के चार भेद हैं। अमनोज्ञ का संयोग, मनोज्ञ का वियोग, वेदना और निदान ये चार भेद हैं। **रुद्देझाणे**- 'हिंसानृतस्तेय विषय संरक्षणेभ्यो रौद्रं' इस सूत्र के अनुसार हिंसासंरक्षणानंद ,

प्रतिक्रमामि। **इहलोयसण्णाए**। इहलोकार्थं संज्ञाश्चतस्र आहारादिसंज्ञाभेदात्। **परलोयसण्णाए**। परलोको जन्मान्तरम्। तदर्थं संज्ञा सुखाद्यभिलाषः। तस्याम्। तत्रेहलोकसंज्ञानां चतसृणां व्याख्यानार्थमाहारेत्याद्याह। **आहारसण्णाए**। आहारार्थं संज्ञाऽभिलाषः। तस्याम्। **भयसण्णाए**। भयार्थं त्रासार्थं संज्ञा संस्कारः। **मेहुणसण्णाए**। मैथुनार्थं संज्ञाऽभिलाषः। तस्याम्। **परिग्गहसण्णाए**। परिग्रहार्थ संज्ञाऽभिलाषः। तस्याम्। **कोहसल्लाए**। इत्यादौ स्त्रीलिंगनिर्देशो 'लिंगं प्राकृते व्यभिचार्यपी-' त्यस्य प्रदर्शनार्थः। **कोहसल्लाए**। क्रोधशल्ये। **माणसल्लाए**। मानशल्ये। **मायासल्लाए**। मायाशल्ये। **लोहसल्लाए**। लोभशल्ये। **पेम्मसल्लाए**। स्नेहशल्ये। **पिवाससल्लाए**। इहलोकविषयाकांक्षणं पिपासाशल्यम्। तस्मिन्। **णियाणसल्लाए**। परलोके भोगाकांक्षणं निदानं, नियतं दीयते चित्तमस्मिन्निति निदानमिति व्युत्पत्तेः। **मिच्छादंसणसल्लाए**। मिथ्यादर्शनशल्ये। एतान्यष्टौ शल्यानीव शल्यानि। यथैव बाणादीनि शरीरमनुप्रविश्य प्राणिनां पीडाकरत्वाच्छल्यानि, तथा क्रोधादीन्यपि शरीरमनुप्रविश्य शारीरमानसादीनि नानादुःसह-दुःखान्यनेकयोनिगतानि कुर्वन्तीति शल्यानीत्युच्यन्ते। **कोहकसाए माणकसाए मायाकसाए लोहकसाए**। एतेषां चतुर्णां कषायाणां क्रोधादिशल्यानां च को विशेष इति चेत् , उच्यते-बंधं प्रत्येतेषामस्ति विशेषः। तथाहि-क्रोधकषायजनितो मंदोऽल्पस्थितिको बंधः, क्रोधादिशल्यजनितस्तु तीव्रो बहुस्थितिको बन्धः। एतानि चार्तध्यानादीनि लोभकषायपर्यन्तानि मुनिभिस्त्याज्यानि। तदत्यागे तेषु सत्सु यो दोषस्तस्य प्रतिक्रमणम्। **किण्हलेस्सपरिणामे णीललेस्सपरिणामे काउलेस्सपरिणामे**। एते त्रयोऽशुभलेश्या-परिणामाः परित्याज्याः। तदपरित्यागे प्रतिक्रमणम्। **आरंभपरिणामे**। ज्ञानसंयमोपकरणा-देरारम्भपरिणामे निष्पादनसंस्कारादिपरिणामे। **परिग्गहपरिणामे** । परिग्रहस्य चेतनस्याचेतनस्य वा स्वीकारपरिणामे। **पडिसयाहिलासपरिणामे**। प्रतिश्रयो मठाद्याश्रयः। तत्राभिलाषः परिणामो मूर्च्छापरिणामः। **मिच्छादंसणपरिणामे** । विपरिताभिनिवेशरूपायां परिणतौ। **असंजमपरिणामे**। असंयमो द्वादशप्रकारः,

मृषासंरक्षणानंद, स्तेयासंरक्षणानंद और विषय संरक्षणानंद यह चार रौद्र ध्यान के भेद हैं। किसी कारण से इन दोनों प्रकार के ध्यान में परिणति हो जाने पर जो दोष हुआ उसका मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। **इहलोयसण्णाए**- इस लोक के लिए होने वाली इच्छाएँ संज्ञा है जो कि आहार आदि के भेद से चार प्रकार की हैं। **परलोयसण्णाए**- परलोक अर्थात् जन्मान्तर। उसके लिए की जाने वाली सुख आदि की अभिलाषा परलोक संज्ञा हैं, उसके होने पर। उसमें चार प्रकार की इहलोक संज्ञाओं के व्याख्यान करने के लिए आहार-आदि यहाँ कहते हैं। **आहारसण्णाए**- आहार के लिए संज्ञा, अभिलाषा आहार संज्ञा है, उसके होने पर। **भयसण्णाए**- भय के लिए अर्थात् त्रास देने के लिए जो संस्कार है वह भय संज्ञा है, उसके होने पर। **मेहुणसण्णाए**- मैथुन के लिए जो अभिलाषा है वह मैथुन संज्ञा है, उसके होने पर। **परिग्गहसण्णाए**- परिग्रह के लिए जो अभिलाषा है वह परिग्रह संज्ञा है, उसके होने पर। **कोहसल्लाए**- इत्यादि पदों में स्त्रीलिंग का निर्देश है जो कि-लिंगं प्राकृते व्यभिचार्यपि-इस सूत्र के अनुसार लिंग व्यभिचार भी प्राकृत में मान्य है। **कोहसल्लाए**- अर्थात् क्रोध शल्य में। **माणसल्लाए**- मान शल्य में। **मायासल्लाए**- माया शल्य में। **लोहसल्लाए**- लोभ शल्य में। **पेम्मसल्लाए**- स्नेह शल्य में। **पिवाससल्लाए**- इस लोक संबंधी विषयों की आकांक्षा पिपासा शल्य है, उसमें। **णियाणसल्लाए**- परलोक संबंधी भोगों की आकांक्षा, निदान है। नियत रूप से चित्त जिसमें दिया जाता है वह निदान कहलाता है। यह व्युत्पत्ति अर्थ हैं। **मिच्छादसंणसल्लाए**- मिथ्या दर्शन शल्य में । इन आठों ही शल्यों को शल्य के समान कहा जाता है जिस प्रकार बाणादि शरीर में प्रवेश करके प्राणियों को पीड़ादायक होने से शल्य होते हैं उसी प्रकार से क्रोध आदि भी शरीर में प्रवेश करके शारीरिक और मानसिक अनेक प्रकार के दुःखों को देते हैं। और यह दुःख अनेक योनियों में भी रहते हैं इसलिए इनको शल्य कहा जाता है। **कोहकसाए माणकसाए मायाकसाए लोहकसाए**- इन चारों ही कषायों में और क्रोध आदि चार शल्यों में क्या विशेषता है? ऐसा पूछने पर उत्तर देते हैं- बंध के प्रति तो इनमें विशेषता है। वह इस प्रकार से है- क्रोध कषाय से उत्पन्न हुआ मंद अर्थात् अल्प स्थिति वाला बंध होता है किंतु क्रोध शल्य से उत्पन्न हुआ तीव्र अर्थात् बहुत स्थिति वाला बंध होता है। यही इन दोनों में विशेषता है। अर्थात् क्रोध आदि कषाय से मंद स्थिति का बंध होता है और क्रोध शल्य आदि से तीव्र स्थिति वाले बंध पड़ते हैं। ये चारों ही आर्तध्यान आदि और लोभ कषाय तक के परिणाम मुनियों के द्वारा त्याज्य हैं। इनका त्याग नहीं करने पर और इनके हो जाने पर जो दोष हुआ है उसका प्रतिक्रमण करते हैं। **किण्हलेस्स परिणामे णीललेस्सपरिणामे काउलेस्स परिणामे**- ये तीनों ही अशुभ लेश्या के परिणाम त्याग करने योग्य हैं। इनका त्याग नहीं करने पर प्रतिक्रमण होता है। **आरंभ परिणामे**- ज्ञान और संयम के उपकरण आदि का आरंभ परिणाम होने पर उनके निष्पादन, उनके संस्कार आदि के परिणाम होते हैं, इन परिणाम में। **परिग्गह परिणामे**- चेतन अथवा अचेतन किसी भी प्रकार के परिग्रह की स्वीकारता का परिणाम परिग्रह परिणाम हैं, उसके होने पर। **पडिसयाहिलास परिणामे**- मठ आदि आश्रय प्रतिश्रय हैं। उनमें मूर्छा परिणाम होना अर्थात् उनकी अभिलाषा का परिणाम होना यह प्रतिश्रय अभिलाष परिणाम है, उसके होने पर। **मिच्छादंसण परिणामे**- विपरीत अभिनिवेश रूप परिणति मिथ्या दर्शन परिणाम है, उसके होने पर। **असंजम परिणामे**- असंयम बारह प्रकार का हैं। छह जीव

षड्जीवनिकायषडिन्द्रियभेदात्। तत्परिणामे तत्परिणतौ। **कसायपरिणामे**। कषायाः क्रोधादयोऽनन्तानुबन्ध्यादिभेदात् षोडशप्रकाराः। तद्रूपतया परिणामे परिणतौ। **पावजोगपरिणामे**। पापाः सावद्याः। ते च ते योगाश्च। तद्रूपतया परिणामे परिणतौ। अथवा पापयोग्यपरिणामे पापयोग्यायां परिणतौ। **कायसुहाहिलासपरिणामे**। काये शरीरे सुखाभिलाषः परिणामः सुखित्ववाञ्छेन्द्रियसुखाभिलाषो वा। तमेवेन्द्रियसुखाभिलाषं विषयनिष्ठं दर्शयन्नाह**सद्देसु**। गीतादिमनोज्ञशब्देषु। **रूवेसु**। कमनीयकामिन्यादिरूपेषु। **गंधेसु**। कर्पूरकस्तूरिकादिमनोहरगन्धेषु। **रसेसु**। तिक्तमधुरादिजिह्वाह्लाद-जनकरसविशेषेषु। **फासेसु**। मृदुशीतलादिस्पर्शनेन्द्रियानन्दजनकस्पर्शेषु। **काइयाहिकरणियाए**। कायिकायां[1] (क्यां)। काये भवा कायिकी सावद्यक्रिया। अधिकरणं कर्मागमनाधिष्ठानं जीवाजीवलक्षणम्। तत्र भवाधिकरणिकी। **पादोसियाए**। प्रकृष्टा दोषाः क्रियाप्रदोषाः। तेषु भवा प्रादोषिकी दुष्टमनोवाक्कायव्यापारलक्षणा। **परिदावणियाए**। द्रावणं क्षोभणं दुःखोत्पादनम्। परिसमन्ताद्द्रावणं परिद्रावणम्। तत्र भवा पारिदावणिकी। **पाणाइवाइयासु**[2]। प्राणानामिन्द्रियमनोवाक्कायायुष्कोच्छ्-वासनिःश्वासलक्षणानामतिपाता वियोगकरणानि। तत्र भवाः प्राणातिपातिकाः (क्यः) क्रियाः। तासु। एत्थ। एतस्मिन्नार्तध्यानादौ प्राणातिपातिकक्रियापर्यन्ते। **जो को**। इत्यादि सुगमम्।

पडिक्कमामि भंते। इत्यादि। **एक्के भावे अणाचारे**। एकस्मिन्भावे परिणामे। कथम्भूते ? अनाचारे। आचारो हि विरतिः। तदभावोऽनाचारः। तल्लक्षणे। सर्वेषां हि चातुर्गतिकप्राणिनां स्वभावतः साधारणोऽनाचारलक्षण एको भावो भवति। **वेसु रायदोसेसु**। द्वयो रागद्वेषयोः परिणामयोः कृतयोरेकस्मिंश्च प्रागुक्तपरिणामे ये दोषा व्रतादिविघातिनस्तान्प्रतिक्रमामि।

तिसु गुत्तीसु, तिसु दंडेसु, तिसु गारवेसु, चउसु कसाएसु, चउसु सण्णासु, पंचसु महव्वदेसु, पंचसु समिदीसु, छसु जीवणिकाएसु, छसु आवासएसु, सत्तसु भएसु। एते च गुप्त्यादयः प्रागेव व्याख्याताः। तेषु ये दोषास्तान्प्रतिक्रमामि। **अट्ठसु मएसु**। यथा मदिरादयो जीवस्य मदं जनयंति तथा

---

1. 'टिड्ढाणञ्' इत्यङीप्।
2. 'पाणदिवादियासु' इत्यपि पाठः।

निकाय और छह इन्द्रिय के भेद से उसके बारह भेद हो जाते हैं। इन असंयम के परिणाम में अर्थात् उस असंयम रूप से परिणत हो जाने पर। **कसाय परिणामे**- अनंतानुबंध आदि के भेद से सोलह प्रकार की क्रोध आदि कषायें हैं। उस रूप से परिणाम में परिणत होने पर। **पावजोगपरिणामे**- पाप, सावद्य हैं। वह सावद्य ही योग रूप है उस रूप से परिणाम हो जाने पर अर्थात् उन सावद्य योग रूप से परिणत हो जाने पर अथवा पाप योग्य परिणाम होने पर। **कायसुहाहिलास परिणामे**- काय अर्थात् शरीर में सुख की अभिलाषा का परिणाम। अथवा सुखीपने की इच्छा और इन्द्रिय सुख की अभिलाषा भी कायसुखाभिलाष परिणाम है। वह इन्द्रिय सुख की अभिलाषा भी किन विषयों में निष्ठ (लीन)होती है उसको दिखाते हुए कहते हैं- **सद्देसु**- गीत आदि मनोज्ञ शब्दों में। **रूवेसु**- कमनीय कामिनी (नारी) आदि के रूपों में। **गंधेसु**- कपूर, कस्तूरिका आदि मनोहर गंध में। **रसेसु**- तिक्त, मधुर आदि जिह्वा को आह्लाद उत्पन्न करने वाले रस विशेषों में। **फासेसु**- मृदु, शीतल आदि स्पर्शन इन्द्रिय को आनंद उत्पन्न करने वाले स्पर्शों में। **काइयाहिकरणियाए**- काय में होने वाली क्रिया कायिकी क्रिया है जो सावद्य क्रिया है। अधिकरण कर्मों के आगमन का अधिष्ठान है जो जीव और अजीव लक्षण वाला है। उसमें होने वाली भवाधिकरणिकी क्रिया कहलाती है। **पादोसियाए**- प्रकृष्ट दोष जिस क्रिया में हो वह प्रादोषिकी क्रिया है। अर्थात् दुष्ट मन, वचन, काय के व्यापार लक्षण वाली प्रादोषिकी क्रिया है। **परिदावणियाए**- दुःख का उत्पादन करना द्रावण अर्थात् क्षोभण है। चारों ओर से जिसमें द्रावण किया जाता है वह परिदावण है। उसमें होने वाली क्रिया परिदावणिकी क्रिया है। **पाणाइवाइयासु**- इन्द्रिय, मन, वचन, काय, आयु, श्वासोच्छवास लक्षण वाले दस प्राणों का अतिपात करना अर्थात् इनका वियोग करना। उसमें होने वाली प्राणातिपातिकी क्रिया कहलाती है। इन सब क्रियाओं में जो आर्तध्यान आदि में से लेकर प्राणातिपातिकी क्रिया पर्यंत तक जो कोई भी मेरे द्वारा क्रिया की गई है उन सब क्रियाओं में जो अतिचार, अनाचार आदि लगा हो वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

पडिक्कमामि भंते। इत्यादि। **एक्के भावे अणाचारे**- एक भाव अनाचार का है उसमें। एक भाव या एक परिणाम में। किस प्रकार के? अनाचार में। विरति को आचार कहते हैं। विरति का अभाव अनाचार है। उस अनाचार लक्षण वाले परिणाम में। चार गति में भ्रमण करने वाले सभी प्राणियों का स्वभाव से ही अनाचार लक्षण वाला एक साधारण भाव रहता है। **वेसु रायदोसेसु** -राग और द्वेष दोनों परिणामों में किये हुए राग द्वेष के परिणामों में और पहले कहे हुए एक भाव वाले परिणाम में जो व्रत आदि को विनाश करने वाले दोष उत्पन्न हुए हैं उनका मैं प्रतिक्रमण करता हूँ।

तिसु गुत्तीसु, तिसु दंडेसु, तिसुगारवेसु, चउसु कसाएसु, चउसु सण्णासु, पंचसु महव्वदेसु, पंचसु समिदीसु, छसु जीवणिकाएसु छसु आवासएसु ,सत्तसु भएसु- ये गुप्ति आदि की व्याख्या पहले की गई है उनमें जो दोष हुए है उनका मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। **अट्ठसु मएसु**- जैसे मदिरा आदि जीव में मद उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार से जाति, कुल, ऐश्वर्य, रूप, ज्ञान, तप बल और शिल्प ये प्राणियों को मद

जातिकुलैश्वर्यरूपज्ञानतपोबलशिल्पान्यपि प्राणिनां मदजनकत्वान्मदाः। तेष्वष्टसु मदेषु ये दोषास्तान्प्रतिक्रमामि। **णवसु बंभचेरगुत्तीसु, दसविहेसु समणधम्मेसु**। नवप्रकारा ब्रह्मचर्यगुप्तयो, दशप्रकारा श्रमणधर्माश्च प्रागेवोक्ताः। तेषु प्रमादात् समायातदोषान्प्रतिक्रमामि। **एयारसविहेसु उवासयपडिमासु**। उपासनं सेवामर्हदादीनां ये कुर्वन्ति त उपासकाः श्रावकाः। तेषां प्रतिमास्वेकादशविधासु। ''दंसणवयसामाइयपोसहसचित्तराइभत्ते य। बंभारंभपरिग्गह अणुमणमुद्दिट्ठदेसविरदो य ॥'' इत्येतल्लक्षणासु तास्वनादरादौ कृते यो दोषस्तं प्रतिक्रमामि। **बारसविहेसु भिक्खुपडिमासु**। भिक्षूणां मुनीनां प्रतिमा द्वादशविधाः भवन्ति। तथाहि-उत्तमसंहननादियुक्तो मुनिर्विवक्षितदेश उत्कृष्टदुर्लभाहारस्य व्रतं गृह्णाति। इत्थम्भूतमाहारं मासमध्ये यदि प्राप्नोति तदा चर्यां करोति, नान्यथा। तस्य च मासस्यावसानदिवसे प्रतिमायोगेन तिष्ठति। इत्येका भिक्षुप्रतिमा। एवं पूर्वोक्ताहारागच्छतगुणदुर्लभाहारस्यावग्रहं गृह्णाति यावद् द्वित्रिचतुःपंचषट्सप्तमासा इति सप्तप्रतिमाः। ततस्त्रीणि सप्तदिनान्यवग्रहं गृह्णाति । तेषु कथमप्याहारप्राप्तौ त्रिद्व्येकग्रासं गृह्णाति। इति तिस्रः प्रतिमाः। ततोऽहोरात्रं प्रतिमायोगेन तिष्ठति। ततो रात्रिप्रतिमायोगेन स्थित्वा प्रभाते केवलमुत्पादयतीति। तदुक्तं-''मासियदुयतियचउपंचमासछम्मासससत्तमासे य। तिण्णेव मंदराई[1] इंदियराई य पडिमाओ॥'' **तेरसविहेसु किरियाट्ठाणेसु**। त्रयोदशविधानि क्रियास्थानानि प्रागेवोक्तानि। द्वादशभिक्षुप्रतिमास्त्रयोदशक्रियाश्च मुनिभिरनुष्ठातव्याः। तासु प्रमादादननुष्ठानेऽनादरे च ये दोषास्तान्प्रतिक्रमामि। **चोद्दसविहेसु भूदगामेसु**। भूतानां ग्रामाः संघाताश्चतुर्दश। तदुक्तं। गाथा- ''बादरसुहुमेइंदी बितिचउरिंदि य असण्णिसण्णी य। पज्जत्ताऽपज्जत्ता भूदा ते चोद्दसा होंति॥'' अथवा मिथ्यात्वसासादनादयश्चतुर्दशभूतग्रामाः। तेषु विराधनायां यो दोषस्तं प्रतिक्रमामि। **पण्णारसविहेसु पमादट्ठाणेसु**। पंचदशप्रकाराणि प्रमादस्थानानि। तेषु यो दोषस्तं प्रतिक्रमामि। **सोलहविहेसु पवयणेसु**।

---

1. 'सत्तराई' इति पाठान्तरम्।

उत्पन्न करते हैं इस कारण से इनको मद कहा जाता है। इन आठों मदों में जो दोष उत्पन्न हुआ है उनका मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। **णवसु बंभचेर-गुत्तीसु दसविहेसु समणधम्मेसु**- नौ प्रकार की ब्रह्मचर्य की गुप्तियाँ हैं। दस प्रकार का श्रमण धर्म है, जो कि पहले कहे जा चुके हैं उनमें प्रमाद से जो दोष उत्पन्न हुए उनका मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। **एयारसविहेसु उवासयपडिमासु**- अर्हंत आदि की जो उपासना या सेवा करते हैं उन श्रावकों की ग्यारह प्रकार की प्रतिमाओं में जो कि-दंसणवयसामाइय....विरदो य।-इस गाथा के अनुसार दर्शन प्रतिमा, व्रत प्रतिमा, सामायिक प्रतिमा, प्रोषध प्रतिमा, सचित्त त्याग प्रतिमा, रात्रि भक्त त्याग प्रतिमा, ब्रह्मचर्य प्रतिमा, आरंभ त्याग प्रतिमा, परिग्रह त्याग प्रतिमा, अनुमति त्याग प्रतिमा और उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा-ये ग्यारह प्रतिमा हैं। इन ग्यारह प्रतिमा वाले श्रावकों के व्रतों में जो कुछ भी अनादर आदि किया गया हो, अनादर आदि करने पर जो दोष उत्पन्न हो उसका मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। **बारस विहेसु भिक्खु पडिमासु**- भिक्षुओं अर्थात् मुनियों की बारह प्रकार की प्रतिमा होती हैं। वह इस प्रकार से है। उत्तम संहनन आदि से युक्त मुनि विवक्षित देश में उत्कृष्ट रूप से दुर्लभ आहार के व्रत को ग्रहण करता है। इस प्रकार के आहार को एक मास के बीच में यदि प्राप्त कर लेता है तो चर्या करते हैं अन्यथा नहीं करता है। उन मुनिराज की एक महीने के अन्तिम दिन में प्रतिमा योग से स्थिति होती है। इस प्रकार यह एक भिक्षु प्रतिमा हुई। इसी प्रकार पूर्वोक्त रूप से आहार को जाते हुए गुणों में दुर्लभ आहार की प्रतिमा को ग्रहण करते हैं इस तरह से करते हुए जब तक कि उनके दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात माह व्यतीत नहीं हो जाते-इस प्रकार उनकी सात प्रतिमा हुई। उसके बाद सात दिन के तीन अवग्रह (प्रतिज्ञा ग्रहण करते हैं) उसमें किसी भी प्रकार से आहार प्राप्त हो जाने पर तीन, दो या एक ग्रास ग्रहण करते हैं। ये तीन प्रतिमाएँ हुई। तदनन्तर एक रात दिन के लिए प्रतिमा योग से स्थित होते हैं उसके बाद रात्रि प्रतिमा योग से स्थित होकर प्रभात में केवलज्ञान को उत्पन्न कर लेते हैं। इसी प्रकार से कहा भी गया है- मासियदुयति.....पडिमाओ।

तेरसविहेसु किरियाट्ठाणेसु- तेरह प्रकार की क्रियास्थान पहले ही कहे गये हैं। बारह प्रकार की भिक्षु प्रतिमा है और तेरह प्रकार की क्रियाएँ हैं ये मुनियों के द्वारा अनुष्ठान करने योग्य है। इनमें प्रमाद से अनुष्ठान नहीं करने पर या अनादर हो जाने पर जो दोष लगे उनका मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। **चोद्दसविहेसु भूदगामेसु**- भूतों का (जीवों का) ग्राम अर्थात् समूह चौदह प्रकार का है। वह इस प्रकार से कहा है। गाथा अर्थ- एकेन्द्रिय के बादर और सूक्ष्म दो भेद हैं। दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, और चार इन्द्रिय जीव हैं, पंचेन्द्रिय के संज्ञी और असंज्ञी दो भेद हैं। इन सभी सातों भेदों को पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से कहने पर चौदह भूतग्राम (जीव समूह)हो जाते हैं। अथवा मिथ्यात्व, सासादन आदि ये चौदह भूतग्राम कहलाते हैं। इनमें विराधना होने पर जो दोष उत्पन्न हुआ उनका मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। **पण्णारसविहेसु पमादट्ठाणेसुः**- पन्द्रह प्रकार के प्रमाद स्थान हैं इनमें जो दोष हुआ हो उनका मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। **सोलस विहेसु पवयणेसु**- सोलह

षोडशप्रकाराणि वचनानि भवन्ति। तथाहि-विभक्तिकाललिंगवचनानि प्रत्येकं त्रीणि त्रीणि। तथाऽधिकोनमिश्रवचनानि त्रीणि। समयलोकदुष्टपरोक्षवचनानि चत्वारि। एतान्याश्रित्य यो दोषो जातस्तस्य प्रतिक्रमणम्। **सत्तारसविहेसु असंजमेसु**। असंयमोऽविरतिः। स सप्तदशप्रकारो भवति। तथाहि- पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयो द्वित्रिचतुःपंचेन्द्रिया अप्रतिलेखेन दुष्प्रतिलेखेनापहृत्योपेक्षानिर्जीव (र्जित) मनोवाक्कायाः (?)। अपहृत्य गृहीताण्डकादिजन्तून्प्रतिलेख्योपेक्षास्थापितोपकरणस्य पुनरनवलोकनं निर्जीवकाष्ठचित्रादिविनाशनम्। अथवा-

गाथा-

पंचासवेहिं विरमणं पंचिंदियणिग्गहो कसायजओ।
तिहिं दंडेहिं य विरदी सत्तारस संजमा भणिदा॥1॥

तत्प्रतिषेधादसंयमा अपि सप्तदशविधा भवन्ति। ते च न कर्तव्याः। प्रमादात्तत्करणे प्रतिक्रमणम्। **अट्ठारसविहेसु असंपराइएसु**। समीचीनः परो मुख्यः प्रधान आयः पुण्यागमनं येभ्यस्ते सम्परायाः। सम्पराया एव साम्परायिकाः। अष्टादश। दश धर्माः पंच समितयस्तिस्रो गुप्तयश्च। तत्प्रतिषेधादसाम्परायिका अपि प्रकृष्टपापागमनहेतवोऽष्टादश। पंचेंद्रियाणि, पंच तदर्थाः, चत्वारः कषायाः, चतस्रः संज्ञाः। उक्तं च-

गाथा-

जइदसधम्मा पवयणमादा अट्ठारससंपरायगुणा।
तेहिंतो जं विरमणमसंपरायत्ति णिद्दिट्ठं॥

एतत्प्रभवं दोषं प्रतिक्रमामि॥ **एऊणविसाए णाहाज्झयणेसु**। एकोनविंशतिनाथाध्ययनेषु। तद्यथा-

गाथा-

उक्कोडणाग-कुम्मंडय-रोहिणि-सिस्स-तुंब-संघादे।
मादंगिमल्लिचंदिम-तावद्देवयतिकतलायकिण्णे (य)॥1॥
सुसुकेय - अवरकंके - णंदीफलमुदगणाहमंडूके।
एत्तो य पुंडरीगो णाहज्झाणाणि उगुवीसं॥2॥

प्रकार के वचन होते हैं वह इस प्रकार से है– विभक्ति, काल, लिंग और वचन ये प्रत्येक तीन-तीन प्रकार के होते हैं उसी प्रकार से अधिक, ऊन और मिश्र वचन ये तीन प्रकार के होते हैं। समय वचन, लोक वचन, दुष्ट वचन, और परोक्ष वचन-ये चार प्रकार वचन है। इन सबके आश्रित होकर के जो दोष उत्पन्न है उसका मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। **सत्तारसविहेसु असंजमेसु**- सत्तरह प्रकार का असंयम होता है उसमें असंयम अर्थात् विरति का अभाव। वह असंयम सत्तरह प्रकार का है जो इस तरह से है– पृथ्वी कायिक, जल कायिक, अग्नि कायिक, वायु कायिक और वनस्पति कायिक जीव तथा दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीव इनका अप्रतिलेखन से, दुष्ट प्रति लेखन से इनको दूर करके उपेक्षा से मन, वचन, काय को नहीं जीतने पर और इनको भी दूर करके ग्रहण किये हुए अण्डक आदि जंतु को इनका प्रतिलेखन करके, उपेक्षा से स्थापित उपकरण की उपेक्षा कर देना और उसको पुनः नहीं देखना निर्जीव, काष्ठ, चित्र आदि का विनाश करना। इस तरह से ये सब मिलाकर सत्तरह प्रकार का असंयम होता है। अथवा

गाथा– **पंचासवेहिं विरमणं पंचिंदियणिग्गहो कसायजओ**
तिहिं दंडेहिं य विरदी सत्तारस संजमा भणिदा॥

अर्थ—पाँच प्रकार के आस्रवों से विरति होना, पंच इन्द्रिय का निग्रह होना, चार कषायों का जय होना, तीन प्रकार के दंडों से विरति होना ये सत्तरह प्रकार का संयम कहा गया हैं।

उस संयम के प्रतिषेध से असंयम भी सत्तरह प्रकार का हो जाता है वे असंयम नहीं करने चाहिए। प्रमाद से वह असंयम कर लेने पर प्रतिक्रमण होता है। **अट्ठारसविहेसु असंपराइएसु**- पर अर्थात् मुख्य, प्रधान या आय और पुण्य आगमन ये सब एकार्थवाची हैं। सम् अर्थात् समीचीन रूप से पर अर्थात् पुण्य का आगमन जिससे होता है वह साम्पराय कहलाते हैं। सम्पराय ही साम्परायिक है जो अट्ठारह प्रकार के हैं। दस धर्म, पाँच समिति, तीन गुप्तियाँ ये अट्ठारह भेद हैं। इनके प्रतिषेध से असाम्परायिक भी प्रकृष्ट पाप के आगमन का हेतु होने से अट्ठारह प्रकार का है। पाँच इन्द्रियाँ, पाँच इन्द्रियों के विषय, चार कषाय, चार संज्ञा ये भी अट्ठारह प्रकार का असांपराय है। कहा भी है–

गाथा– **जइदस धम्मा पवयणमादा, अट्ठारस संपरायगुणा।**
तेहिंतो जं विरमणमसंपरायत्ति णिद्दिट्ठं॥

अर्थ-यतियों के दश धर्म और आठ प्रवचन मातृका, ये अठारह संपराय के गुण हैं। उनसे जो विरति है उसे असंपराय, ऐसा कहा है। इनसे उत्पन्न दोष का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ।

एऊणविसाए णाहाज्झयणेसु-19 नाथ अध्ययनों में। जैसे कि-श्वेत हस्ती, कूर्म, अंडज, रोहिणी, शिष्य, तुंब, संघात, मातंगि मल्लि, चन्द्रिम, तावद्देवय, त्तिक, तड़ाग, कर्षक, सुसुकेत, अवरकंक, नंदीफल, उदकनाथ, मण्डूक और पुंडरीक ये उन्नीस कथाएँ हैं।

एताः सर्वाः धर्मकथाः। तथाहि-**उक्कोडणागः** श्वेतहस्ती। अस्य कथा। उत्तरापथे कनकपुरे राजा कनकः, कनका महाराज्ञी। पुत्रो नागकुमारस्तपो गृहीत्वा विहरमाणोऽटव्यां दावानलेन दह्यमानः समाधिना मृत्वाऽच्युतेन्द्रो जातः। तदर्धदग्धकलेवरं दृष्ट्वा तुङ्गभद्रो नाम तत्रत्यो भिल्लो जातपश्चात्तापो मृत्वा तत्रैव श्वेतगजो जातः। सोऽच्युतेन्द्रेण जिनधर्मं ग्राहितः। पुनर्दावानलेन दह्यमानं शशकं स्वपादतले स्थितं रक्षित्वा दह्यमानोऽपि दृढव्रतो भूत्वा मृत्वा देवो जातः॥ **कुम्म**॥ कूर्माख्यानं-यथा-कूर्मेण मुखचरणसंकोचं कृत्वाऽऽत्मनो ब्राह्मणान्मरणं निवारितं, तथा मुनिभिरपि पंचेन्द्रियसंकुचितैर्मरणपरम्परा निवारयितव्या॥ **अंडय**॥ अण्डजकथा पंचप्रकारा। तद्यथा-कुक्कुटकथा॥1॥ माताप्येकः पिताऽप्येक इति तापसपल्लिकास्थितशुककथा॥2॥ चाणक्यव्याकरणे वेदकशुककथा॥3॥ अगंधनसर्पकथा॥4॥ हंसयूथबन्धमोचनकथा॥5॥ **रोहिणी**॥ स्वपुत्रबलदेवेन सह रोहिणी तिष्ठतीति लोकपवादं श्रुत्वा रोहिण्या तदा भणितं-यद्यहं शुद्धा तदा यमुना नदी सौरीपुरं वेष्टित्वा पूर्वाभिमुखं वहत्विति तन्माहात्म्यात्तथैव जातम्॥ **सिस्स**॥ शिष्यकथा-यथा-चेलिनीपुत्रवारिषेणप्रतिबोधितपुष्पडालमुनिकथा ॥**तुंब**॥ रोषेण दत्तकटुकतुम्बकभोजनमुनिकथा॥ **संघादे**॥ अस्य कथा-कौशाम्बीनगर्यामिन्द्रदत्तादयो द्वात्रिंशदिभ्याः। तेषां समुद्रदत्तादयो द्वात्रिंशत्पुत्राः परस्परमित्रत्वमुपगताः सम्यग्दृष्टयः केवलिसमीपेऽतिस्वल्पं निजजीवितं ज्ञात्वा तपो गृहीत्वा यमुनातीरे पादोपयानमरणेन स्थिताः। अतिवृष्टौ जातायां जलप्रवाहेण यमुनाह्रदे सर्वेऽपि ते पतिताः। परमसमाधिना कालं कृत्वा स्वर्गं गताः॥ **मादंगिमल्लि**॥ मातंगिमल्लि कथा। यथा-वज्रमुष्टिमहाभटभार्यायाः मातंगिनामायाः मल्लिपुष्पमालाभ्यन्तरस्थितसर्पदष्टायाः कथा॥ **चदिंम**॥ चन्द्रबेधकथा॥ **तावद्देवय**॥ तावद्देवतोपद्रवदेशोत्पन्नघोटिकहरणसगरचक्रवर्तिकथा ॥**तिक**॥ मनुष्यक-रोटसमुत्थितवंशत्रिकस्य करकण्डुमहाराज-कृतछत्रध्वजांकुश-दण्डकथा॥ **तलाय**॥

ये सभी धर्म कथाएँ हैं, वह इस प्रकार से है। सबसे पहले **उक्कोडणाग**- अर्थात् श्वेत हस्ती। इसकी कथा कहते हैं- उत्तरापथ में कनकपुर में राजा कनक रहते थे। उनकी कनका नाम की महारानी थी। उनके नागकुमार नाम का पुत्र था। जो तप ग्रहण करके विहार करते हुए अटवी में दावानल से जलते हुए समाधि के द्वारा मरण करके अच्युत इन्द्र हुआ था। उसके अर्धदग्ध कलेवर अर्थात् शरीर को देखकर के तुङ्गभद्र नाम का वहीं पर रहने वाला भील पश्चात्ताप को प्राप्त हुआ और उस पश्चाताप से मर करके वहीं उसी अटवी में श्वेत गज हुआ। उस श्वेत गज को उस अच्युत इन्द्र ने जिनधर्म ग्रहण करा दिया। पुनः दावानल से जलते हुए खरगोश को अपने पैरों के तल में रखकर रक्षा करने पर जल गया और जलने पर भी दृढ़ व्रत होकर के मरण को प्राप्त हुआ और देव हुआ।

कुम्म- कूर्म का आख्यान। जैसे कूर्म अर्थात् कछुआ मुख और चरणों को संकोचित करके ब्राह्मण से अपना मरण बचा लेता है उसी प्रकार मुनि को भी पंच इन्द्रियों को संकुचित करके मरण परम्परा से अपने को बचा लेना चाहिए।

अंडय- अण्डज कथा पाँच प्रकार की हैं। वह इस प्रकार है।

1. कुक्कुट कथा।
2. माता भी एक है, पिता भी एक है इस प्रकार तापस के एक छोटे से गाँव में स्थित शुक अर्थात् तोते की कथा।
3. चाणक्य के व्याकरण में वेदक शुक की कथा।
4. अगंधन सर्प की कथा।
5. हंसयूथ के बंधन को छुड़ाने की कथा।

रोहिणी- अपने पुत्र बलदेव के साथ में रोहिणी रहती है। इस प्रकार लोक अपवाद को सुनकर के रोहिणी ने उस समय पर कहा यदि मैं शुद्ध हूँ तो यमुना नदी सौरीपुर को घेरकर पूर्वाभिमुख होकर के बहे । इस प्रकार उस रोहिणी के माहात्म्य से उसी प्रकार से हुआ।

सिस्सः- शिष्य कथा। जैसे चेलिनी के पुत्र वारिषेण के द्वारा प्रतिबोधित हुए पुष्पडाल मुनि की कथा।

तुंब- रोष से मुनि महाराज के लिए दिये गये कडुवी तुम्बी के भोजन से उत्पन्न हुई पीड़ा उसकी कथा यह **तुंब** कथा है।

संघादे- इसकी कथा-कौशाम्बी नगरी में इन्द्रदत्त आदि 32 सेठ लोग रहते थे। उनके समुद्रदत्त आदि बत्तीस पुत्र थे। परस्पर में मित्रत्व को प्राप्त हुए वे सम्यग्दृष्टि जीव केवली के पास जाकर अपने जीवन को बहुत कम ज्ञात करके उनसे दीक्षित होकर यमुना के किनारे प्रायोपगमन समाधि से स्थित हुए। अतिवृष्टि हो जाने पर जल के प्रभाव से यमुना नदी में वे सभी गिर पड़े। परम समाधि से मरण करके स्वर्ग को प्राप्त हुए।

मादंगि मल्लि- मातंगि मल्लि की कथा। जैसे-

तडागपल्ल्यामेक-वृक्षकोटरस्थिततपस्विनो गंधर्वाराधनाकथितकथा॥ **किण्णे**॥ ब्रीहिमर्दनस्थितकर्षक-पुरुषसत्यकथा॥ **सुसुकेय**॥ आराधनाकथितशुंशुमारह्रदनिक्षिप्तपाषाणकथा॥ **अवरकंके**॥ अवरकंकानाम-पत्तनोत्पन्नाञ्जन-चोरकथा॥ **णंदीफल**॥ अटव्यां (वी) स्थितबुभुक्षापीडितधन्वंतरिविश्वानुलोम-भृत्यानीतकिम्पा-कफलकथा॥ **उदगणाह**॥ उदकनाथकथा यथा-राजामात्यसमक्षगडुल-पानीयस्वच्छ-करणकथा ॥ **मण्डूके**॥ उद्यानवनतडागसमुत्पन्नजातिस्मरणमण्डूककथा॥ **पुंडरीगो**॥ पुंडरीकराजपुत्र्याः कथा॥ अथवा-

गाथा-

गुणजीवा पज्जत्ती पाणा सण्णा य मग्गणाओ य
एउणवीसा एदे णाहज्झाणा मुणेयव्वा॥1॥

अथवा गाथा-

णवकेवललब्धीओ कम्मक्खयजा हवंति दस चेव।
णाहज्झाणा एदे एउणवीसा वियाणाहि॥2॥

कर्मक्षयजा घातिक्षयजा दशातिशयाः। एतेषामकाले पठनादौ यो दोषस्तस्य प्रतिक्रमणम्॥ **वीसाए असमाहिट्ठाणेसु**॥ विंशतावसमाधिस्थानेषु। रत्नत्रयमाराधयतोऽविक्षिप्तचित्तता समाधिः। तद्विपरीतोऽसमाधिः। तस्य विंशतिस्थानानि। तद्यथा-

गाथा-

डवडवचरमपमज्जिद णायं वा रादिणीयपडिहासी।
अधिसेज्जासण कोधी थेरविवादंतराए य ॥1॥
उवघादमणणुवीचि अधिकरणी पिट्ठिमांसपडिणीगो।
असमाहिकलहझंझासद्दकरे पढिदएसणासमिदी॥2॥
सूरप्पमाणभोजी गाणंगणिगो सरक्खरावादे।
तह अप्पमाणभोजी वीसदिममकालसज्झाओ॥3॥

डवडवचरं॥ ईर्यासमितिविहीनं गमनम्॥ **अपमज्जिदं**॥ अप्रतिलेखितोपकरणादिनिक्षेपोपादानम्॥

वज्रमुष्टि महाभट के मातंगि नाम की भार्या थी। मल्लि की पुष्पमाला के अंदर स्थित सर्प के द्वारा डसी गई। उसकी कथा।

चंदिम- चन्द्रबेध कथा।

तावद्देवय- तावद् देवता के उपद्रव से देश में उत्पन्न घोड़े के हरण होने वाली सगर चक्रवती की कथा।

तिक- मनुष्य करीट से उत्पन्न हुए वंशत्रिक करकण्डु महाराजकृत छत्र, ध्वजा, अंकुश दण्ड की कथा।

तलाय- तडाग की पल्ली में एक वृक्ष की कोटर में स्थित तपस्वी की गंधर्व आराधना की गई , उसकी कथा।

किण्णे- ब्रीहिमर्दन स्थित कर्षक पुरुष की सत्य कथा।

सुसुकेय- आराधना कथित शुंशुमार तालाब में निक्षिप्त पाषाण की कथा।

अवरकंके- अवरकंका नाम नगर में उत्पन्न अंजन चोर की कथा।

णंदीफल- जंगल में स्थित भूख से पीड़ित धन्वंतरि और विश्वानुलोम सेवकों के द्वारा लाये हुए किंपाक फल की कथा।

उदगणाह- उदकनाथ की कथा जैसे - राजा अमात्य के समक्ष गडुल पानी को स्वच्छ करने की कथा।

मण्डूके- उद्यान, वन, तड़ाग में उत्पन्न जाति-स्मरण रूप मण्डूक की कथा अर्थात् मेंढ़क की कथा।

पुडंरीगो- पुडंरीक राजपुत्री की कथा।

गाथार्थ—गुणस्थान, जीव समास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा और चौदह मार्गणा ये उन्नीस नाथाध्ययन हैं।

गाथार्थ-नौ केवल लब्धियाँ और कर्मक्षय से उत्पन्न हुए दश अतिशय ये मिलकर उन्नीस नाथाध्ययन जानो।

अर्थ— घातिया कर्म के क्षय से उत्पन्न हुए दश अतिशय है। इनको अकाल में पढने आदि रूप जो दोष हैं उसका मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। **वीसाए असमाहिट्ठाणेसु**- बीस असमाधि के स्थान हैं। रत्नत्रय की आराधना करने वाले की चित्त में विक्षिप्तता का अभाव होने का नाम असमाधि है। उसके बीस स्थान है जो इस प्रकार है-

गाथार्थ-डवडवचर्या, अप्रमार्जित, न्याय ?, रात्रीनीत प्रतिहासी, अधिशयासन, क्रोधी, स्थविरवादान्तराय, उपघात, अननुवीचि, अधिकारिणी, प्रष्ठमांस प्रतिनीक, असमाधिकलह, झंझा, शब्द करके पढ़ना, एषणा समिति, सूरप्पमाणभोजी, गाणंगणिक, स्वराक्षरापात, अप्रमाणभोजी, अकाल स्वाध्याय ये बीस स्थान हैं।

डवडवचरं- ईर्या समिति से रहित गमन करना।

अपमज्जिदं- प्रतिलेखन के बिना उपकरण आदि का ग्रहण करना और रखना।

रादिणीयपडिहासी॥ रादिणीओ दीक्षादिभिर्ज्येष्ठः। तममभिभूय जल्पनम्॥ **अधिसेज्जासणं**॥ ज्येष्ठस्योपरि शय्यासनम्॥ **कोधी**॥ ज्येष्ठवचनस्य रोषणम्॥ **थेरविवादंतराए य**॥ ज्येष्ठानां वदतां मध्ये प्रविश्य जल्पनम्॥ **उवघादं**॥ परमभिभूय वचनम्॥ **अणणुवीचि**॥ आगमभाषात्यागेन जल्पनम्॥ **अधिकरणी**॥ आगमविरोधेन निजबुद्ध्या तत्त्वकथनम्॥ **पिट्ठिमांसपडिणीगो**॥ पिट्ठिमांसा पिष्ठिमांस(?) पडिणीगो विपरीतः॥ **असमाहिकलहं**॥ अन्यवचनमन्यस्य कथयित्वा झकटकोत्पादनम्॥ **झंझा**॥ स्तोककलहं कृत्वा रोषणम्॥ **सद्दकरे पढिदा**॥ सर्वेषां ध्वनिमभिभूयोच्चैर्ध्वनिना पठनम्॥ **एसणासमिदि**॥ असंवृतभोजनम्॥ **सूरप्पमाणभोजी**॥(?)॥ **गाणंगणिगो**॥ प्रचुरापधकारी गणाद्गणान्तरेषु निर्घाट्यते॥ **सरक्खरावादे**॥ उद्धूलितपादस्य जले प्रवेशनं जलार्द्रपादस्य वा धूल्यां प्रवेशनम्॥ **अप्पमाणभोजी**॥ अप्रमाणभोजनः॥ **अकालसज्झाओ**॥ अकालस्वाध्यायः॥ एतान्यसमाधिस्थानानि मनोवचनकायैर्न कर्तव्यानि॥ प्रमादात्कदाचित्तत्करणे यो दोषस्तं प्रतिक्रमामि॥ **एक्कवीसाए सबलेसु**॥ एकविंशेषु सबलेसु॥

पंचरस पंचवण्णा दो गंधा अट्ठफासगुणभेया।
विरदिजणरागसहिदा इगिवीसा सवलकिरियाओ॥

विरदिजणरागसहिदा। प्राक्परित्यक्तस्वजनोपरिस्नेहसमन्विताः। एते चैकविंशतिसबला न कर्तव्याः। प्रमादात्तत्करणे संजातं दोषं प्रतिक्रमामि॥ **वावीसाए परीसहेसु**॥ द्वाविंशेषु परीषहेषु व्याख्यातस्वरूपेषु कर्मनिर्जरार्थमवश्यं सोढव्येषु यो जातो दोषस्तं प्रतिक्रमामि। **तेवीसाए सुद्दयडज्झाणेसु**॥ सूत्रकृतं द्वितीयमंगं, तस्याध्ययनानि त्रयोविंशतिः।

गाथा–

समए वेदालिंझे एत्तो उवसग्ग इत्थिपरिणामे।
णिरयंतरवीरथुदी कुसीलपरिभासिए विरिए॥1॥
धम्मो य अग्गमग्गे समोवसरणं तिकालगंथहिदे।
आदा तदित्थगाथा पुंडरिको किरियठाणे य॥2॥
आहारयपरिणामे पच्चक्खाणाणगारगुणकित्ति।
सुद अत्था णालंदे सुद्दयडज्झाणाणि तेवीसं॥3॥

रादिणीयपडिहासी- दीक्षा आदि से जो ज्येष्ठ है उनको तिरस्कृत करके बोलना।

अधिसेज्जासणं- जो दीक्षा आदि से ज्येष्ठ है उनके ऊपर अपनी शय्या आसन लगाना। **कोधी** - जो अपने से ज्येष्ठ है उनके वचनों पर रोष करना। **थेरविवादंतराए य**-जब अपने से ज्येष्ठ बोल रहे हो तो उनके बीच में प्रवेश करके बोलने लग जाना। **उवघादं:**- दूसरे को तिरस्कृत करके बोलना। **अणणुवीची**- आगम भाषा को त्याग करके बोलना। **अधिकरणी**- आगम के विरोध से अपनी बुद्धि के द्वारा तत्त्व का कथन करना। **पिठ्ठिमांसपडिणीगो**- पिष्ठिमांस अर्थात् पीठ पीछे विपरीतता रखना। **असमाहि कलहं**- अन्य के वचन को, ये किसी दूसरे के हैं इस प्रकार से कह करके झगड़ा उत्पन्न करा देना। **झंझा**- थोड़ा सा कलह करके क्रोध करना। **सद्दकरे पढिदा**- सभी की ध्वनि को तिरस्कृत करके ऊँची ध्वनि से बात करना। **एसणा समिदि**- छिपाकर के भोजन करना। **सूरप्पमाण भोजी।(?) गांणगणिगो**- प्रचुर अपराध करने वाले को गण से दूसरे गण में भेज देना। **सरक्खरावादे**- धूलि से युक्त चरणों का जल में प्रवेश करना और जल से युक्त चरणों के साथ धूलि में प्रवेश करना। **अप्पमाणभोजी** -प्रमाण से अधिक भोजन करना। **अकाल सज्झाओ**- अकाल में स्वाध्याय करना। ये सभी असमाधि के स्थान है जो मन, वचन, काय से नहीं करने चाहिए। प्रमाद से कदाचित् किये जाने पर जो दोष हुआ हो उसका मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। **एक्कबीसाए सबलेसु**- एकविंशति (21) सबल क्रियाएँ हैं।

गाथार्थ-पाँच रस, पाँच वर्ण, दो गन्ध और आठ स्पर्श गुण के भेद, विरति जनों की राग सहित क्रिया- ये इक्कीस सबल क्रियाएँ हैं।

विरदि जणरागसहिदा- पहले जिनको छोड़ दिया है ऐसे स्वजनों में स्नेह से युक्त होना। पाँच रस, पाँच वर्ण, दो गंध, आठ स्पर्श के गुणों के भेद से जो बीस गुण हैं पहले जिनको छोड़ दिया है उन्हीं में पुनः स्नेह से समन्वित होना ये इक्कीस सबल क्रियाएँ हैं। इन सबल क्रियाओं को नहीं करना चाहिए। प्रमाद से करने पर जो दोष उत्पन्न हुआ हो उनका मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। **बावीसाए परीसहेसु**- बाईस प्रकार के परिषह हैं उनका व्याख्यान पहले कर दिया गया है। ये परिषह कर्म निर्जरा करने के लिए है इसलिए इनको अवश्य सहन करना चाहिए। इनमें जो दोष उत्पन्न हुआ है उनका मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। **तेवीसाए सुद्दयडज्झाणेसु**- सूत्रकृत यह द्वितीय अंग हैं। इसका अध्ययन 23 प्रकार की विशेषता से है।

गाथार्थ-समय, वेदालिंज, उपसर्ग, स्त्री परिणाम, नरकान्तर, वीर स्तुति, कुशील परिभाषा, वीर्य, धर्म, अग्र, मार्ग, समवसरण, त्रिकालग्रन्थ, आत्मा, तदित्थगाथा, पुंडरीक, क्रियास्थान, आहारक परिणाम, प्रत्याख्यान, अनगार गुण कीर्तन, श्रुत, अर्थ, नालंदा ये तेईस अधिकार सूत्रकृत अध्ययन के हैं।

अर्थ—समए- समय अधिकार अध्ययन का काल प्रतिपादन की मुख्यता से त्रिकालस्वरूप का प्रतिपादन करता है। **वेदालिंझे**- वेदालिगंज अधिकार तीनों वेदों के स्वरूप का प्रतिपादन करता है। **उवसग्गं**- उपसर्ग अधिकार चार प्रकार के उपसर्गों का निरूपण करता है।

समए॥ समयाधिकारोऽध्ययनकालप्रतिपादनद्वारेण त्रिकालस्वरूपं प्रतिपादयति॥ **वेदालिंझे**॥ वेदालिंजाधिकारस्त्रिवेदानां स्वरूपं प्ररूपयति॥ **उवसग्गं**॥ उपसर्गाधिकारश्चतुर्विधोपसर्गं निरूपयति॥ **इत्थिपरिणामे**॥ स्त्रीपरिणामाधिकारः स्त्रीणां स्वभावं वर्णयति॥ **णिरयंतर**॥ नरकान्तराधिकारो नरकादिचतुर्गतीः प्ररूपयति॥ **वीरथुदी**॥ वीरस्तुत्यधिकारश्चतुर्विंशतितीर्थकृतां गुणव्यावर्णनं करोति॥ **कुसीलपरिभासिए**॥ कुशीलपरिभाषाधिकारः कुशीलादिपंचपार्श्वस्थानां स्वरूपवर्णनं करोति॥ **विरिए**॥ वीर्याधिकारो जीवानां तारतम्येन वीर्यं वर्णयति॥ **धम्मो य**॥ धर्माधिकारो धर्माधर्मयोः स्वरूपं वर्णयति॥ **अग्ग**॥ अग्राधिकारः श्रुताग्रपदानि वर्णयति॥ **मग्गे**॥ मार्गाधिकारो मोक्षस्वर्गयोः स्वरूपं कारणं च प्ररूपयति॥ **समोवसरणं**॥ समवसरणाधिकारश्चतुर्विंशतितीर्थकराणां समवसरणानि वर्णयति॥ **तिकालगंथहिदे**॥ त्रिकालग्रंथाधिकारस्त्रिकालगोचराशेषपरिग्रहाशुभत्वं प्ररूपयति॥ **आदा** ॥ आत्माधिकारो जीवस्वरूपं प्ररूपयति॥ **तदित्थगाथा**॥ तदित्थगाथाधिकारो वादमार्गं प्ररूपयति॥ **पुंडरिको**॥ पुंडरीकाधिकारः स्त्रीणां स्वर्गादिस्थानेषु स्वरूपवर्णनं करोति॥ **किरियठाणे य**॥ क्रियास्थानाधिकारस्त्रयोदशक्रियाणां स्थानानि वर्णयति॥ **आहारयपरिणामे**॥ आहारकपरिणामाधिकारः सर्वधान्यानां रसवीर्यविपाकं शरीरगतसप्तधातुस्वरूपं च प्ररूपयति॥ **पच्चक्खाण**॥ प्रत्याख्यानाधिकारः सर्वद्रव्यविषया निवृत्तयो निरूपयति॥ **अणगारगुणकित्ति**॥ अनगारगुणकीर्तनाधिकारो मुनीनां गुणव्यावर्णनं करोति॥ **सुदा**॥ श्रुताधिकारः श्रुतमाहात्म्यं वर्णयति॥ **अत्था**॥ अर्थाधिकारः श्रुतस्य फलं वर्णयति॥ **णालंदे**॥ नालंदाधिकारो ज्योतिषां पटलं वर्णयति॥ **सुद्दयडज्झाणाणि तेवीसं**॥ सूत्रकृताध्ययनान्येतानि त्रयोविंशतिसंख्यानि। द्वितीयांगे श्रुतवर्णनाधिकारा अन्वर्थसंज्ञा एते। एतेषामकालाध्ययनादिप्रभवं दोषं प्रतिक्रमामि॥

चउवीसाए अरहंतेसु॥ चतुर्विंशतितीर्थकरदेवेषु यथाकालं वन्दनादिकं कर्तव्यम्। तदकरणे प्रतिक्रमणम्। **पणवीसाए भावणासु**॥ कर्मक्षयहेतुभूतव्रतपरिपालनार्थं भव्यैर्भाव्यन्त इति-भावनाः-पंचविंशतिः। एकैकस्य हि व्रतस्य परिपालनार्थं पंच पंच भावनाः प्रागेवोक्ताः। अथवा त्रयोदशक्रिया द्वादशतपांसि च पंचविंशतिर्भावना एताः सर्वदा भावयितव्याः तदभावने प्रतिक्रमणम्॥ **छव्वीसाए पुढवीसु**॥

इत्थि परिणामे- स्त्री-परिणाम अधिकार स्त्रियों के स्वभाव का वर्णन करता है। **णिरयंतर**- नरकान्तर अधिकार नरकादि चारों गति की प्ररूपणा करता है। **वीरथुदी**- वीर-स्तुति अधिकार चतुर्विंशति तीर्थंकरों के गुणों का वर्णन करता है। **कुसील परिभासिए**- कुशील-परिभाषा अधिकार कुशील आदि पंच पार्श्वस्थ साधुओं के स्वरूप का वर्णन करता है। **विरिए**- वीर्याधिकार जीवों में तारतम्य रूप से वीर्य का वर्णन करता है। **धम्मो य**- धर्माधिकार धर्म और अधर्म के स्वरूप का वर्णन करता है। **अग्ग**- अग्राधिकार श्रुत के अग्र पदों का वर्णन करता है। **मग्गे**- मार्गाधिकार मोक्ष और स्वर्ग के स्वरूप और उनके कारणों का प्ररूपण करता है। **समोवसरणं**- समवसरण अधिकार चौबीस तीर्थंकरों के समोवशरण का वर्णन करता है। **तिकालगंथहिदे**- त्रिकालग्रंथाधिकार तीन काल गोचर समस्त परिग्रहों के अशुभपने का प्ररूपण करता है। **आदा**-आत्माधिकार जीव के स्वरूप का वर्णन करता है। **तदित्थ गाथा**- तदित्थगाथाधिकार वाद मार्ग का प्ररूपण करता है। **पुंडरिको**- पुंडरीक-अधिकार स्त्रियों के स्वर्ग आदि स्थानों में स्वरूप का वर्णन करता है। **किरियठाणे य**- क्रियास्थानाधिकार तेरह प्रकार की क्रियाओं के स्थानों का वर्णन करता है। **आहारय परिणामे**- आहारक-परिणाम अधिकार सभी धान्यों के रस और वीर्य के विपाक को शरीरगत सात धातुओं के स्वरूप से होने का प्ररूपण करता है। **पच्चक्खाण**- प्रत्याख्यानाधिकार सर्व द्रव्य विषयक निवृत्ति का निरूपण करता है। **अणगारगुणकित्ति**- अनगारगुणकीर्तनाधिकार मुनियों के गुणों का कीर्तन करता है। **सुदा**- श्रुताधिकार श्रुत की महिमा का वर्णन करता है। **अत्था**- अर्थाधिकार श्रुत के फल का वर्णन करता है। **णालंदे** - नालंदाधिकार ज्योतिषियों के पटलों का वर्णन करता है। **सुद्दयडज्झाणाणि तेवीसं**-ये सूत्रकृताध्ययन तेईस संख्या वाले हैं। द्वितीय अंग में श्रुतवर्णन अधिकार हैं जो ये अन्वर्थ संज्ञा वाले हैं। इनका अकाल में अध्ययन आदि से उत्पन्न हुआ दोष है उसका मैं प्रतिक्रमण करता हूँ।

चउवीसाए अरहंतेसु- चौबीस तीर्थंकर देवों में यथाकाल वंदना आदि करना चाहिए। उसके नहीं करने पर मैं उसका प्रतिक्रमण करता हूँ। **पणवीसाए भावणासु**- कर्मक्षय के हेतुभूत व्रतों का परिपालन करने के लिए भव्यों के द्वारा जो भायी जाती है उसका नाम भावना हैं वे पच्चीस हैं। एक-एक व्रत के परिपालन की पाँच-पाँच भावनाएँ पहले कही गई हैं। अथवा तेरह प्रकार की क्रियाएँ और बारह प्रकार के तप ये पच्चीस प्रकार की भावनाएँ जानना चाहिए। इनकी सर्वदा भावना रखनी चाहिए। इनकी भावना नहीं करने पर मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। **छब्बीसाए पुढवीसु**- छब्बीस पृथ्वीयाँ हैं। सौधर्म आदि मोक्ष शिला पर्यंत तक रुचिरा नाम की एक पृथ्वी है। भरत और ऐरावत में अवसर्पिणी काल की शुद्धा नाम की पृथ्वी होती है। भरत और ऐरावत में उत्सर्पिणी काल में वही पृथ्वी खरा पृथ्वी कहलाती हैं। इस तरह से यह एक ही पृथ्वी दो शब्दों के द्वारा कही जाती है। रत्न प्रभा भूमि में, खरभाग में पिण्डरूप से एक-एक सहस्र योजन परिणाम वाली सोलह पृथ्वीयाँ हैं। चित्रा पृथ्वी, वज्र पृथ्वी, वैडूर्य पृथ्वी, लोहितांक पृथ्वी, मसारगंध पृथ्वी, गोमेध पृथ्वी, प्रवाल पृथ्वी, ज्योतिः पृथ्वी , रसांजन पृथ्वी, अजंनमूल पृथ्वी, अंक पृथ्वी, स्फटिक पृथ्वी, चंदन पृथ्वी, वर्चक पृथ्वी, बकुल पृथ्वी, शिलामयपृथ्वी ये उन सोलह पृथ्वीयों के नाम हैं। पंक

सौधर्मादिमोक्षशिलापर्यन्ता रुचिरा नामैका पृथ्वी भरतैरावतयोरवसर्पिण्यां शुद्धा नाम पृथ्वी भवति। उत्सर्पिण्यां तु सैव खरा इत्युच्यते। इत्येका पृथ्व्युभयशब्दवाच्या। रत्नप्रभाभूमौ खरभागे पिण्डतयेकैकयोजनसहस्रपरिमाणाः षोडश पृथिव्यः। चित्रापृथ्वी, वज्रपृथ्वी, वैडूर्यपृथ्वी, लोहितांकपृथ्वी, मसारगंधपृथ्वी, गोमेधपृथ्वी, प्रवालपृथ्वी, ज्योतिःपृथ्वी, रसांजनपृथ्वी, अंजनमूलपृथ्वी, अंकपृथ्वी, स्फटिकपृथ्वी, चंदनपृथ्वी, वर्चकपृथ्वी, बकुलपृथ्वी, शिलामयपृथ्वी, चेति। पंकभागरूपा पिंडतश्चतुरशीतियोजनसहस्रपरिमाणैका पृथ्वी। अब्बहुलभागे पिण्डतोऽशीतियोजनसहस्रपरिमाणा रत्नप्रभा नरकपृथ्वी। आकाशे चाधः षण्नरकपृथिव्य इति षड्विंशतिपृथिव्यः। तदुक्तम्-

रुचिरा सोलसपडला, सत्तसु पुढवीसु होंति पुढवीओ।
अवसप्पिणीए सुद्धा, खरा य उवसप्पिणीए दु॥1॥

तासां मनोवाक्कायैर्विराधना न कर्तव्या। तत्करणे प्रतिक्रमणम्।

सत्तावीसाए अणगारगुणेसु। सप्तविंशतिर्ह्यनगारगुणाः, द्वादश भिक्षुप्रतिमाः, अष्ट प्रवचनमातरः, क्रोधमानमायालोभमोहराग-द्वेषाणामभावाश्च। तदुक्तम्-

पडिमा पवयणमादा कसायमोहो दु रागदोसो य।
बारस अट्ठय चउरो सेसा एक्केक्कणिद्दलिया॥1॥
अणगारगुणा एते सत्तावीसं तु होंति णादव्वा।
वीरजिणिंदुवदेसे णिद्दिट्ठा साहुमग्गा णं॥2॥

एतेऽनगारगुणाः कर्तव्या भावयितव्याः स्मर्तव्याश्च। प्रमादात्तदकरणादौ प्रतिक्रमणम्॥ **अट्ठावीसाए आयारकप्पेसु**॥ अष्टविंशतिमूलगुणा आचारकल्पा आचरणभेदाः। एतेषामतात्पर्यादिकं न कर्तव्यम्। प्रमादात्तत्करणे प्रतिक्रमणम्॥ **एऊणतीसाए पावसुत्तपसंगेसु**॥ एकोनत्रिंशत्पापसूत्रप्रसंगाः। तद्यथा- चित्रकर्मादिसूत्रं, गणितसूत्रं, चाटुकारसूत्रं, वैद्यकसूत्रं, नृत्यसूत्रं, गान्धर्वसूत्रं, पटहसूत्रं, अगदसूत्रं, मद्यसूत्रं, द्यूतसूत्रं, राजनीतिसूत्रं, चतुरंगसूत्रं, गजतुरगपुरुषस्त्रीछत्रगोखड्गदण्डांजनानां लक्षणसूत्राणि॥ 'अंगसरवंजणालक्खणं चे। छिण्णं च भोमसुमणंतरिक्खं।' इत्यष्टांगनिमित्तसूत्राणि।

भाग में पिंड रूप से चौरासी हजार योजन परिमाण वाली एक पृथ्वी हैं। अब्बहुलभाग में पिण्ड रूप से अस्सी हजार योजन परिमाण वाली रत्नप्रभा आदि नाम की नरक पृथ्वी है। आकाश में और नीचे की ओर छह नरक पृथ्वियाँ हैं। इस तरह से ये छब्बीस पृथ्वियाँ होती हैं। कहा भी है-

गाथार्थ— रुचिरा, सोलह पटल, सात पृथ्वीयाँ, अवसर्पिणी में शुद्धा और उत्सर्पिणी में खरा इस तरह ये छब्बीस पृथ्वीयाँ कही गई हैं।

इन पृथ्वियों की मन, वचन, काय से विराधना नहीं करनी चाहिए। अगर की गई है तो उसका मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। **सत्तावीसाए अणगारगुणेसु**- सत्ताईस अनगारों के गुण हैं। उनमें बारह भिक्षु प्रतिमा है, आठ प्रवचन मातृकाएँ हैं, क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह, राग, द्वेष इनका अभाव होना। इस तरह से ये सत्ताईस गुण हैं। कहा भी है-

गाथार्थ— प्रतिमाएँ, प्रवचनमातृकाएँ, कषाय, मोह, राग और द्वेष बारह, आठ, चार और एक-एक क्रमशः जाननी चाहिए। अर्थात् प्रतिमाएँ 12, प्रवचनमातृकाएँ 8, कषाय 4, मोह, राग, द्वेष, एक-एक। इस तरह से सत्ताईस अनगार के गुण जानना चाहिए। वीर जिनेन्द्र भगवान के उपदेश में साधुओं का मार्ग इस प्रकार से कहा गया है। ये अनगारों के गुण की भावना और इनका स्मरण करते रहना चाहिए। प्रमाद से नहीं करने पर उसका मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। **अट्ठावीसाए आयारकप्पेसु**- अट्ठाइस मूलगुण आचार कल्प हैं। ये आचरण के भेद हैं। इनमें अतात्पर्य आदि नहीं करना चाहिए अर्थात् इनमें कोई भाव नहीं है ऐसा नहीं सोचना चाहिए। प्रमाद से इस प्रकार करने पर उसका प्रतिक्रमण करना। **एऊणतीसाए पावसुत्तपसंगेसु**- उन्तीस पाप सूत्रों के प्रसंग हैं जो इस प्रकार से हैं-

चित्रकर्मादि सूत्र, गणित सूत्र, चाटुकार सूत्र, वैद्यकसूत्र, नृत्यसूत्र, गान्धर्व सूत्र, पटह सूत्र, अगदसूत्र, मद्यसूत्र, द्यूतसूत्र, राजनीति सूत्र, चतुरंग सूत्र, गज, तुरग, पुरुष, स्त्री, छत्र, गो, खड्ग, दण्ड और अंजन लक्षण वाले सूत्र। अंग, स्वर, व्यंजन, लक्षण, छिण्ण, भौम, स्वप्न और अंतरिक्ष इस प्रकार से ये आठ निमित्त सूत्र हैं। ये सब मिलाकर के उन्तीस पाप सूत्र होते हैं अथवा-

गाथार्थ— अट्ठारह प्रकार का पुराण, षडंग विद्या और बुद्धि आदि पांच समय इनकी प्ररूपणा जो की जाती है वह भी उन्तीस पापसूत्रों में होती है।

इन उन्तीस पापसूत्रों के प्रसंग में जो दोष हुआ उसका मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। **तीसाए मोहणीयट्ठाणेसु**- तीस मोहनीय के स्थान हैं। जो इस प्रकार हैं। व्रत के विषय में पाँच प्रकार का मोह। पाँच प्रकार के मनुष्यों के विषय में पाँच प्रकार का मोह। पाँच प्रकार के मनुष्यों का कथन करते हैं। 1. भोगभूमि के मनुष्य, 2. विद्याधर मनुष्य और त्रेसठशलाका पुरुष, 3. पन्द्रह कर्मभूमि में उत्पन्न और चतुर्थ काल में उत्पन्न हुए मनुष्य, 4. भरत और ऐरावत में उत्पन्न हुए पंचम काल के मनुष्य और छट्ठे काल के मनुष्य, 5. समुद्र के मध्य में द्वीपों में उत्पन्न कर्ण-

इत्येकोनत्रिंशत्पापसूत्राणि। अथवा–

अट्ठारस य पुराणो सडंगविण्णा य लोइयाणं दु।
बुद्धाइपंचसमया परूवणा जासु दे लोए ॥

एतेषामेकोनत्रिंशत्पापसूत्राणां प्रसंगे यो दोषस्तस्य प्रतिक्रमणम्॥ **तीसाए मोहणीयट्ठाणेसु**॥ त्रिंशन्मोहनीयस्थानेषु। तथाहि-व्रतविषये पंचप्रकारो मोहः। पंचप्रकारमनुष्यविषये पंच मोहाः। पंचप्रकारमनुष्याः भोगभूमिजमनुष्याः, विद्याधरत्रिषष्ठिशलाकापुरुषाः, पंचदशकर्मभूमिजचतुर्थ-कालोत्पन्नमनुष्याः, भरतैरावतेषु दुष्षमातिदुष्षमकालोत्पन्नमनुष्याः, समुद्रमध्यद्वीपोत्पन्नकर्णप्रावरणादि-मनुष्याश्च। जीवाजीवास्रवसंवरनिर्जराबंधमोक्षपुण्यपापानां स्वरूपे नवप्रकारो मोहः।

कर्मबंधस्वरूपे एको मोहः। द्वादशविधतपःस्वरूप एको मोहः। दर्शनस्वरूप एको मोहः। नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवम्भूतानां सप्तनयानां स्वरूपे सप्त मोहाः। व्रतविनाशविषय एको मोहः। अथवा क्षेत्ररत्नरूप्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यभाण्डलक्षणबाह्यग्रंथविषयो दशप्रकारो मोहः। मिथ्यात्ववेदरागादिलक्षणाभ्यन्तरग्रन्थविषय-चतुर्दशप्रकाराः पंचेन्द्रियदुष्टमनोविषयः षट्प्रकारो मोहः। एतानि त्रिंशन्मोहनीयस्थानानि परित्याज्यानि। प्रमादात्कदाचित्तदपरित्यागे प्रतिक्रमणम्॥ **एक्कतीसाए कम्मविवाएसु**॥ एकत्रिंशत्कर्मविपाकेषु[1]। ज्ञानावरणं हि पंचप्रकारम्। दर्शनावरणीयं नवप्रकारम्। वेदनीयं सातासातरूपेण द्विप्रकारम्। मोहनीयं दर्शनमोहनीयचारित्रमोहनीयभेदाद्द्विप्रकारम्। आयुश्चतुर्भेदम् नाम शुभमशुभं च। गोत्रमुच्चैर्नीचैश्च। अंतरायः पंचप्रकारः। एतेषां विविधकर्मविवादानामास्रवो[2-3] न कर्तव्यः। प्रमादात्तत्करणे प्रतिक्रमणम्॥ **बत्तीसाए जिणोवएसेसु॥**

आवासमंगपुव्वा छब्बारस चोद्दसा य ते कमसो।
बत्तीस इमे णियमा जिणोवएसा मुणेयव्वा॥1॥

एतेषु प्रमादादनादरादिर्यो दोषस्तस्य प्रतिक्रमणम्॥ **तेत्तीसाए अच्चासणदाए**॥ त्रयस्त्रिंशत्प्रकारायामत्यासादनतायां यो दोषस्तस्य प्रतिक्रमणम्। कथं त्रयस्त्रिंशत्प्रकारताऽत्यासादनताया इति

1. विवादेषु-इति पाठान्तरम्।
2. कर्मवादानामिति पाठान्तरम्।
3. विपाकानामिति पाठेन भाव्यम्।

प्रावरण (अपने कान को ही ओड़ लेने वाले, बिछा लेने वाले) मनुष्य जिन्हें कुभोग भूमि के मनुष्य कहा जाता है। जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्ष, पुण्य और पाप इन के स्वरूप में मोह होना नौ प्रकार का मोह है।

कर्म बंध के स्वरूप में मोह होना यह एक प्रकार का मोह हैं। बारह प्रकार के तप के समूह में मोह होना यह एक प्रकार का मोह है। दर्शन के स्वरूप में मोह होना यह मोह का एक भेद है। नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरुढ और एवंभूत इन सात नयों के स्वरूप में सात प्रकार का मोह हो जाता है। व्रत के विनाश विषयक मोह यह एक प्रकार का मोह है। इस प्रकार से तीस मोहनीय के स्थानों को जानना चाहिए। अथवा-

क्षेत्र, रत्न, रूप्य, सुवर्ण, धन, धान्य, दासी, दास, कुप्य, भांड लक्षण वाले बाह्य ग्रंथ के विषय में दस प्रकार का मोह है। मिथ्यात्व, वेद, रागादि लक्षण वाले अभ्यंतर परिग्रह के विषय में चौदह प्रकार का मोह। पाँच इन्द्रियों और दुष्ट मन के विषय संबंधी छह प्रकार का मोह। इन तीस मोहनीय के स्थानों को छोड़ देना चाहिए। प्रमाद से कदाचित् उसका त्याग न हुआ हो तो उसका मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। **एक्कतीसाए कम्मविवाएसु**- इकत्तीस कर्मों के विपाक स्थान हैं, जो इस प्रकार हैं- ज्ञानावरण में पाँच प्रकार के, दर्शनावरण में नौ प्रकार के, वेदनीय के साता वेदनीय, असाता वेदनीय के भेद से दो प्रकार के स्थान हैं, मोहनीय के दर्शन मोहनीय, चारित्र मोहनीय के भेद से दो प्रकार के स्थान हैं, आयु के चार भेद हैं, नाम के शुभ और अशुभ के भेद से दो प्रकार हैं, गोत्र उच्च व नीच के भेद से दो प्रकार के हैं, अतंराय के पाँच प्रकार हैं। इन सब अनेक प्रकार के कर्म विपाकों का आस्रव नहीं करना चाहिए। प्रमाद से ऐसा करने पर मैं उसका प्रतिक्रमण करता हूँ। **बत्तीसाए जिणोवएसेसु**- बत्तीस प्रकार का जिनोपदेश हैं।

गाथार्थ— छह आवश्यक, बारह अंग, चौदह पूर्व ये क्रमशः बत्तीस नियम जिनेन्द्र भगवान के उपदेश जानने चाहिए।

इनमें प्रमाद से अनादर आदि जो दोष उत्पन्न हुआ हो उसका मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। **तेत्तीसाए अच्चासणदाए**- तेतीस अत्यासादन के स्थान हैं। तेतीस प्रकार की आसादना में जो दोष हुआ है उसका मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। तेतीस प्रकार की वह अत्यासादना किस प्रकार से होती है? ऐसा पूछने पर उत्तर देते हैं। अर्हत्, सिद्ध, बुद्ध, जिन, केवली, कहा हुआ धर्म, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, नियम, संयम, आचार्य, उपाध्याय, साधू, गण, गणि, तपस्वी, प्रवर्तक, स्थविर, कुलकर, साधर्मिक, पारधर्मिक, श्रमण, श्रमणी, श्रावक, श्राविका, देव, देवी, मानुष, मानुषी, तिर्यंच और तिर्यंचनी इनके भेद से ये तेतीस भेद होते हैं। अथवा-

गाथार्थ— पाँच अस्तिकाय हैं, छह जीवनिकाय हैं, पाँच महाव्रत हैं, अष्ट प्रवचन मातृकाएँ हैं और नव पदार्थ हैं। इन तैतीस की आसादना को अत्यासादना कहा गया है।

चेत्, अर्हत्सिद्धबुद्धजिनकेवलिप्रज्ञप्तधर्मज्ञानादर्शनचारित्रतपोनियम-संयमाचार्योपाध्याय-साधुगणगणित-पस्विप्रवर्तकस्थविरकुलकरसाधर्मिकपारधर्मिकश्रमणश्रमणीश्रावकश्राविकादेवदेवीमानुषमानुषीतिर्यक्-तिरश्चीभेदात्। अथवा-

पंचेव अत्थिकाया छज्जीवणिकाय महव्वया पंच।
पवयणमादु पादत्था तेत्तीसाच्चासणा भणिया॥1॥

एवमर्हदादीनां जीवविशेषाणां विस्तरेणाऽत्यासादनायां प्रतिक्रमणविधिरुक्तः। संक्षेपेण पुनः॥ **जीवाणं अच्चासणदाए। अजीवाणं अच्चासणदाए**। जीवाजीवद्रव्यासादनायां हि सर्वद्रव्याणामत्यासादना लभ्यते। चार्वाकमताश्रयणेन हि जीवानामत्यासादना भवति, ब्रह्माद्यद्वैताद्याश्रयणेन त्वजीवानामिति। तथा ज्ञानस्य मत्यादेरत्यासादनायां, दर्शनस्यौपशमिकादेरत्यासादनायां, चारित्रस्य सामायिकादेरत्या-सादनायां, तपसो बाह्यस्याभ्यन्तरस्य चात्यासादनायां, वीर्यस्य तपश्चरणादिविधाने सामर्थ्यस्यात्यासादनायां यत्किंचित्पूर्वं दुश्चरित्रं मनोवाक्कायैर्दुष्टं चेष्टितं जातं॥ **तं सव्वं गरहामि**॥ तत्सर्वं दुश्चरित्रं गर्हे। परसाक्षिको हि 'हा दुष्टं कृतम्' इत्यादि पश्चात्तापो गर्हा॥ **पच्चुप्पण्णं**॥ साम्प्रतं पुनरुत्पन्नं॥ **पडिक्कमामि**॥ प्रतिक्रमणद्वारेण निराकरोमि॥ **अणागयं पच्चक्खामि**॥ अनागतं भावि दुश्चरित्रं प्रत्याख्यामि निराकरोमि, उत्पत्तुं न ददामि॥ **अगरहियं गरहामि**॥ अविवेकान्मया यदगर्हितं पूर्वं दुश्चरित्रं तदिदानीं हेयोपादेयविवेकसद्भावाद्गर्हे॥ **अणिंदियं णिंदामि**॥ आत्मसाक्षिको हि 'हा दुष्टं कृतम्' इत्याद्यनुशयो **निंदा**। तथा यन्मया पूर्वमविवेकादनिन्दितं दुश्चरित्रं तदिदानीं विवेकसम्पत्तौ निन्दामि॥ **अणालोचियं आलोचेमि**॥ गुर्वादेः कृतदोषनिवेदन**मालोचना**। यत्पूर्वं मयाऽज्ञानान्मदाद्वाऽनालोचितं तदिदानीं तदभावादालोचयामि॥ **आराहणं अब्भुट्ठेमि**॥ रत्नत्रयस्याराधनां तद्विषये निरवद्यां मनोवाक्कायवृत्तिमभ्युत्तिष्ठाम्यनुतिष्ठामि॥ **विराहणं पडिक्कमामि**॥ रत्नत्रयविषये सावद्यां वृत्तिं मनोवाक्कायकृतां प्रतिक्रमामि॥ **एत्थ मे जो को वि**॥ इत्यादि सुगमम्।

इच्छामि भंते॥ इत्यादि॥ **इमं णिग्गंथं**॥ इमं वक्ष्यमाणं मोक्षमार्गं श्रद्दधामीत्यभिसंबंधः। किंविशिष्टम्? **णिग्गंथं**॥ ग्रन्थाद्बाह्याद्भ्यन्तराच्च निष्क्रान्तो निर्ग्रन्थः। तन्निर्ग्रन्थतालक्षणं मोक्षमार्गं मोक्षप्राप्त्युपायभूतं लिंगं॥ **पावयणं**॥ प्रवचन आगमे भवं मोक्षमार्गत्वेन निर्ग्रन्थलिंगमागमे प्रतिपादितमित्यर्थः। **पव्वयणमिति** पाठे प्रव्रजनं दीक्षाग्रहणं निर्ग्रन्थं निर्ग्रन्थलिंगरूपं मोक्षमार्गमिति

इन अर्हत् आदि के जीव विशेषों का विस्तार से अत्यासादना में प्रतिक्रमण की विधि कही गई है जो संक्षेप से यहाँ कही जाती है। **जीवाणं अच्चासणदाए। अजीवाणं अच्चासणदाए**- जीवों की अत्यासादना, अजीवों की अत्यासादना। जीव अजीव द्रव्यों की आसादना ही सर्व-द्रव्यों की आसादना होती है। चार्वाक मत के आश्रय से जीवों की आसादना होती है, ब्रह्म आदि अद्वैत मतों का आश्रय लेने पर अजीवों की आसादना होती है। तथा मति आदि ज्ञान की अत्यासादना, औपशमिक आदि दर्शन की अत्यासादना, सामायिक आदि चारित्र की अत्यासादना, बाह्य और अभ्यतंर तप की अत्यासादना, तपश्चरण आदि के विधान में वीर्य की अर्थात् सामर्थ्य की अत्यासादना होने पर जो कुछ भी किंचित् पूर्व में दुश्चरित्र हुआ है अर्थात् मन, वचन, काय से दुष्ट चेष्टाएँ हुई हैं। **तं सव्वं गरहामि**- उन सबकी मैं गर्हा करता हूँ। पर की साक्षी में- हा दुष्टं कृतम्- अर्थात् मैंने दुष्ट कृत्य किया है, इस प्रकार पश्चात्ताप करना गर्हा हैं। **पडिक्कमामि**- प्रतिक्रमण द्वारा मैं उसका निराकरण करता हूँ। **अणागयं पच्चक्खामि**- अनागत अर्थात् आगामी काल में होने वाले दुश्चरित्र का मैं प्रत्याख्यान करता हूँ, उसका निराकरण करता हूँ। अर्थात् उसे मैं उत्पन्न नहीं होने दूँगा। **अगरहियं गरहामि**- अविवेक से मेरे द्वारा जो अगर्हित है उस दुश्चरित्र का मैंने पूर्व में आचरण किया, अब वर्तमान में हेय-उपादेय का सद्भाव (समीचीन भाव)होने से मैं उसकी गर्हा करता हूँ । **अणिंदियं णिंदामि**- जो अनिंदित है उसकी निंदा करता हूँ। आत्मा की साक्षी में -हा दुष्टं कृतम्- हा, मैंने ये दुष्ट कृत्य किया है, इस प्रकार का अन्तरंग में अनुशय परिणाम होना निंदा है। तथा जो मेरे द्वारा पूर्व में अविवेक से निंदित दुश्चरित्र किया गया वर्तमान में विवेक की प्राप्ति हो जाने पर मैं उसकी निंदा करता हूँ। **अणालोचियं आलोचेमि**- गुरु आदि के समक्ष किये हुए दोषों का निवेदन करना आलोचना है। जो पूर्व में मेरे द्वारा अज्ञान से अथवा मद से जिसकी आलोचना नहीं की गई है अब वर्तमान में उस अज्ञान और मद का अभाव होने से मैं उसकी आलोचना करता हूँ। **आराहणं अब्भुट्ठेमि**- रत्नत्रय की आराधना में मन, वचन, काय की जो निरवद्य अर्थात् निर्दोष वृत्ति, उसको मैं पूर्णतः करता हूँ। **विराहणं पडिक्कमामि**-रत्नत्रय के विषय में जो मन, वचन, काय से की गयी सावद्य वृत्ति अर्थात् सदोष आचरण है उसका प्रतिक्रमण करता हूँ। **एत्थ मे जो को वि**- इत्यादि सुगम है।

इच्छामि भंते- इत्यादि। **इमं णिग्गंथं**- यह जो आगे कहे जाने वाला मोक्ष मार्ग है उसकी मैं श्रद्धा करता हूँ। इस प्रकार का अभिसंबंध करना चाहिए। क्या विशेषता वाला निर्ग्रन्थ है ? **णिग्गंथं**- बाह्य और अभ्यंतर ग्रन्थों से जो रहित हैं वह निर्ग्रंथ हैं। उस निर्ग्रंथता लक्षण वाले मोक्षमार्ग को मोक्ष की प्राप्ति उपायभूत लिंग की मैं श्रद्धा करता हूँ। **पावयणं**- प्रवचन अर्थात् आगम में होने वाला। मोक्ष मार्ग के रूप से जो निर्ग्रंथ लिंग आगम में कहा है वह प्रावचन कहलाता है। **पव्वयणमिति**- पव्वयणं इस प्रकार का पाठ भी प्राप्त होता है। प्रवजन अर्थात् दीक्षा का ग्रहण करना। जो कि निर्ग्रंथ रूप मोक्षमार्ग से ही सम्बंध रखता है। वह निर्ग्रंथ रूप किस प्रकार का है? **अणुत्तरं**- इससे बढ़कर के उत्कृष्ट

सम्बन्धः॥ कथम्भूतमेतत् ? **अणुत्तरं**॥ न विद्यत उत्तरमुत्कृष्टं मोक्षमार्गत्वेनान्यद्यस्मान्निर्ग्रन्थ-लिंगग्रहण-रूपात्प्रव्रजनात्। **केवलियं**॥ केवलिनः सम्बन्धि यन्निर्ग्रन्थलिंगं तत्॥ **पडिपुण्णं**॥ परिपूर्णं, अयोगकेवलिनिर्ग्रन्थलिंगस्य निःशेषकर्मक्षयहेतुत्वेन संपूर्णत्वात्॥ **णेगाइयं**॥ परिपूर्णरत्नत्रयनिकायभवं नैकायिकम्। यत एवैवंविधं तल्लिंगमत एव परिपूर्णम्॥ **सामाइयं**[1]॥ समयनं समय एकत्वं परमोदासीनता सर्वसावद्ययोगव्यावृत्तिर्वा। तत्र भवं तत्प्रयोजनं वा सामायिकं तल्लिंगम्॥ **संसुद्धं**[2]॥ निरतिचारमालोचनादिप्रायश्चित्तविशुद्धम्॥ **सल्लघत्ताणं**[3]॥ शल्यैर्मायामिथ्यात्वादिभिर्घट्टयंते कदर्थ्यंत इति शल्यघट्टाः। तेषां शल्यघट्टानाम्[4]। शल्यघातनं तल्लिंगम् ,तस्मिन्सति सर्वत्र निस्पृहत्वेन निदानादिशल्या-संभवात्॥ **सिद्धिमग्गं**॥ सिद्धेः स्वात्मोपलब्धेर्बुद्धितपोलब्ध्यादिऋद्धि-प्राप्तेर्वा मार्गस्तल्लिंगम्॥ **सेढिमग्गं**॥ श्रेणी हि द्विविधा-उपशमश्रेणी क्षपकश्रेणी च। तस्या उभयरूपाया मार्गआरोहणहेतुर्निर्ग्रन्थ-लिंगम्। **मुत्तिमग्गं**॥ मोचनं मुक्तिः परिग्रहत्यागः। तस्या मार्गः॥ **पमुत्तिमग्गं**॥ प्रकर्षेण मुक्तिः सर्वसंगपरित्यागः परमनिःस्पृहता। तस्या मार्गस्तल्लिंगम्॥ **मोक्खमग्गं**॥ बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मणां विशेषेणापुनरुत्पत्त्या प्रकर्षेण निश्शेषतो मोक्षणं निरसनं मोक्षः सिद्धिस्वरूपस्तस्य[5] मार्गः॥ **पमोक्खमग्गं**॥ प्रकृष्टो मोक्षो यस्मादसौ प्रमोक्षोऽर्हदवस्था। तस्य मार्गः। सिद्धावस्थाया अर्हदवस्थायाश्च प्राप्त्युपायो निर्ग्रन्थलिंगमित्यर्थः। अथवा-मोक्षो देशतः कर्मक्षयोऽर्हदवस्थालक्षणाः, प्रमोक्षः साकल्येन कर्मक्षयः सिद्धावस्थारूपः। तयोर्मार्गः[6]॥ **णिज्जाणमग्गं**॥ यानात्संसारपर्यटनान्निष्क्रान्तं निर्यानं चतुर्गतिपरिभ्रमणाभावः। तस्य मार्गः॥ **णिव्वाणमग्गं**॥ निर्वाणं संसारोपरतिः परमसुखं वा। तस्य मार्गोऽतएव॥ **सव्वदुक्खपरिहाणिमग्गं**॥ सर्वदुःखानां शारीरमानसादीनां परि समंताद् हानिः प्रच्युतिः। तस्या मार्गः॥ **सुचरियपरिणिव्वाणमग्गं**॥ शोभनं विशुद्धं चारित्रं सामायिकादि येषां ते सुचरित्राः। तेषां

---

1. 'सामायियं' इति पाठान्तरम्।
2. 'संसुददं' इति मूलप्रतौ पाठः।
3. 'सल्लघटटाणं' इति पाठान्तरम्।
4. 'शल्यघत्ताणं' इति मूलप्रतौ पाठः।
5. 'सिद्धस्वरूपः' -इति मूलप्रतौ पाठः।
6. 'तपोमार्गः' -इति पाठान्तरम्।

और कुछ नहीं होता है। मोक्षमार्ग के रूप से, इस निर्ग्रंथ लिंग के ग्रहण करने रूप से और दीक्षा से बढ़कर के और कुछ भी नहीं हैं इसलिए यह अनुत्तर है। **केवलियं**- केवली भगवान से संबंध रखने वाला यह निर्ग्रंथ लिंग है। **पडिपुण्णं**- परिपूर्ण है। अयोग केवली निर्ग्रंथ लिंग के द्वारा ही समस्त कर्मों का क्षय होता है इस हेतु से यह सम्पूर्णपने को प्राप्त है। **णेगाइयं**- परिपूर्ण रत्नत्रय के समूह में उत्पन्न होता है इसलिए नैकायिक कहलाता है। चूँकि इस-इस प्रकार का लिंग होता है अतः यह परिपूर्ण है। **सामाइयं**- समयनं समय अर्थात् स्व आत्मा में एकत्व परिणति। परम उदासीनता होना अथवा सर्व सावद्य योगों से दूर होना। इस प्रकार के समय में उत्पन्न होने वाला अथवा उस समय से प्रयोजन रखने वाला यह निर्ग्रंथ लिंग होता है। इसलिए इसे सामायिक कहा जाता है। **संसुद्धं**- निरतिचार अर्थात् यह अतिचार से रहित है । आलोचना आदि प्रायश्चित के द्वारा यह लिंग विशुद्ध रहता है। **सल्लघत्ताणं**- माया, मिथ्यात्व आदि शल्यों के द्वारा जो पीड़ित होते हैं वह शल्यघट्ट कहलाते हैं। उन शल्यघट्टों की शल्य का घातन करने वाला या विनाश करने वाला यह निर्ग्रंथ लिंग है। इन शल्यों से रहित होने पर सर्वत्र निस्पृहपने से यह निर्ग्रंथ लिंग रहता है क्योंकि इसमें निदान आदि शल्य संभव नहीं है। **सिद्धिमग्गं**- स्वआत्मा की उपलब्धि सिद्धि कहलाती है। अथवा बुद्धि लब्धि , तपो लब्धि आदि ऋद्धियों की प्राप्ति का यह मार्ग है इसलिए यह निर्ग्रंथ लिंग सिद्धि का मार्ग कहलाता है। **सेढिमग्गं**- श्रेणी दो प्रकार की है। उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणी। उन दोनों ही प्रकार की श्रेणियों का मार्ग अर्थात् उस पर आरोहण के लिए कारणभूत यह निर्ग्रंथ लिंग है। **मुत्तिमग्गं**- छोड़ना या परिग्रह का त्याग करना मुक्ति है। उसका मार्ग यह निर्ग्रंथ लिंग है। **पमुत्तिमग्गं**- समस्त प्रकार के परिग्रह के परित्याग और परम निस्पृहता होना प्रमुक्ति है उस प्रमुक्ति का मार्ग यह निर्ग्रंथ लिंग है। **मोक्खमग्गं**- बंध के हेतुओं का अभाव होना और निर्जरा के द्वारा समस्त कर्मों का विशेष रूप से पुनः उत्पत्ति नहीं होना या संपूर्ण रूप से कर्मों से छूट जाना मोक्ष है। जो सिद्धि स्वरूप है । उस मोक्ष का मार्ग निर्ग्रंथ-लिंग है। **पमोक्खमग्गं**- प्रकृष्ट मोक्ष जिससे होता है वह प्रमोक्ष अरहंत अवस्था है उसका मार्ग यह लिंग है। सिद्ध अवस्था और अरहंत अवस्था की प्राप्ति का उपाय यह निर्ग्रंथ लिंग है। अथवा-मोक्ष एकदेश कर्म क्षय रूप अर्हत् अवस्था लक्षण वाला है। और प्रमोक्ष अर्थात् सम्पूर्णतया कर्मों का क्षय हो जाना सिद्ध अवस्था रूप मोक्ष है। उन दोनों का यह मार्ग निर्ग्रंथ लिंग है। **णिज्जाणमग्गं**- यान अर्थात् संसार में परिभ्रमण होना। निर्यान अर्थात् चारों गति के परिभ्रमण का अभाव हो जाना। इस निर्यान का मार्ग यह निर्ग्रंथ लिंग है। **णिव्वाणमग्गं**- संसार का रुक जाना निर्वाण है। अथवा परम सुख की प्राप्ति होना निर्वाण है। इस निर्वाण का मार्ग यह लिंग है इसलिए निर्ग्रंथ लिंग को निर्वाण मार्ग कहा जाता है। **सव्वदुःखपरिहाणिमग्गं**-शारीरिक, मानसिक आदि दुःखों की चारों ओर से हानि हो जाना सर्व दुःख परिहाणि है। उसका मार्ग यह निर्ग्रंथ लिंग है। **सुचरिय परिणिव्वाणमग्गं**- शोभनीय, विशुद्ध चारित्र सामायिक आदि हैं, जिनके यह चारित्र होता है वह सुचरित्र कहलाते हैं उनके लिए यह परिनिर्वाण का मार्ग है। उसी भव में अथवा दूसरे आदि भव में यह निर्ग्रंथ

परिनिर्वाणमार्गः। तद्भवे द्वितीयादिभवे वा मोक्षप्रापकं निर्ग्रन्थलिंगं॥ **अवितहं**॥ तल्लिंगमवितथं मोक्षार्थिनां मोक्षप्रापणे विसंवादकत्वरहितम्॥ **अविसंति**॥ तदित्थम्भूतं निर्ग्रन्थलिंगं मोक्षार्थिन आविशंति समाश्रयन्ति। स्वीकुर्वन्तीत्यर्थः। 'गुरुया य होंति लहुया' इति लक्षणेनाऽऽकारस्याऽकारादेशः॥ **अविसंधी**-ति पाठे न विद्यते विसंधिर्विरोधो मोक्षेण सहास्येत्यर्थः। **पवयणं**॥ प्रकृष्टं सर्वज्ञप्रणीतत्वेनाबाधितं वचनं प्रतिपादकं यस्य तत्प्रवचनं तल्लिंगम्॥ **उत्तमं**॥ उत्तमस्य मोक्षलक्षणार्थस्य [1]संसाधकत्वादुत्तमम्॥ **तं सद्दहामि**॥ तत्पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टं निर्ग्रन्थलिंगं श्रद्दधामि। तत्र विपरीताभिनिवेशरहितो भवामि॥ **तं पत्तियामि**॥ मोक्षहेतुत्वेन यथावत्प्रतिपद्ये॥ **तं रोचेमि**॥ मोक्षकारणतया तत्रैव रुचिं करोमि॥ **तं फासेमि**॥ मोक्षार्थित्वात्तदेव तत्साधनतया स्पृशामि॥ **अवगाहियामि**[2]॥(?) **इदो उत्तरं** इत्यादि। इतोऽस्मान्निर्ग्रथ-लिंगादुत्तरमुत्कृष्टं॥ **अण्णं**॥ अन्यन्मोक्षसाधकं लिंगं वर्तमानकाले तावत्॥ **णत्थि**॥ नास्ति॥ अतीतकाले **ण भूदं**॥ न भूतं न संजातम्। भविष्यत्काले च **ण भविस्सदि**॥ न भविष्यति। केन कृत्वा कालत्रयेऽप्युत्कृष्ट-मितस्तन्न[3] भवति? **णाणेण वा दंसणेण वा चरित्तेण वा**॥ ज्ञानदर्शनचारित्राण्युत्कृष्टान्यत्रैव लिंगे सम्भवन्ति। अतस्तैः कृत्वान्यलिंगमुत्कृष्टं न सम्भवति॥ **सुत्तेण वा**॥ उत्कृष्टागमप्रतिपादितत्वेना ऽपि तदुत्कृष्टं[4] उत्कृष्टेन सर्वज्ञप्रणीतागमेन निर्ग्रन्थलिंगस्यैव मोक्षहेतुतया प्रतिपादितत्वादन्यागमानां चागमाभासतयाऽनुत्कृष्टत्वात्। यत एवं ततः॥ **इदो जीवा सिज्झंति**॥ इतो निर्ग्रन्थलिंगाज्जीवा मुक्त्यर्थिनः सिध्यन्ति स्वात्मोपलम्भं लब्ध्वा ऋद्धीश्च लभंते॥ **बुज्झंति**॥ जीवादितत्त्वानां यथावत्तत्स्वरूपमशेषविशेषतो बुध्यंते, तल्लिंगे सत्येव बुद्ध्यादिलब्धीनां संभवात्॥ **मुंचंति**[5]॥ सकलकर्मविमुक्ता भवंति॥ **परिणिव्वायंति**॥ सुखिनः कृतकृत्या वा भवंति॥ **सव्वदुक्खाणमंतं करेंति**॥ शारीरमानसाद्यखिल-दुःखानामंतं विनाशं कुर्वंति॥ **परिवियाणंति**॥ सर्वदुःखानामंतं पर्यन्तं परि समंततो विशेषेण जानंति। तथा एतस्मिन्निर्ग्रन्थलिंगे संति॥ **समणोमि**॥ श्रमणोऽस्मि मुनिर्भवामि॥ **संजदोमि**॥ प्राणींद्रियसंयमपरो भवामि॥ **उवरदोमि**॥ उपरतो विषयव्यावृत्तो भवामि॥ **उवसंतोमि**॥ क्वचिदपि रागद्वेषाभावादुपशांतो भवामि॥

---

1. 'संसारकत्वाद्' इति मूलप्रतौ पाठः।
2. 'अवगाहयामि' इति झा-पुस्तके पाठः।
3. 'त्वं न संभवति' इति झा-पुस्तके पाठः।
4. 'न तदुत्कृष्टं' इत्यपि पाठः।
5. 'मुच्चंति' इति झा-प्रतौ पाठः।

लिंग मोक्ष को प्राप्त करा देता है इसलिए यह सुचरित्र परिनिर्वाणमार्ग कहा जाता है। **अवितहं**- यह निर्ग्रंथ लिंग सत्य है। मोक्षार्थियों को मोक्ष की प्राप्ति कराने में विसंवाद से रहित है। **अविसंति**- इस प्रकार के निर्ग्रंथ लिंग का मोक्षार्थी अवश्य आश्रय लेते हैं, इसमें प्रवेश करते हैं अर्थात् इसको स्वीकार करते हैं। 'गुरुया य होंति लहुया' गुरु से जो लघु हो जाता है-इस लक्षण के द्वारा आकार का अकार आदेश हुआ है इसलिए आविंसति की जगह पर अविसंति पाठ बना है। अथवा अविसंधी- इस प्रकार का पाठ भी स्वीकार किया जाता है। जिसमें किसी भी प्रकार की विसंधि अर्थात् विरोध नहीं होता है उसको अविसंधि कहते हैं। मोक्ष के साथ इस निर्ग्रंथ लिंग का कोई विरोध नहीं है, यह तात्पर्य है। **पवयणं**- यह निर्ग्रंथ लिंग प्रकृष्ट अर्थात् सर्वज्ञ भगवान द्वारा प्रणीत अबाधित वचनों का प्रतिपादक है। जिनके इस प्रकार के वचन है उनके प्रवचन ही निर्ग्रंथ लिंग कहलाते हैं। **उत्तमं**- मोक्ष लक्षण रूप उत्तम है। उसको साधने से यह निर्ग्रंथ लिंग उत्तम है। **तं सद्दहामि**- इस पूर्वोक्त विशेषणों से विशिष्ट निर्ग्रंथ लिंग की मैं श्रद्धा करता हूँ। और उससे विपरीत अभिनिवेश से रहित मैं होता हूँ। **तं पत्तियामि**- मोक्ष के हेतुरूप से यथावत् इसको मैं प्राप्त करता हूँ। **तं रोचेमि**-मोक्ष का कारण होने से उसी में रुचि रखता हूँ। **तं फासेमि**-मोक्ष का इच्छुक होने से उस निर्ग्रंथ लिंग को ही उसके साधन रूप से उसका स्पर्श करता हूँ। **अवगाहियामि**- ? अर्थात् मैं उसमें अवगाहन करता हूँ। इस निर्ग्रंथ लिंग से बढ़कर के **अण्णं**- अन्य कोई और मोक्ष का साधक लिंग वर्तमान काल में नहीं हैं। और **ण भूदं**- अतीत काल में न हुआ है और **ण भविस्सदि**- भविष्य काल में भी नहीं होगा। किस कारण से यह लिंग तीनों कालों में उत्कृष्टता को प्राप्त है? **णाणेण वा दंसणेण वा चरित्तेण वा**- ज्ञान, दर्शन, चारित्रों की उत्कृष्टता इस लिंग में ही संभव है। इसीलिए इन्हीं ज्ञान, दर्शन, चारित्र के कारण अन्य लिंग उत्कृष्टपने को प्राप्त नहीं होते। **सुत्तेण वा**- उत्कृष्ट आगम में प्रतिपादित होने से भी यह उत्कृष्ट कहलाता है। अथवा सर्वज्ञ प्रणीत आगम उत्कृष्ट है उसके द्वारा ही निर्ग्रंथ लिंग को मोक्ष के कारण रूप से प्रतिपादित किया जाता है। अन्य आगम तो आगमाभास है क्योंकि उनका उत्कृष्टपना संभव नहीं है। इसलिए भी यह सूत्र से उत्कृष्टपने को प्राप्त है। **इदो जीवा सिज्झंति**- इस निर्ग्रंथ लिंग से ही मुक्ति की इच्छा करने वाले जीव स्वात्मा की उपलब्धि को प्राप्त करके सिद्धि को प्राप्त होते हैं और ऋद्धियों को भी प्राप्त कर लेते हैं। **बुज्झंति**- जीवादि तत्त्वों को यथावत् स्वरूप पूर्णरूप से पूर्ण विशेषताओं के द्वारा जानते हैं अर्थात् इस लिंग के होने पर ही बुद्धि आदि लब्धियों की प्राप्ति होती हैं। **मुंचंति**-समस्त कर्मों से रहित इस निर्ग्रंथ लिंग से ही होते हैं। **परिणिव्वायंति**-इसी निर्ग्रंथ लिंग से जीव सुखी अथवा कृतकृत्य हो जाता है। **सव्वदुक्खाणमंतं करेंति**- शारीरिक, मानसिक आदि समस्त दु:खों का अंत और विनाश को प्राप्त कर लेते हैं। **परिवियाणंति**- समस्त दु:खों के अंत पर्यन्त को विशेष रूप से जान लेते हैं। इस प्रकार इस निर्ग्रंथ लिंग के होने पर। **समणोमि**- मैं श्रमण होता हूँ। अर्थात् मुनि होता हूँ। **संजदोमि**- प्राणि संयम और इन्द्रिय संयम में तत्पर होता हूँ। **उवरदोमि**- विषयों से व्यावृत्त होता हूँ। अर्थात् विषयों से दूर होता हूँ। **उवसंतोमि**- क्वचित् भी

उवहीत्यादि॥ उपधिः परिग्रहः **नियडि** निकृतिर्वंचना, **माणो** गर्वः, **माया** कौटिल्यं, **मोस** असत्यम्। मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्राणि तु सुप्रसिद्धानि॥ **पडिविरदोमि**॥ एतानि प्रति विरतोऽस्मि व्यावृत्तो भवामि, तत्र रुचिं न करोमि। सम्यग्ज्ञानसम्यग्दर्शनसम्यक्चारित्रं च॥ **रोचेमि**॥ श्रद्दधे॥ **जं जिणवरेहिं पण्णत्तं**॥ यत्सम्यग्ज्ञानादि जिनवरैरागमे प्रज्ञप्तं प्रतिपादितं तद्रोचे, नान्यत्॥ **एत्थ मे जो को वि**[1]– इत्यादि सुगमम्॥

पडिक्कमामि भंते इत्यादि॥ सर्वस्य दैवसिकस्य रात्रिकस्य चातिचारस्य॥ **सव्वकालियाए**॥ सर्वकालिक्या विशुद्धेर्निमित्तं प्रतिक्रमामि। कस्य सम्बन्धिन्यास्तद्विशुद्धेरित्याह॥ **इरियासमिदीए** इत्यादि। ईर्यासमितेर्भाषासमितेरेषणासमितेरादाननिक्षेपणसमितेरुच्चारप्रस्रवणक्ष्वेलशिंघाणक[2] विकृतिप्रतिष्ठापनिकायाश्च। ईर्यासमित्यादीनां च स्वरूपं प्रागेव व्याख्यातम्। तथा मनोगुप्तेर्वचनगुप्तेः कायगुप्तेश्च संबंधिन्याः सर्वकालिक्याः विशुद्धेर्निमित्तं प्रतिक्रमामि। मनोगुप्त्यादीनामपि स्वरूपं प्रागेव प्ररूपितम्॥ **पाणादिवादादो वेरमणाए**॥ प्राणातिपाताद्विरमणाश्रितायाः, विशुद्धेर्निमित्तं प्रतिक्रमामि। एवं मृषावादाद्विरमणाश्रितायाः, अदत्तादानाद्विरमणा-श्रितायाः, मैथुनाद्विरमणाश्रितायाः, परिग्रहाद्विरमणाश्रितायाः, रात्रिभोजनाद्विरमणाश्रितायाश्च विशुद्धेर्निमित्तं प्रतिक्रमामि। प्राणातिपातादीनां च स्वरूपं पूर्वमेव व्याख्यातम्॥ **सव्वविराहणाए**॥ सर्वेषामेकेन्द्रियादिजीवानां विराधनायां पीडायां कृतायां या विशुद्धिस्तस्या निमित्तं प्रतिक्रमामि॥ **सव्वधम्मअइक्कमणदाए**॥ सर्वे धर्मा यथाकालमावश्यककरणादयः। तेषामतिक्रमणतायां कृतायां या विशुद्धिस्तस्या निमित्तं प्रतिक्रमामि॥ **सव्वमिच्छाचरियाए**[3]॥ सर्वे च ते मिथ्याचाराश्चाऽज्ञानवशवर्तीनि मिथ्याचरणानि तेषु सत्सु समुत्पन्नदोषाणां या विशुद्धिस्तस्या निमित्तं प्रतिक्रमामि॥ **एत्थ मे जो को वि**[4]॥ इत्यादि सुगमम्।

इच्छामि भंते इत्यादि। कायस्योत्सर्जनमुत्सर्गः परित्यागः कायविषय उदासीनतो तं करोमीति। इच्छामि भगवन्॥ **जो मे** यः कश्चिन्मे दोषः संजातो दैवसिको रात्रिकोऽतिचारोऽनाचार आभोगोऽनाभोगो वा प्राग्व्याख्यातस्वरूपः। तथा कायिको वाचिको मानसिको वा। कायिको दोषो दुश्चरित्रलक्षण; वाचिको

---

1. 'कोई' -इति मूलप्रतौ पाठः।
2. खेलसिंधणक -इति मूलप्रतौ पाठः।
3. 'चरिए' इति झा-प्रतौ पाठः।
4. 'कोई' -मूलप्रतौ पाठः।

रागद्वेष आदि भावों के अभाव से उपशान्त होता हूँ। **उवहि**- इत्यादि। उपधि परिग्रह है। **नियडि**- निकृति अर्थात् वंचना। **माणो**- गर्व। **माया**- कुटिलता। **मोस**- असत्य। मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र तो सुप्रसिद्ध हैं। **पडिविरदोमि**- इन सबके प्रति मैं विरत होता हूँ अर्थात् इनसे दूर होता हूँ। इसमें कोई रुचि नहीं करता हूँ। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र की। **रोचेमि**- रुचि करता हूँ अर्थात् इनकी श्रद्धा करता हूँ। **जं जिणवरेहिं पण्णत्तं**- जो सम्यग्ज्ञानादि जिनेन्द्र भगवान के द्वारा आगम में प्रतिपादित हैं उसकी मैं रुचि करता हूँ। अन्य किसी की नहीं। **एत्थ में जो को वि**- इत्यादि। सुगम हैं।

पडिक्कमामि भंते- इत्यादि समस्त दैवसिक और रात्रिक अतिचार की। **सव्वकालियाए**- सर्वकाल की विशुद्धि के निमित्त मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। किस संबंधि वह विशुद्धि है? इस प्रकार पूछने पर कहते हैं। **इरियासमिदीए इत्यादि**- ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान-निक्षेपण समिति, विष्ठा,मूत्रोत्सर्ग, थूक, सिंघाणक (नाक का मैल) और विकृति (विकारों) सम्बन्धी विशुद्धि है। ईर्या समिति आदि का स्वरूप पहले ही कहा जा चुका हैं। तथा मन गुप्ति, वचन गुप्ति, काय गुप्ति संबंधि सर्वकालिक विशुद्धि के निमित्त मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। मन गुप्ति आदि का स्वरूप भी पहले कह दिया गया है। **पाणादिवादादो वेरमणाए**- प्राणातिपात से विरमण के आश्रित विशुद्धि के निमित्त मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। इसी प्रकार से मृषावाद के विरमण के आश्रित विशुद्धि के निमित्त, अदत्तादान से विरमण के आश्रित विशुद्धि के निमित्त, मैथुन से विरमण के आश्रित विशुद्धि के निमित्त, परिग्रह से विरमण के आश्रित विशुद्धि के निमित्त, रात्रि भोजन से विरमण के आश्रित विशुद्धि के निमित्त, मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। प्राणातिपात आदि का स्वरूप पहले भी कहा गया है। **सव्व विराहणाए**- सभी एकेन्द्रिय आदि जीवों की विराधना हुई, पीड़ित किया गया उसकी विशुद्धि के निमित्त मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। **सव्वधम्मअइक्कमणदाए**- यथासमय पर आवश्यक, करण आदि सभी धर्म हैं। उनके अतिक्रमण करने पर उसकी विशुद्धि के निमित्त मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। **सव्वमिच्छाचरियाए**- समस्त जो मिथ्या आचार आदि हैं। अज्ञान के वश किये हुए मिथ्या आचरण आदि उन सबके द्वारा उत्पन्न हुए जो दोष हैं उनकी विशुद्धि के निमित्त मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। **एत्थ मे जो को वि**- इत्यादि। यह वाक्य सुगम हैं।

इच्छामि भंते इत्यादि- काय का उत्सर्ग करना अर्थात् परित्याग करना, काय के विषय में उदासीनता धारण करना यह कायोत्सर्ग है। उस कायोत्सर्ग को मैं करता हूँ। इच्छामि भगवन् ! अर्थात् हे भगवन् ! मैं ऐसा चाहता हूँ। **जो मे**- जो कोई भी मुझे दोष उत्पन्न हुआ है दैवसिक या रात्रिक अतिचार या अनाचार, आभोग या अनाभोग उत्पन्न हुआ है जिसकी पहले व्याख्या की जा चुकी है। तथा कायिक, वाचिक, अथवा मानसिक। कायिक दोष दुश्चरित्र लक्षण वाला, वाचिक दोष दुर्वचन रूप और मानसिक दोष दुश्चिंता और दुष्परिणाम स्वभाव वाला हैं। किस विषय में इस प्रकार का दोष उत्पन्न होता है? ज्ञान के विषय में, दर्शन के विषय में, चारित्र के विषय में, सूत्र में व सामायिक के विषय में। अर्थ की सूचना देने से सूत्र को आगम कहा जाता है। तथा पाँच प्रकार के महाव्रत, पाँच प्रकार की समिति, तीन प्रकार की गुप्तियाँ, छह प्रकार

दुर्भाषितस्वरूपः, मानसिकस्तु दुश्चिंततिदुष्पारिणामिकस्वभावः। कस्मिन्विषयेऽयमेविवंधो दोषः ? ज्ञाने, दर्शने, चारित्रे, सूत्रे, सामायिके वा। अर्थस्य सूचनात्सूत्रमागमः। तथा पंचानां महाव्रतानां, पंचानां समितीनां, तिसृणां गुप्तीनां, षण्णां जीवनिकायानां च विराधनायां यः कश्चिन्मे दोषः प्रत्येकं जातस्तस्याष्टप्रकारस्य कर्मणश्च तद्विराधनानिमित्तस्य॥ **णिग्घादणाए**॥ निर्घातननिमित्तं कायोत्सर्गं करोमि। इति सम्बन्धः॥ **अण्णहा**॥ अन्यथाऽन्येनापि प्रकारेण यः कश्चिद्वोषो जातस्तस्य निर्घातनार्थ कायोत्सर्गं करोमि। तमेवान्यप्रकारं प्रदर्शयन्नाह॥ **उस्सासिदेण वा**॥ उच्छ्वासितेन वा॥ **णिस्सासिदेण वा**॥ निर्मिषितेन लोचनपिधानेन॥ **खासिदेण वा**॥ खात्कृतेन॥ **छिंकिदेण वा**॥ छीत्कृतेन॥ **जंबाइदेण वा**॥ जृंभायितेन॥ **सुहुमेहिं अंगचलाचलेहिं**॥ सूक्ष्मैरन्यजनासंविदितैः शरीरचलनाचलनैः॥ **दिट्ठिचलाचलेहिं**॥ सूक्ष्मैर्लोचनस्पंदनास्पंदनैः॥ **एदेहिं सव्वेहिं**॥ एतैः प्रागुक्तैः सर्वैः॥ **आयारेहिं**॥ आचारैर्व्यापारैर्यः कश्चिद्वोषो जातः। किंविशिष्टैः ? **असमाहिं पत्तेहिं**॥ धर्म्यं शुक्लं च ध्यानं समाधिः। तद्विपर्ययोऽसमाधिः। तं प्राप्तैः। आर्तरौद्रध्यानोपेतैरित्यर्थः। तस्य दोषस्य निर्घातनार्थं॥ **जावअरिहंताणं**॥ यावत्कालमर्हतां देशतः साकल्यतश्च कर्मारातिघातिनां पंचपरमेष्ठिनां॥ **भयवंताणं**॥ सातिशयज्ञानवतां पूज्यानां वा॥ **पज्जुवासं करेमि**॥ एकाग्रेण हि विशुद्धेन मनसा दैवसिकप्रतिक्रमणायामष्टोत्तरशतोच्छ्वासैः षड्त्रिंशद् वारान् पंचनमस्कारोच्चारणमर्हतां पर्युपासनकरणं, रात्रिप्रतिक्रमणायां चतुःपंचाशदुच्छ्वासैरष्टादशवारांस्त-दुच्चारणं तत्। गोचरितादिप्रतिक्रमणायां तु सप्तविंशत्युच्छ्वासैर्नववारांस्तदुच्चारणं तदिति तावत्कालं॥ **कायं वोसरामि**॥ (कायं) व्युत्सृजामि त्यजामि। तत्रोदासीनो भवामीत्यर्थः। कथम्भूतं कायम्? **पावकम्मं**॥ पापं कर्म यस्मात्, पापाय वा कर्म व्यापारो यस्य॥ **दुच्चरियं**॥ दुष्टं दुर्गतिप्रापकं चरितं चेष्टितं यस्य।

यः सर्वाणीत्यादि॥ यो वीरो भगवान् जानीते तस्मै नमः। किं जानीते? **सर्वाणि द्रव्याणि**॥ कथम्भूतानि? **चराचराणि**॥ चराणि सक्रियाणि जीवपुद्गलद्रव्याणि। अचराणि निष्क्रियाणि धर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि। कथं तान्यसौ जानीते? **विधिवद्** यथावत्। न केवलं तान्येवासौ जानीते, अपि तु तेषां **गुणान्पर्यायानपि**। तेषां सर्वद्रव्याणां ये सम्बन्धिनो गुणाः सहभुवो धर्माः, ये च पर्यायाः क्रमभुवो

के जीव निकायों का समूह इनकी विराधना की जाने पर जो कोई मुझे दोष उत्पन्न हुआ है उस प्रत्येक की और अष्ट प्रकार के कर्म विराधना के निमित्तों की। **णिग्घादणाए**- निर्घातन निमित्त अर्थात् उनके नाश के निमित्त मैं कायोत्सर्ग करता हूँ। इति संबंधः यह सम्बंध करना है। **अण्णहा**- अन्यथा, अन्य प्रकार से भी जो कोई दोष उत्पन्न हुआ है उसका निर्घात अर्थात् विनाश करने के लिए मैं कायोत्सर्ग करता हूँ। उसी अन्य प्रकार को दिखाने के लिए कहते हैं। **उस्सासिदेण वा**- उच्छ्वास से। **णिस्सासिदेण वा**- निमिषता से अर्थात् आँखे बंद कर लेने से। **खासिदेण वा**- खाँसी करने से। **छिंकिदेण वा**- छींक के द्वारा। **जंबाइदेण वा**- जंबाई लेने से। **सुहुमेहिं अंगचलाचलेहिं**- सूक्ष्म जो कि अन्य जनों द्वारा जानने में न आये ऐसे शरीर की चलन-अचलन क्रियाओं के द्वारा। **दिट्ठिचलाचलेहिं**- सूक्ष्म लोचनों के स्पंदन और अस्पंदन के द्वारा। **एदेहिं सव्वेहिं**- इन सबके द्वारा जो पहले कहा गया है। **आयारेहिं**- आचरण। व्यापार के द्वारा जो कुछ भी दोष उत्पन्न हुआ है। क्या विशेषता वाले आचरण के द्वारा? **असमाहिं पत्तेहिं**- धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान समाधि है। उसके विपरीत असमाधि है। उसकी प्राप्ति के द्वारा अर्थात् आर्त्त और रौद्र ध्यान के युक्त होने से जो दोष उत्पन्न हुआ है उसका निर्घातन करने के लिए मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। **जाव अरिहंताणं**- जितने काल पर्यंत अरिहंतों का-जो एक देश रूप से अर्थात् पूर्ण रूप से कर्म रूपी शत्रुओं का घात करने वाले है ऐसे उन सब पंचपरमेष्ठियों का, **विशेषार्थः**- यहाँ पर अरिहंत शब्द से पंच परमेष्ठियों का ग्रहण किया है जो पूर्ण रूप से कर्म रूपी शत्रुओं का घात कर चुके हैं ऐसे अरिहंत परमेष्ठि और ऐसे सिद्ध परमेष्ठि। किंतु जिन्होंने एक देश रूप कर्म का घात किया है ऐसे आचार्य, उपाध्याय,साधु परमेष्ठि भी यहाँ पर अरिहंत के रूप में कहे गये हैं। अर्थात् यहाँ पर अरिहंत कहने से पाँचों ही परमेष्ठियों की उपासना का विधान किया गया है। **भयवंताणं**- जो अतिशय ज्ञानवान अथवा पूज्य है वे भगवंत कहलाते हैं। **पज्जुवासं करेमि**- एकाग्रता से विशुद्ध मन के द्वारा दैवसिक प्रतिक्रमण में 108 उच्छ्वास (श्वासोच्छ्वास) के द्वारा, 36 बार पंचनमस्कार मंत्र के उच्चारण को, अरिहंतों की परिउपासना करना । रात्रि प्रतिक्रमण में 54 उच्छवासों के द्वारा 18 बार पंचनमस्कार मंत्र का उच्चारण करने में अरिहंतों की परिउपासना करण हैं । गोचरित आदि प्रतिक्रमण में तो 27 उच्छवासों के द्वारा 9 बार णमोकार मंत्र के उच्चारण से अरिहंतों की परिउपासना की जाती है, उतने काल तक। **कायं वोसरामि**- मैं अपनी काया को छोड़ता हूँ। अर्थात् उसमें उदासीन भाव को धारण करता हूँ। वह काय कैसी है? **पावकम्मं** - पाप कर्म जिससे होता है अथवा जो पाप के लिए कर्म या व्यापार करती है ऐसी वह काय पाप कर्म कहलाती हैं। उसका **दुच्चरियं**- जो दुष्ट या दुर्गति को प्राप्त कराने वाला चारित्र या चेष्टा है जिसकी।

यः सर्वाणीत्यादि- जो वीर भगवान जानते हैं उनके लिए नमस्कार हो। क्या जानते हैं? **सर्वाणि द्रव्याणि**- समस्त द्रव्यों को जानते हैं। कैसे हैं वे द्रव्य? **चराचराणि**- चर अर्थात् सक्रिय, जीव और पुद्गल द्रव्य चरद्रव्य कहलाते हैं। अचर अर्थात् निष्क्रिय हैं(अचर हैं) । धर्म, अधर्म, आकाश, और काल द्रव्य अचरद्रव्य कहलाते हैं। इन दोनों ही प्रकार के द्रव्यों को जो जानते हैं। कैसे उन द्रव्यों को जानते हैं? **विधिवद्**- यथावत् जानते हैं। न केवल उन द्रव्यों को ही जानते है **गुणान्पर्यायानपि**- किंतु उनकी गुण और पर्यायों को भी जानते हैं। उन

विवर्तास्तानपि **सर्वान् सर्वथा** अशेषविशेषतो जानीते। कथम्भूतान्? **भूतभाविभवतः** अतीतानागतवर्तमानान्। किं कदाचिदवासौ तांस्तथा जानीते? **सदा** सर्वकालं। ननु कालादिक्रमेणासौ तांस्तथा ज्ञास्यतीत्याह-**युगपत्**। एकहेलयैव, न पुनर्देशकालस्वभावक्रमेण, करणक्रमव्यवधानातिवर्तिज्ञान-स्वभावत्वात्तस्य। तर्हि कस्मिंश्चिदेव क्षणे तांस्तथा ज्ञास्यति, पश्चातक्रमेणेत्याह- **प्रतिक्षणं** क्षणं क्षणं प्रति तांस्तथा जानीते, न पुनः कस्मिंश्चिदेव क्षणे। यत एवंविधो भगवान्, अतः सर्वज्ञ इत्युच्यते। सर्वं हि वस्तु युगपद्यथावज्जानातीति सर्वज्ञस्तस्मै सर्वज्ञाय। **जिनेश्वराय** देशजिनस्वामिने। **महते** गुणोत्कृष्टाय । **वीराय** अन्तिमतीर्थकराय। **नमः**।

तदेव तन्महत्त्वं सप्तविभक्तिनिर्देशेन गुणस्तवनद्वारेण प्रदर्शयति-**वीरः सर्वसुरासुरेन्द्रमहितः**। सर्वे च ते सुरासुरेन्द्राश्च वैमानिकभवनवास्यादीन्द्रास्तैर्महितः पूजितः। **वीरं बुधाः संश्रिताः**। बुधा गणधरादयो वीरं संश्रिताः संसारसमुद्रोत्तरणार्थं समाश्रिताः। **वीरेणाभिहतो**। विनाशितः। कोऽसौ ? **स्वकर्मनिचयः**। स्वस्य स्वकीयानां वा भव्यानां कर्मनिचयो ज्ञानावरणादिकर्मसंघातः। इत्थम्भूताय **वीराय भक्त्या नमः**। **वीरात्तीर्थमिदं प्रवृतं**- तीर्यते संसारसमुद्रो येन तत्तीर्थं श्रुतम्। इदमंगांगबाह्यभेदभिन्नम्। किंविशिष्टम् ? अतुलं निर्बाधत्वेन विशिष्टार्थप्रतिपादकत्वेन चानुपमम्। **वीरस्य घोरं तपो**। घोरं दुष्करं तपो बाह्यमाभ्यन्तरं च वीरस्य भगवतः संबन्धि, नान्येषाम्। **वीरे श्रीद्युतिकांतिकीर्तिधृतयः**। श्रीरन्तरंगा बहिरंगा चानन्तज्ञानादिसमवसरणादिविभूतिः। द्युतिर्देहज्योतिः। कान्तिः कमनीयता लावण्यविशेषो वा। कीर्तिः

समस्त द्रव्यों से संबंधित जो गुण हैं वह सहभू धर्म कहलाता है और जो पर्याय हैं वह क्रमभू विवर्त कहलाते हैं। **सर्वान्**-उन सभी को भी जानते हैं। **सर्वथा**- समस्त प्रकार की विशेषताओं के साथ जानते हैं। किस विशेषता से? **भूतभाविभवतः**-अतीत, अनागत और वर्तमान काल संबंधि सभी विशेषताओं को जानते हैं। क्या उनको कदाचित् काल विशेष में जानते हैं ? **सदा**- नहीं। सर्वकाल जानते हैं।

प्रश्न- क्या कालादि के क्रम से उनको जानेगें?

उत्तर- युगपत्- एक साथ ही उन द्रव्य और गुण पर्यायों को जानते हैं। देश काल के स्वभाव के क्रम से नहीं जानते क्योंकि उन वीर भगवान का ज्ञान करण अर्थात् इन्द्रियों के क्रम एवं व्यवधान से रहित होने के कारण वह ज्ञान स्वभावपने को धारण करता है। उस ज्ञान स्वभावपने से ही वह सभी पदार्थों को जानते हैं।

तो फिर किसी एक क्षण में ही उसे जानेगें, पश्चात् क्रम से जानते होंगे, इस प्रकार पूछने पर उत्तर देते हैं। **प्रतिक्षणं**-प्रतिक्षण जानते हैं। किंतु किसी एक क्षण में नहीं, प्रतिक्षण, क्षण-क्षण वह जानते हैं। चूँकि वह भगवान इस प्रकार के हैं, इसलिए वह सर्वज्ञ कहे जाते हैं। सभी वस्तु ही युगपत्, यथावत् जानते हैं इस प्रकार वह सर्वज्ञ हैं। उन सर्वज्ञ भगवान के लिए नमस्कार हो। **जिनेश्वराय**- जो एक देश जिन के स्वामी हैं उनके लिए नमस्कार हो। **महते**- गुणों में उत्कृष्ट हैं उनके लिए नमस्कार हो। **वीराय**- जो अंतिम तीर्थंकर हैं उनके लिए नमस्कार हो।

इस प्रकार उनका यह महत्त्व सात विभक्तियों के निर्देश से गुण स्तवन द्वार से दिखाते हैं। **वीरः सर्व सुरासुरेन्द्र महितः**-जितने भी सुर असुर इन्द्र हैं अर्थात् वैमानिक और भवनवासी आदि देवों के इन्द्र हैं उन सभी के द्वारा वह पूजित हैं। यह प्रथमा विभक्ति हुई। **वीरं बुधाः संश्रिताः**- बुध=गणधर आदि को कहते हैं। वे गणधर आदि वीर भगवान का आश्रय लेते हैं। अर्थात् संसार रूपी समुद्र को पार करने के लिए उनके आश्रित रहते हैं। यह द्वितीया विभक्ति में निर्देश हुआ । **वीरेणाभिहतो**- वीर भगवान के द्वारा विनाश किया गया है। यह तृतीया विभक्ति है। किसका ? **स्वकर्म निचयः**- अपने ही कर्म समूह का। अर्थात् ज्ञानावरण आदि कर्म समूह का। और जो भव्यों के भी ज्ञानावरण आदि कर्म समूह का नाश करते हैं उनके लिए नमस्कार हो। इस प्रकार **वीराय भक्त्या नमः**- वीर भगवान के लिए नमस्कार हो। यह चतुर्थी विभक्ति है। **वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्तं**- वीर भगवान से ही यह तीर्थ प्रवृत्त हुआ है। यह पंचमी विभक्ति है। संसार समुद्र जिसके द्वारा तिरा जाये वह तीर्थ है। वह तीर्थ श्रुत कहलाता है। यह श्रुत अंग प्रविष्ट और अंग बाह्य के भेद से दो प्रकार का है। किस विशेषता वाला है? वह अतुल है अर्थात् निराबाधपने से विशिष्ट अर्थों का प्रतिपादक करने से यह अनुपम भी है। **वीरस्य घोरं तपो**-वीर का घोर तप। यह षष्ठि विभक्ति है। घोर अर्थात् दुष्कर तप जो बाह्य और अभ्यंतर रूप हैं। वीर भगवान से संबंधि ही वह घोर तप है अन्यों से संबंधि नहीं। **वीरे श्री द्युति-कांतिकीर्ति -धृतयः**- वीर में अन्तरंग और बहिरंग लक्ष्मी। यह सप्तमी विभक्ति है। अनंत ज्ञानादि स्वरूप अन्तरंग लक्ष्मी है और समवशरण आदि की विभूति रूप बहिरंग लक्ष्मी है। द्युति अर्थात् देह की ज्योति। कांति अर्थात् कमनीयता अथवा लावण्य विशेष (सौन्दर्य)। कीर्ति

सार्वत्रिकी ख्यातिर्वाणी वा, कीर्त्यन्ते जीवादयोऽर्थाः ययेति व्युत्पत्तेः। धृतिर्निराकांक्षणम्। (ताः) यतः एतास्त्वयि विद्यन्ते, अतः। **हे वीर भद्रं** परमकल्याणं **त्वयि**॥

इत्थम्भूते च त्वयि भगवन् ये भक्तिं कुर्वन्ति तेषां फलमुपदर्शयन्नाह-**ये वीरेत्यादि**। ये भव्यजनाः **वीरपादौ प्रणमंति नित्यं**। किंविशिष्टाः? **ध्याने स्थिताः** एकाग्रतां गताः। **संयमयोगयुक्ताः** संयमेन द्वादशप्रकारेण यावज्जीवव्रतलक्षणेन वा उपलक्षितो योगो मनोवाक्कायव्यापारश्चित्तवृत्तिनिरोधो वा। तेन युक्ताः सन्तः। **ते वीतशोकाः**। विनष्टशोका हि स्फुटं लोके त्रिभुवने **भवन्ति**। शोको ह्यधर्मप्रभवः। तत्प्रणामे च विशिष्टधर्मोत्पत्तेरधर्मप्रक्षयाच्छोकाभावः। एवंविधाश्च **ते संसारदुर्गं विषमं तरंति**। संसार एव दुर्गं महाटवी विषमं रौद्रमनेकप्रकारदुःखदायित्वेन भयानकत्वात्। तत् **तरन्ति** अतिक्रामन्ति लंघयंति।

इदानीं भगवदुपदिष्टचारित्रवृक्षोऽस्माकं भवविभवहान्यै भवत्वित्यभिनन्दयन्नाह। **व्रतेत्यादि**। वृक्षस्य हि मूलानि भवंति। अयं तु चारित्रवृक्षो **व्रतसमुदयमूलः** व्रतानां समुदयः समृद्धिः। समुदायो वा मूलानि यस्य। तथा वृक्षस्य स्कन्धो भवति। अयं तु चारित्रवृक्षः **संयमस्कन्धबन्धः** संयम एव स्कन्धबन्धः शाखनिर्गमप्रदेशसन्निवेशविशेषो यस्य। वृक्षो जलेन वर्धते, अयं पुनः **यमनियमपयोभिर्वर्धितः**। यमो यावज्जीवव्रतं, नियमो नियतकालं व्रतम्। तावेव पयांसि तैर्वर्धितः। तथा वृक्षस्य शाखा भवंति, अयं तु **शीलशाखः**। व्रतपरिरक्षणं शीलमष्टादशसहस्रसंख्यानि वा शीलानि। तान्येव शाखा यस्य। तथा वृक्षः कलिकासमूहसमन्वितो भवति, चारित्रवृक्षस्तु **समितिकलिकभारः**। कलिकानां पुष्पचों; (बों) डिकानां भारः संघातः कलिकभारः। 'त्वे द्याप्योः (ङ्यापोः) क्वचित् खौ च' (जै.4/3/173) इति प्रादेशः, शिंशपस्थलमित्यादिवत्। समितय एव कलिकाभारो यस्य। तथा वृक्षः सत्पल्लवो भवति, अयं तु **गुप्तिगुप्तप्रवालः**। गुप्तीनां गुप्तं रक्षणं तदेव प्रवालाः पल्लवा यस्य। गुप्तय एव वा गुप्ता रक्षिता नि-(ति-) रोहिता वा प्रवाला यस्य। तथा वृक्षः पुष्पसुगन्धिर्भवति, अयं तु **गुणकुसुमसुगंधिः**। चतुरशीतिलक्षसंख्या गुणा एव कुसुमानि तैरसुगंधिः परिमलामोदः। तथा वृक्षः पत्राढ्यो भवति, अयं तु

अर्थात् सर्वत्र उनकी ख्याति होना अथवा कीर्ति वाणी को भी कहते हैं। जिसके द्वारा जीवादि पदार्थ कहे जाते हैं कीर्त्यन्ते जीवादयोऽर्थाः यया कीर्तिः इस व्युत्पत्ति से उनकी दिव्य ध्वनि को कीर्ति कहा गया है। धृति निराकांक्ष भाव को कहते हैं। चूँकि ये सब गुण उन वीर भगवान में विद्यमान हैं अतः **हे वीर भद्रं त्वयि**- हे वीर भगवन! परम कल्याण आपमें ही है। (यहाँ सम्बोधन है।)

इस प्रकार हे भगवन्! आपके होने पर जो आपकी भक्ति करते हैं उनके फल को यहाँ पर दिखाते हैं– **ये वीरेत्यादि**- जो भव्यजन । **वीर पादौ प्रणमंति नित्यं**- वीर भगवान के चरणों में नित्य प्रणाम करते हैं। क्या विशेषता के साथ में? **ध्याने स्थिताः**- एकाग्रता के साथ में। **संयमयोगयुक्ता**- संयम से अर्थात् बारह प्रकार के संयम से। अथवा यावत् जीवन व्रत लक्षण के द्वारा जो उपलक्षित योग है वह मन, वचन, काय के व्यापार अथवा चित्तवृत्ति के निरोध वाला है उस संयम और योग से जो युक्त हैं वे भव्य जीव । **ते वीतशोकाः**- वे शोक से रहित निश्चित रूप से तीन लोक में **भवन्ति**- होते हैं। अधर्म से उत्पन्न हुआ प्रभाव शोक है। भगवान के लिए प्रणाम करने पर विशिष्ट धर्म की उत्पत्ति होती है और अधर्म का नाश होता है। इसलिए शोक का अभाव कहा है। इस प्रकार **ते संसार दुर्ग विषमं तरंति**-संसार ही दुर्ग है अथवा महाअटवी है जो विषम भी है अर्थात् रौद्र है क्योंकि अनेक प्रकार के दुःखों को देने के कारण भयानकपने को प्राप्त है। ऐसी उस संसार रूपी विषय अटवी को वे जीव **तरन्ति**- तैर जाते हैं अर्थात् उसका उल्लघंन कर जाते हैं। अब यहाँ पर भगवान द्वारा कहे हुए चारित्र रूपी वृक्ष जो कि हमारे संसार रूपी वैभव की हानि के लिए है वह हमको प्राप्त हो इस प्रकार से अभिनन्दन करते हुए कहते हैं। **व्रतेत्यादि**- वृक्ष के मूल होते हैं। यहाँ पर चारित्र रूपी वृक्ष है। **व्रत समुदय मूलः**- उन व्रतों का समुदाय अर्थात् उन व्रतों की समृद्धि ही चारित्र रूपी वृक्ष का मूल है। उसी प्रकार से वृक्ष का स्कंध (तना)होता है यहाँ पर चारित्र रूपी वृक्ष है इसलिए। **संयम स्कंध बंधः**- संयम ही स्कंध रूपी बंध है। शाख के निकलने के स्थान के आकार विशेष को स्कंध कहते हैं। वह संयम रूपी स्कंध चारित्र वृक्ष का होता है। वृक्ष जल से वृद्धि को प्राप्त होता है किंतु यह चारित्र रूपी वृक्ष। **यमनियमपयोभिर्वर्धितः**- यम अर्थात् जीवन पर्यंत के लिए व्रतों को धारण करना और नियत काल के लिए व्रतों को धारण करना नियम है। ये दोनों यम और नियम ही जल हैं। इन्हीं के द्वारा यह चारित्र रूपी वृक्ष वृद्धि को प्राप्त होता है। तथा वृक्ष की शाखाएँ होती हैं, इस चारित्र रूपी वृक्ष की **शीलशाखः**- शील रूपी शाखा हैं। व्रत की रक्षा करने वाले 18 हजार शील होते हैं। वह ही चारित्र वृक्ष की शाखाएँ हैं। तथा वृक्ष में अनेक कलिकाओं का समूह होता है। यहाँ इस चारित्र वृक्ष में तो **समिति कलिकभारः**- समिति रूपी कलिकाओं का भार है। कलिकाएँ पुष्प की बेड़ियों का भार कलिकभार कहलाता है। त्वे घाप्यो क्वचित् खौ च - इस सूत्र से कलिकाभार से कलिकभार हो जाता है। समितियाँ ही कलिका रूपी भार जिसके है वह चारित्र रूपी वृक्ष है। तथा वृक्ष पत्तों से युक्त होता है। यह चारित्र वृक्ष तो **गुप्तिगुप्तप्रवालः**- गुप्तियों से गुप्त या रक्षित है। वही उसके प्रवाल अर्थात् पल्लव या पत्ते हैं। ऐसा वह चारित्र रूपी वृक्ष है। अर्थात् गुप्तियों से ही वह रक्षित है अथवा गुप्तियाँ ही उसमें उत्पन्न होने वाले प्रवाल हैं। तथा वृक्ष, पुष्पों की सुगंधि से सहित होता है। यह चारित्र रूपी वृक्ष **गुण कुसुम सुगंधिः**- गुण रूपी कुसुमों की सुगंधि से सहित है। चौरासी लाख संख्या वाले गुण हैं। वह ही कुसुम हैं।

सत्तपश्चित्रपत्रः। सत्तपांसि सम्यक्तपांसि तान्येव चित्राणि नानाप्रकाराणि पत्राणि यस्य। तथा वृक्षः फलप्रदो भवति, चारित्रवृक्षः पुनः **शिवसुखफलदायी** शिवसुखं मोक्षसुखमनंतम्। तदेव फलम्। तद्ददातीत्येवंशीलः। तथा वृक्षो घनच्छायः पथिकानां खेदापहारी दिनकरतापापनोदकारी च भवति, अयं तु **दयाछाययोद्यः** (द्धः) दयैव छाया प्राणिनामसंतापकारित्वेन शीतलत्वात्। तया छाययोद्यः (द्धः) प्रशस्तः। **शुभजनपथिकानां खेदनोदे समर्थः**। शुभजना भव्यजनास्त एव पथिका मोक्षमार्गे प्रस्थितास्तेषां खेदः संसारपरिभ्रमणक्लेशस्तस्य[1] नोदो विनाशस्तत्र समर्थः। किं कुर्वन् ? **दुरितरविजतापं प्रापयन्नन्तभावम्**। प्रापयन् नयन्। अन्तभावं प्रध्वंसरूपताम्। कम् ? दुरितरविजतापम्। दुरितं पापं तदेव रविः प्राणिनां संतापकारित्वात्। तस्माज्जातो दुरितरविजः। स चासौ तापश्चतुर्गतिदुःखसंतापस्तम्। इत्थम्भूतो यश्चारित्रवृक्षः **सोऽस्तु** भवतु। नोऽस्माकम्। किमर्थं भवतु ? **भवविभवहान्यै**। भवे संसारे विविधा नानाप्रकारा भवास्तेषां हान्यै विनाशाय।

यतश्चैवंविधोऽसौ चारित्रवृक्षस्तस्मादात्मनस्तत्प्राप्तिमिच्छन्ग्रन्थकारश्चारित्रं स्तोतुं **चारित्र**मित्याद्याह-**प्रणमामि**। किं तत् ? **चारित्रम्**। किंविशिष्टम् ? पंचभेदं सामायिकादिपंचप्रकारम्। तथा **सर्वजिनै**श्चरितं कर्मक्षयार्थं स्वयमनुष्ठितम्। **प्रोक्तं च सर्वशिष्येभ्यः**। प्रस्पष्टं यथा भवत्येवमुक्तं प्रतिपादितं सकलभव्यजनेभ्यः। किमर्थं तद्भवता प्रणम्यते ? **पंचमचारित्रलाभाय**। पंचमचारित्रं निःशेषकर्मप्रक्षयप्रसाधकं यथाख्यातचारित्रम्। तस्य लाभाय प्राप्तये।

तस्यैव चारित्रस्य सद्धर्मापरशब्दाभिधेयस्य सप्तविभक्तिनिर्देशेन स्वरूपं प्रशस्यात्मनस्ततो रक्षां प्रार्थयमानः प्राह-**धर्म** इत्यादि। **धर्म**श्चारित्रमुत्तमक्षमादिश्च। तत्र चारित्रस्य प्रस्तुतत्वादिह ग्रहणम्। धर्मश्चारित्रम्। **सर्वसुखाकरः**। सर्वसुखानां स्वर्गापवर्गादिसुखानामाकर उत्पत्तिस्थानम्। तथा **हितकरः**। हितस्य परिणामपथ्यस्य पुण्यस्य जनकः। यत एवंविधो धर्मोऽतस्तं **धर्मं बुधाः** परमविवेकसम्पन्नास्तीर्थकरादयश्चिन्वत उपचयं नयन्ति। मोक्षप्राप्त्यर्थं पुष्टिमनुतिष्ठन्तीत्यर्थः। यतो **धर्मेणैव समाप्यते** सम्यक्प्राप्यते **शिवसुखं** मोक्षसुखम्। **तस्मा** एवंविधाय **धर्माय नमः**। यतो **धर्मान्नास्त्यपरः** सुहृद्भवभृतां सुहृदुपकारको भवभृतां संसारिणां धर्मात्सकाशादपरोऽन्यो नास्ति। इत्थम्भूतस्य

---

1. 'परिभ्रमणखेदः' -इतिपाठान्तरम्।

उनकी सुगंधि परिमल आमोद अर्थात् सुगंधि से उत्पन्न हुआ आनंद। उसी प्रकार वृक्ष पत्तों से भरा होता है किंतु चारित्र रूपी वृक्ष। **सत्तपश्चित्रपत्र**- समीचीन तप ही इसके विचित्र , नाना प्रकार के पत्ते हैं। उसी प्रकार वृक्ष फल को देने वाला होता है यह चारित्र रूपी वृक्ष पुनः **शिवसुखफलदायी** - शिव सुख अर्थात् मोक्ष सुख अनंत है वही उसका फल है। उस फल को देने से यह शिव सुख फलदायी कहा जाता है। उसी प्रकार वृक्ष घनी छाया वाला होता है जो पथिकों के खेद को दूर करने वाला होता है। किंतु यह चारित्र रूपी वृक्ष **दयाछाययोद्यः**- दया ही इसकी छाया है। प्राणियों को इससे संताप उत्पन्न नहीं होता क्योंकि इसमें शीतलपना है। छाया के समूह से वह प्रशस्त हैं। **शुभजन पथिकानां खेदनोदे समर्थः**- शुभजन अर्थात् भव्यजन वही इस चारित्र रूपी वृक्ष के पथिक हैं। जो मोक्षमार्ग में प्रस्थान किये हैं उनका खेद अर्थात् संसार के परिभ्रमण से उत्पन्न हुए क्लेश को विनाश करने में यह चारित्र रूपी वृक्ष ही समर्थ है। क्या करता हुआ? **दुरितरविजतापं प्रापयन्नन्तभावम्**- प्रापयन् यानि प्राप्त कराता हुआ। अंतभाव को प्रध्वंस रूपता को। किसके अंत भाव को? दुरित-रविज-तापं = पाप रूपी सूर्य से उत्पन्न संताप को क्योंकि वह ताप प्राणियों को संतापकारी है। यहाँ पर संताप का अर्थ है चतुर्गति दुःख। इस प्रकार का जो चारित्र वृक्ष है वह मेरे लिए होवे। किसलिए होवे? **भवविभव हान्यै**- भव अर्थात् संसार। संसार में अनेक प्रकार के जो भव हैं उन सबके विनाश करने के लिए चारित्र रूपी वृक्ष होवे। चूँकि यह चारित्र रूपी वृक्ष इस प्रकार का है इसलिए आत्मा को उसकी प्राप्ति की इच्छा करते हुए ग्रन्थकार चारित्र की स्तुति करते हुए कहते हैं। **चारित्र मित्याद्याह प्रणमामि**- मैं उस चारित्र को प्रणाम करता हूँ। किसको? **चारित्रम्**- चारित्र को, किस विशेषता वाले चारित्र को? सामायिक आदि पाँच भेद वाले चारित्र को। तथा **सर्वजिनैः**- कर्म का क्षय करने के लिए सभी जिनेन्द्र भगवान ने उसका स्वयं अनुष्ठान किया है। **प्रोक्तं च सर्वशिष्येभ्यः**- जैसे रूप में स्पष्ट हो सकता है वैसे रूप में सभी भव्य जीवों के लिए जिनेन्द्र भगवान ने उसका प्रतिपादन किया है। आपके द्वारा किस लिए प्रणाम किया जा रहा है? **पंचम चारित्र लाभाय**- पंचम चारित्र की प्राप्ति के लिए। समस्त प्रकार के कर्मों के क्षय का साधक यथाख्यात चारित्र होता है उस चारित्र की प्राप्ति के लिए मैं प्रणाम करता हूँ।

उस चारित्र को ही सद्धर्म नाम के दूसरे शब्द से कहा जाता है। उसका सात विभक्तियों के निर्देश से स्वरूप दिखाकर के आत्मा की उससे रक्षा हो, इस प्रकार की प्रार्थना करते हुए कहते हैं। **धर्म इत्यादि**- धर्म चारित्र है और उत्तम क्षमा आदि भाव भी धर्म हैं। उसमें चारित्र का प्रसंग होने से यहाँ पर उसी का ग्रहण है। धर्म ही चारित्र है। **सर्व सुखाकरः**- धर्म ही स्वर्ग और मोक्ष आदि समस्त सुखों का आकर अर्थात् खान अथवा उत्पत्ति स्थान है? तथा **हितकर**- धर्म हितकर है क्योंकि यह परिणाम में पथ्य है और पुण्य का जनक हैं। चूँकि इस प्रकार का धर्म है इसलिए ही इस धर्म को **धर्म बुधाः**- बुध अपने अंदर वृद्धि को प्राप्त करते हैं। परम विवेक सम्पन्न तीर्थंकर आदि बुध है उन्हीं के द्वारा यह धर्म चिन्वते-एकत्रित किया जाता है। मोक्ष प्राप्ति के लिए इसकी पुष्टि की जाती है और उन्हीं के द्वारा इस धर्म का अनुष्ठान किया जाता है। **धर्मेणैव समाप्यते**- चूँकि धर्म से ही समीचीन रूप से प्राप्त किया जाता है। **शिवसुखं**- मोक्ष सुख को। **तस्मात्** इस कारण से ही

च **धर्मस्य मूलं** कारणं **दया** करुणा, निर्दयस्य धर्मांशस्याप्यसम्भवात्[1]। एवंविधे च **धर्मे प्रतिदिनमहं चित्तं दधे** धरामि तत्र दत्तावधानो भवामि। त्वयि चित्तं दधानं च **मां हे धर्मपालय** संसारमहार्णवे पतंतं रक्ष।

इदानीं धर्मादीनां मलगालनादिहेतुतया[2] परममंगलत्वं प्ररूपयन्नाह। **धम्मो** इत्यादि। धर्म उक्तलक्षणः। **मंगलं**। मलं पापं गालयति विध्वंसयति वा मंगलम्। मंगं वा परमसुखं लात्यादत्त इति मंगलम्। **उक्किट्ठं**। उत्कृष्टमनुपचरितं परमम्। न केवलं धर्म एव मंगलमपि **तु अहिंसा संजमो तवो** अहिंसा संयमस्तपश्च। न केवलं मलगालनहेतुरेवायमपि तु पूजादिहेतुरपि। यतः **देवा वि तस्स पणमंति जस्स धम्मे सया मणो** देवा अपि तस्य प्रणमंति यस्य धर्मे सदा मनः॥

[3]**चउवीस**मित्यादि। [3]**चउवीसं तित्थयरे**। चतुर्विंशतितीर्थकरान्वन्दे। कथम्भूतान् ? **उसहादिवीरपच्छिमे**। **वृषभो**- वृषभनाथ आदिर्येषां ते वृषभादयः। वीरो वर्धमानस्वामी पश्चिमोऽन्त्यो येषां ते वीरपश्चिमाः। वृषभादयश्च ते वीरपश्चिमाश्च। तान्। **सव्वे**। सर्वान्वन्दे। तथा **सगणगणधरे**। सह गणेन संघेन वर्तन्त इति सगणाः। ते च ते गणधराश्च तान् सर्वान्। सिद्धे। सिद्धांश्च॥ सिरसा णमंसामि। नमस्करोमि।

तत्र चतुर्विंशतितीर्थकृतां ये लोक इत्यादिना विशिष्टगुणोपेतत्वेन स्तवं कुर्वन्नाह। **ये** चतुर्विंशतितीर्थंकरदेवास्त एव **लोके** लोकमध्ये**ऽष्टसहस्रलक्षणधराः**। तथा **ज्ञेयार्णवान्तर्गताः**। ज्ञेयं लोकालोकलक्षणं तदेवार्णवः समुद्रः सामान्यप्राणिनाऽशक्यपर्यन्तगमनत्वात्। तस्यान्तं पर्यन्तं गताः। तथा **ये सम्यग्भवजालहेतुमथनाः**। भवानां जालं संघातो भवानां वा कारणभूतं जालं वेष्टनं कर्मबन्धस्तस्य हेतवो मिथ्यात्वादयस्तेषां सम्यग्मथनाः यथा तेषां पुनराविर्भावो न भवति तथा तद्विध्वंसकारकाः। तथा **चन्द्रार्कतेजोऽधिकाः**। चन्द्रार्केभ्यस्तेजसाधिका उत्कृष्टाः। चन्द्रार्कयोर्हि तेजः प्रकाशो मूर्ताव्यवहित-वर्तमाननियतार्थप्रकाशकं, तीर्थकृतां तु तेजो ज्ञानज्योतिर्मूर्तामूर्तव्यवहितेतरत्रिकालगोचराखिलार्थ-

---

1. 'धर्मलेश' -इति झा-प्रतौ पाठः।
2. 'मंगलादीनां हेतुतया' इति झा-प्रतौ पाठः।
3. चव्वीसमिति पाठान्तरम्।

धर्माय नमः- धर्म के लिए नमस्कार हो। क्योंकि **धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद्भवभृतां**- धर्म से अन्य कोई भी संसारी प्राणियों का मित्र नहीं है। सुहृद् अर्थात् उपकारक। संसारी प्राणियों का धर्म के अलावा और कोई अन्य उपकारक नहीं है। इस प्रकार **धर्मस्य मूलं**- धर्म का मूल या कारण **दया**- दया है, करुणा है क्योंकि निर्दय के धर्म के अंश की भी संभावना नहीं है। इस प्रकार के **धर्मे प्रतिदिनमहं चित्तं दधे**- धर्म में मैं प्रतिदिन अपना चित्त धारण करता हूँ। अर्थात् उसी धर्म में मैं अपने उपयोग को लगाता हूँ। **मां हे धर्म पालय**- हे धर्म! तुममें चित्त धारण करने वाले मुझ आत्मा का तुम पालन करो अर्थात् संसार रूपी महा समुद्र में गिरते हुए मेरी रक्षा करो। अब धर्म आदि को मल गालन आदि का हेतु होने से उसका परम मंगलपना प्ररूपण करते हुए कहते हैं। **धम्मो**- इत्यादि- धर्म जो कि पहले कहे हुए लक्षण वाला है। **मंगलं** - वह मंगल है। मल अर्थात् पाप उसको जो गला देता है या विध्वंस कर देता है वह मंगल है। अथवा मंग यानी परम सुख। उस परम सुख को जो लाता है, प्राप्त करा देता है वह मंगल है। **उक्किट्ठं** - वह उत्कृष्ट अर्थात् अनुपचरित परम है। न केवल धर्म ही मंगल है अपितु **अहिंसा संजमो तवो**- अहिंसा, संयम और तप भी मंगल है। न केवल ये मल गालन के हेतु है किंतु पूजा आदि के हेतू भी हैं। क्योंकि **देवा वि तस्स पणमंति जस्स धम्मे सया मणो**- देव भी उसको प्रणाम करते हैं जिसका मन सदा धर्म में रहता है।

चउवीसं इत्यादि। चउवीसं तित्थयरे- चतुर्विंशति तीर्थंकरों की मैं वंदना करता हूँ। कैसे है? **उसहादिवीरपच्छिमे**- वृषभ आदि से अंतिम वीर पर्यंत तक। वृषभः अर्थात् वृषभनाथ प्रथम तीर्थंकर जिसकी आदि में हैं वे वृषभादयः। वीर अर्थात् वर्धमान स्वामी ये अतिंम तीर्थंकर जिनके अंत में है वे वीर पश्चिमाः हैं। वृषभ आदि और वीर पश्चिम ये दोनों ही समास करने पर-वृषभादिवीरपश्चिमे-यह पद बन जाता है। **सव्वे**- उन सभी की मैं वंदना करता हूँ। तथा **सगणगणधरे**- जो गण अर्थात् संघ के साथ में रहते हैं इसलिए सगण हैं। और सगण ही गणधर हैं। उन सभी की मैं वंदना करता हूँ। **सिद्धे**- सिद्धों की भी मैं वंदना करता हूँ। **सिरसा णमंसामि**-मैं सिर झुकाकर उन्हें नमस्कार करता हूँ।

उन चतुर्विंशति तीर्थंकरों की 'ये लोक' इत्यादि के रूप में विशिष्ट गुणों के साथ में उनका स्तवन करते हुए कहते हैं। ये जो चतुर्विंशति तीर्थंकर देव हैं वह ही **लोके**- लोक में **अष्टसहस्रलक्षणधराः**- एक हजार आठ लक्षणों को धारण करने वाले है तथा **ज्ञेयार्णवान्तर्गताः**- लोक अलोक लक्षण वाला ज्ञेय है। वह ज्ञेय ही अर्णव अर्थात् समुद्र है। सामान्य प्राणियों के द्वारा उस लोक अलोक के पर्यंत तक प्राप्त करना अशक्य होने से उसे समुद्र की उपमा दी गई है। उसका अंत अर्थात् पार को वे प्राप्त हो गये हैं। तथा ये **सम्यग्भवजालहेतुमथनाः**- भव अर्थात् संसार का जाल अथवा संसार के लिए कारण भूत जो जाल है या वेष्टन है वह कर्म का बंध है। उसके हेतु जो मिथ्यात्व आदि हैं उन सभी को जिन्होंने समीचीन रूप से नष्ट कर दिया है जिससे कि उनका पुनः आविर्भाव न हो सके इन सबको जिन्होंने विध्वंस कर दिया है वे सम्यग्भवजाल हेतु मथना कहलाते हैं। तथा **चन्द्रार्कतेजोऽधिकाः**- वे सूर्य और चन्द्रमा के तेज से भी उत्कृष्ट हैं। चंद्र और सूर्य में जो तेज

प्रकाशकमिति। तथा **ये साध्विन्द्रसुराप्सरोगणशतैर्गीतप्रणुत्यार्चिताः**। साधूनामिन्द्रा गणधरादयः, अथवा साधवश्च गणधरादयः। इन्द्राश्च सुराश्चाऽप्सरश्च साध्विन्द्रसुराप्सरसः। तासां गणाः संघातास्तेषां शतानि तैर्गीता उच्चारिता सा चासौ प्रणुतिश्च प्रकृष्टा स्तुतिः। तयाऽर्चिताः वाक्कुसुमैः पूजिता इत्यर्थः। गीतप्रनृत्यार्चिता इति पाठे गीतनृत्येभ्यः पश्चादर्चिताः। गीतनृत्यानि पूर्वं कृत्वा पश्चादर्चिता इत्यर्थः। अत्र साध्विन्द्रादीनां विशेषणम्। साधवः समीचीना भव्याः। ते च त इन्द्रादयश्च। **तानि**त्थम्भूतान् **देवान्** आराध्यान् **वृषभादिवीरचरमान् भक्त्या नमस्याम्यहम्**। सामान्यतः स्तुतानपि तीर्थंकरानिदानीं विशेषतो निजनिजनामोपेतान्स्तुवन्नाह-**नाभेय**मित्यादि। **ईडे** स्तुवेऽहम्। कम्? **नाभेयं** वृषभनाथम्। नाभेः कुलकरस्यापत्यं नाभेयस्तम्। कथम्भूतम्? **जिनवरम्**। देशजिनेभ्यो गणधरादिभ्य उत्कृष्टम्। पुनरपि किंविशिष्टम् ? **देवपूज्यम्**। देवैरिन्द्रादिभिः पूज्यत इति देवपूज्यः। तम्। तथा **सर्वज्ञम्**। सर्वं जानातीति सर्वज्ञः। तम्। अत एव **सर्वलोकप्रदीपं** त्रैलोक्योद्योतकम्। तथाऽ**जितम्**। एतद्विशेषणचतुष्टयविशिष्टमीडे। न जीयतेऽन्तरङ्गैर्वहिरङ्गैश्च शत्रुभिरित्यजितः। तम्। तथा **शम्भवाख्यम्**। शं सुखं यस्याऽसौ शम्भवाख्यः। तम्। किंविशिष्टम् ? **मुनिगणवृषभम्**। मुनीनां गणः समुदायस्तस्य वृषभं प्रधानम्। स्वामिनमित्यर्थः। तमीडे। तथा **नन्दन**मभिनंदननामानम्। कथम्भूतम् ? **देवदेवम्**। देवानामिन्द्रादीनां देवो वन्द्य आराध्यो देवदेवः। तमीडे। तथा **सुबुद्धिम्**। शोभना बुद्धिः केवलज्ञानं यस्यासौ सुबुद्धिः सुमतिः। तमीडे। किंविशिष्टम्? कर्मारिघ्नं कर्मारातिविनाशकम्। तथा वरकमलनिभम्। वरकमलस्येव निभा प्रभा यस्याऽसौ वरकमलनिभः पद्मप्रभः। तमीडे। कथम्भूतम् ? पद्मपुष्पाभिगन्धम्। पद्मपुष्पस्येवाभि समंतात् सर्वत्र शरीरे गंधो यस्य। तथा **सुपार्श्व**मीडे। शोभनौ शरीरोभयपार्श्वौ यस्यासौ सुपार्श्वः। तम्। किंविशिष्टम् ? **क्षांतं**

अर्थात् प्रकाश होता है वह मूर्त से अव्यवहित तथा वर्तमान में ही नियत अर्थ का प्रकाशक है। अर्थात् जो पदार्थ मूर्त पदार्थ से व्यवधान को प्राप्त न हो उस वर्तमान काल के नियत (इन्द्रिय सम्मुख) पदार्थ को ही प्रकाशित करता है। किंतु तीर्थंकरों का जो तेज है वह ज्ञान ज्योति मूर्त और अमूर्त इन सभी से व्यवहित हो या न हो उन सब त्रिकाल गोचर समस्त अर्थों की प्रकाशक है। तथा **ये साध्विन्द्रसुराप्सरोगणशतैर्गीतप्रणुत्यार्चिताः**- साधुओं के इन्द्र गणधर आदि हैं अथवा साधु ही गणधर आदि हैं। इन्द्र, सुर आदि हैं। अप्सराएं हैं। इन्द्र, सुर और अप्सरा इन सबका समास करने पर इन्द्रसुराप्सरसः बन जाता है। उनका गण अर्थात् समूह ऐसे सैकड़ों साधु, इन्द्र और सुर के गणों के द्वारा जिनके लिए गीत गाये गये हैं और वह ही उनके लिए प्रकृष्ट स्तुति है, उनके द्वारा वे अर्चित हैं अर्थात् वचन रूपी कुसुमों से पूजित हैं। गीतप्रनृत्यार्चिता इस प्रकार का पाठ स्वीकार करने पर गीत और नृत्य उनके लिए किये जाते हैं बाद में उनकी अर्चना की जाती है। यहाँ पर साधु, इन्द्र आदिकों का यह गीत गीतप्रनृत्यार्चिता यहाँ पर साधु शब्द, इन्द्र आदिकों का विशेषण है। साधु अर्थात् समीचीन भव्य जीव। वे ही इन्द्र आदि हैं। इस तरह भी विग्रह करके अर्थ निकाला जाता है। **तानित्थम्भूतान देवान्**- इस प्रकार के इन देवों को अर्थात् आराध्य को **वृषभादिवीरचरमान् भक्त्या नमस्याम्यहम्**- सामान्य से स्तुति को प्राप्त होते हुए भी तीर्थंकरों आदि की ही यहाँ विशेष रूप से अपने-अपने नाम से सहित उनकी स्तुति करते हैं। **नाभेयमित्यादि**- **ईडे** अर्थात् मैं उनकी स्तुति करता हूँ। किसकी? **नाभेयं**- वृषभनाथ की। नाभि अर्थात् कुलकर के अपत्य (पुत्र) नाभेय (ऋषभदेव) की स्तुति करता हूँ। किस प्रकार के हैं? **जिनवरम्**- देशजिनों से या गणधर आदिकों से वह उत्कृष्ट हैं। और क्या विशेषता वाले हैं? **देवपूज्यम्** - देव और इन्द्र आदि के द्वारा पूजे जाते हैं इसलिए देवपूज्य हैं। उनकी मैं स्तुति करता हूँ। तथा **सर्वज्ञम्**- जो समस्त पदार्थों को जानते हैं वह सर्वज्ञ हैं उनकी। **सर्वलोकप्रदीपं**-इसलिए ही सर्वलोक को उद्योत करने वाले हैं या प्रकाशित करने वाले हैं। **तथाऽजितम्**- इस विशेषण चतुष्टय से मैं उनकी पूजा करता हूँ। जो अंतरंग और बहिरंग शत्रुओं के द्वारा नहीं जीते गये हैं वह अजित हैं उन अजितनाथ भगवान की मैं स्तुति करता हूँ। तथा **शम्भवाख्यम्**- जिनके पास में शं अर्थात् सुख है वही सम्भव नाम से कहे जाते हैं उनकी मैं स्तुति करता हूँ। क्या विशेषता वाले हैं वह सम्भवनाथ भगवान? **मुनिगणवृषभम्**- मुनियों का गण अर्थात् समुदाय उसमें भी जो श्रेष्ठ हैं, प्रधान हैं अर्थात् उनके स्वामी हैं ऐसे मुनिगण वृषभ संभवनाथ की मैं स्तुति करता हूँ। तथा **नन्दनं** अभिनन्दनं नामक नाम के भगवान की। कैसे हैं वे? **देवदेवम्**-देव अर्थात् इन्द्र आदियों के भी देव हैं अर्थात् उनसे वंदनीय हैं, आराध्य हैं इसलिए वो देवदेव हैं उनकी मैं स्तुति करता हूँ। तथा **सुबुद्धिम्**- शोभनीय बुद्धि अर्थात् केवलज्ञान जिनके पास में है वह सुबुद्धि है वही **सुमतिनाथ** भगवान हैं उनकी मैं स्तुति करता हूँ। क्या विशेषता वाले हैं ? वह कर्म रूपी शत्रुओं के विनाशक हैं। तथा श्रेष्ठ कमल के समान जिनकी प्रभा है ऐसे वह पद्मप्रभ भगवान हैं उनकी मैं स्तुति करता हूँ। किस प्रकार के हैं वह? पद्म कमल के समान ही चारों ओर से जिनके शरीर में गंध आती है उन **पद्मप्रभ** भगवान की मैं स्तुति करता हूँ। तथा **सुपार्श्व**- सुपार्श्वनाथ भगवान की स्तुति करता हूँ। जिनके शरीर के दोनों पार्श्व भाग शोभा को प्राप्त हैं वह सुपार्श्वनाथ भगवान हैं। वह क्या विशेषता वाले हैं? **क्षांतं दांतम्**- क्षांत अर्थात् सहिष्णु या परम

दांतम्। क्षांतं सहिष्णुं परमोपशांतम्। दांतं निर्जितेंद्रियम्। तथा **चंद्रनामानं** चंद्रप्रभमीडे। कथम्भूतम् ? **सकलशशिनिभम्**। सकलः परिपूर्णः स चासौ शशी चंद्रस्तेन निभं सकलकलापरिपूर्णत्वेनानंदहेतुत्वेन धवलत्वेन मार्गप्रकाशकत्वेनार्थोद्योतकत्वेन च सदृशम्। तथा **पुष्पदन्तं स्तौमि**। किंविशिष्टम्? **विख्यातम्।** विशेषेण ख्यातं त्रिभुवने प्रसिद्धम्। तथा **भवभयमथनम्**। भवे भयं चातुर्गतिकदुःखत्रासस्तस्यात्मनो भव्यानां च सम्बन्धिनो मथनं स्फेटकम्। तथा **शीतलं** स्तौमि। कथम्भूतम् ? **लोकनाथं** त्रिभुवनस्वामिनम्। तथा **श्रेयांसं** स्तौमि। किंविशिष्टम् ? **शीलकोशम्**। शीलानां कोशः करण्डको निवासस्थानम्। शीलान्येव कोशो भाण्डागारं यस्य तम्। तथा **प्रवरनरगुरुम्**। प्रवरनरश्चासौ गुरुश्च प्रवरनराणां वा गणधरचक्रवर्त्यादीनां वा गुरुः। तम्। तथा **वासुपूज्यं** स्तौमि। कथम्भूतम् ? **सुपूज्यम्**। सुष्ठ्वतिशयेन पूज्यः शोभनैर्वेन्द्रादिभिः पूज्यः सुपूज्यः। तम्। पुनरपि किंविशिष्टम् ? **मुक्तम्**। घातिकर्मक्षयात्प्राप्तानन्तचतुष्टयस्वरूपम्। **दान्तेन्द्रियाश्वम्**। इन्द्रियाण्येवाश्वाः, स्वविषये शीघ्रप्रवृत्तित्वात्। दान्ता वशीकृता इन्द्रियाश्वाः येनासौ दान्तेन्द्रियाश्वः। तम्। तथा **विमलं** स्तौमि। विगतो विनष्टो मलो द्रव्यभावरूपः कलंको यस्यासौ विमलः। तम्। कथम्भूतम् ? **ऋषिपतिम्**। सप्तर्द्धिसमन्विता ऋषयो गणधरदेवादयस्तेषां पतिं स्वामिनम्। तथा **सिंहसैन्यम्**। अनन्ततीर्थकरदेवमीडे। सिंहसेनो राजा तस्यापत्यम्। 'सेनान्तलक्षणकारिभ्य इञ्च' इति ण्यः। (जै. 3/1/139)। द्योरैप्। तथा **धर्मं** धर्मतीर्थकरदेवं स्तौमि। किंविशिष्टम्? **सद्धर्मकेतुम्**। सद्धर्मः सम्यक्चारित्रमुत्तमक्षमादिर्वा केतुश्चिह्नं यस्यासौ सद्धर्मकेतुस्तस्य वा केतुर्ज्ञापकः प्रकाशकः। तम्। तथा **मुनीन्द्रम्**। गणधरादिमुनिस्वामिनम्। अथवा मुनिः प्रत्यक्षवेदी। स चासाविन्द्रश्च गणधरादीनां स्वामी। तथा **शान्तिं** स्तौमि। कथम्भूतम्? **शमदमनिलयम्**। शमः परमोपशमः, दम इन्द्रियजयस्तयोर्निलयमाश्रयम्। तथा **शरण्यम्**। कर्मारातिप्रभवचातुर्गतिकदुःखभयत्रस्तानां[1] शरणे तद्दुःखत्रासपरिरक्षणे साधुः। तम्। तथा **कुंथुं** कुंथुतीर्थकरदेवम्। **शरणमहमितो** गतः। संसारार्णवावर्तदुस्सहदुःखभयत्रस्तोऽहं तद्दुःखापनोदार्थं

---

1. 'मुक्तात्मनां आलयः समवस (र) णं' इत्यधिकः पाठोडत्र स्थान आदर्श प्रतौ लभ्यते। स च झा-प्रतौ नस्ति।

उपशान्त हैं और दांत अर्थात् जिन्होंने इन्द्रियों को जीत लिया है ऐसे सुपार्श्वनाथ भगवान की मैं स्तुति करता हूँ। तथा **चंद्रनामानं**- चन्द्रप्रभु भगवान की मैं स्तुति करता हूँ। कैसे हैं वह? **सकलशशिनिभं**-सकल शशि यानि चन्द्रमा। उसके समान जिनकी आभा है क्योंकि सकल कलाओं से परिपूर्ण होने से, आनंद का हेतु होने से, धवलपने को प्राप्त होने से तथा मोक्षमार्ग का प्रकाशक होने से और समस्त पदार्थों के प्रकाशक होने से वह चन्द्रमा के समान हैं। तथा **पुष्पदन्तं स्तौमि**- पुष्पदंत भगवान की स्तुति करता हूँ। क्या विशेषता वाले हैं ? **विख्यातम्**- विशेष रूप से तीनों लोकों में उनका नाम ख्यात है, प्रसिद्ध है। तथा **भवभयमथनम्**- संसार में चारों गतियों के दु:खों से उत्पन्न होने वाले उस भय को जो भव्यों से संबंधित है उसका वह विनाश कर देने वाले हैं। तथा **शीतलं**- शीतलनाथ भगवान की मैं स्तुति करता हूँ। किस प्रकार के हैं वह? **लोकनाथं**- तीनों लोक के स्वामी हैं। तथा **श्रेयांसं**- श्रेयांस नाथ भगवान की मैं स्तुति करता हूँ। क्या विशेषता है? **शीलकोशम्**- शीलों के वह कोश अर्थात् करण्ड (पिटारे) हैं अथवा निवास स्थान हैं। शील ही जिसके लिए कोश अर्थात् भण्डार है उन श्रेयांसनाथ की मैं स्तुति करता हूँ। तथा **प्रवरनरगुरुम्**- श्रेष्ठ मनुष्य ही गुरु है जिसका वे प्रवरनर हैं, प्रवरनरों अर्थात् गणधरों व चक्रवर्ती आदि के जो गुरु हैं उनकी मैं स्तुति करता हूँ। तथा **वासुपूज्यं**- मैं वासुपूज्य भगवान की स्तुति करता हूँ। कैसे हैं वह वासुपूज्य भगवान? **सुपूज्यम्**- जो अतिशय रूप से पूजा को प्राप्त हैं। शोभनीय इन्द्र आदि के द्वारा पूज्य हैं इसलिए वे सुपूज्य कहे गये हैं। और क्या विशेषता वाले हैं? **मुक्तम्** -घाति कर्मों के क्षय से प्राप्त अनंत चतुष्टय स्वरूप हैं। इसलिए मुक्त हैं। **दान्तेन्द्रियाश्वम्**- इन्द्रियाँ ही अश्व हैं। क्योंकि वे अपने विषय में शीघ्र प्रवृत्ति करने वाली होती हैं। जिन्होंने इन्द्रिय रूपी घोड़ों को अपने वश में कर लिया है वह दान्तइन्द्रियाश्व हैं उनकी मैं वंदना करता हूँ। तथा **विमलं**- जिनका मल अर्थात् द्रव्य-भाव रूप कलंक नष्ट हो गया है वह विमलनाथ भगवान हैं? वह किस प्रकार के हैं? **ऋषिपतिम्**- सप्त ऋद्धियों से समन्वित जो गणधर देव आदि ऋषि हैं उनके भी वह स्वामी हैं उनकी मैं वंदना करता हूँ। तथा **सिंहसैन्यम्**- अनंत तीर्थंकर देव की मैं स्तुति करता हूँ। सिंहसेन नाम के राजा थे उनके पुत्र यह अनंतनाथ भगवान थे। इसलिए आपका नाम सिंहसैन्यम् भी कहा जाता है। 'सेनान्तलक्षणकारिभ्य इञ्च इति ण्य:' जैनेन्द्र व्याकरण के सूत्र से सेन शब्द का सैन्य बन जाता है जो अपत्य के अर्थ में आता है। तथा **धर्म**- धर्मनाथ तीर्थंकर देव की मैं स्तुति करता हूँ। क्या विशेषता वाले हैं वह? **सद्धर्मकेतुम्**- सद्धर्म अर्थात् सम्यक् चारित्र अथवा उत्तम क्षमादि धर्म के वे चिन्ह हैं इसलिए वह सद्धर्मकेतु हैं अथवा सम्यक् चारित्र रूपी धर्म के वे केतु अर्थात् ज्ञापक हैं, प्रकाशक हैं इसलिए भी सद्धर्मकेतु हैं। तथा **मुनीन्द्रम्**- गणधर आदि मुनियों के यह स्वामी हैं अथवा प्रत्यक्ष ज्ञानी को मुनि कहते हैं। वह मुनि ही इन्द्र हैं, गणधर आदिकों के वे स्वामी हैं। इसलिए भी वह मुनीन्द्र हैं। तथा **शांतिं**- शांतिनाथ भगवान की मैं स्तुति करता हूँ। कैसे हैं? **शमदम निलयम्**- परम उपशम भाव शम है, इन्द्रियों का जय दम है। इन दोनों के निलय अर्थात् आश्रय हैं इसलिए वह शमदम निलय हैं। तथा **शरण्यम्**- कर्मरूपी शत्रुओं से उत्पन्न हुए चतुर्गति के दु:ख के भय से त्रस्त हुए जीवों के लिए शरण भूत हैं अर्थात् उनके दु:खों और भयों से उनकी रक्षा करने में समर्थ हैं इसलिए वे शरण्य कहे गये हैं। तथा **कुंथुं**- कुंथुनाथ तीर्थंकर की मैं स्तुति करता हूँ। कैसे हैं वह? **शरणमहमितो**- संसार रूपी

कुन्थुनाथमाश्रित इत्यर्थः। किंविशिष्टम्? **सिद्धालयस्थम्**। सिद्धानां परापरसिद्धिस्वरूपसंपन्नानां मुक्तात्मनामालयः समवसरणं मोक्षप्रदेशश्च। तत्रस्थम्। तथा **श्रमणपतिम्**। गणधरादीनां पतिं स्वामिनं। **तथाऽर**मरतीर्थकरदेवं **शरणमहमितः**। कथम्भूतं ? **त्यक्तभोगेषुचक्रम्**। भोगा एव इषवो वाणाः, प्राणिनां मर्मवेधित्वात्पीडाकरत्वाच्च। तेषां चक्रं संघातस्तत्त्यक्तं येन। अथवा भोगाश्चेषवश्च चक्रं च चक्ररत्नं तानि त्यक्तानि येन। तथा **मल्लिं** मल्लिनाथं शरणमहमितः। किंविशिष्टं ? विख्यातगोत्रं। विशेषेण ख्यातं सकललोकप्रसिद्धं गोत्रमिक्ष्वाकुलक्षणं यस्य ते। तथा **खचरगणनुतम्**। ख आकाशे चरन्ति गच्छन्तीति खचराः देवाः विद्याधराश्च। तेषां गणाः संघातास्तैर्नुतं स्तुतं। तथा **सुव्रतं** शरणमहमितः। शोभनानि व्रतानि यस्य यस्माद्वा भव्यानामसौ सुव्रतः। तं। कथम्भूतं ? सौख्यराशिं। सौख्यानां राशिः संघातो यस्मिन्यस्माद्वा भव्यानामसौ सौख्यराशिः। तं। अनन्तसौख्यमयस्तत्सौख्यसम्पादको वेत्यर्थः तथा **नमींद्रं** नमिनाथं शरणमहमितः। किंविशिष्टं ? **देवेंद्रार्च्यम्**। देवैरर्च्यत इति देवेन्द्रार्च्यः। तं। तथा **नेमिचन्द्रं** शरणमहमितः। चंद्रः इव चंद्रः। नेमिश्चासौ चंद्रश्च। यथा चंद्रः सूर्यकरसंतप्तानां संतापापनोदकस्तमोनिकरनिराकारकः सन्मार्गप्रकाशकश्च तथा नेमिनाथोऽपि संसारदुःखसंतप्तानां तत्तापापनोदकोभव्यानामज्ञानतमोनिकर-निराकारकः सन्मार्गप्रकाशकश्चेति। अत एव **भवांतम्**। भवस्य संसारस्यांतो विनाशो यास्मिन्यस्माद्वा भव्यानामसौ भवांतः। तं। तथा **हरिकुलतिलकं**। हरेर्विष्णोः कुलं यादववंशस्तस्य तिलकं मण्डनीभूतं। तथा **पार्श्वनाथं** शरणमहमितः। कथम्भूतम् ? नागेन्द्रवन्द्यं धरणेन्द्रवन्द्यम्। अथवा नागाश्च नागकुमारा इन्द्राश्च तैर्वन्द्यम्। तथा **वर्धमानं** च नागेन्द्रवन्द्यं शरणमहमितः। कया ? **भक्त्या** गुणानुरागविशेषेण। भक्त्येत्येतदन्त्यदीपकम्। ईडे, स्तौमि, इत इत्येतेषां प्रत्येकमभिसम्बन्धनीयम्।

समुद्र की भँवरों के असहनीय दुखों के भयों से मैं त्रस्त हुआ हूँ उन दु:खों के भय से रक्षा करने में समर्थ कुंथुनाथ भगवान का मैं आश्रय लेता हूँ यह अर्थ है। और क्या विशेषता वाले हैं वो? **सिद्धालयस्थम्**- पर-अपर सिद्धि स्वरूप से सम्पन्न जो मुक्त आत्माएँ हैं वही सिद्ध हैं उनमें जो स्थित हैं इसलिए उन्हें सिद्धालयस्थम् कहा है। तथा **श्रमणपतिम्** वह गणधर आदि श्रमणों के पति अर्थात् स्वामी हैं **तथाऽरम**रतीर्थकरदेवं **शरणमहमितः**- अर तीर्थंकर देव की भी मैं शरण को प्राप्त होता हूँ। कैसे हैं वह? **त्यक्तभोगेषुचक्रम्**- भोग ही बाण हैं। क्योंकि वह प्राणियों के मर्म का बेधन करने और पीड़ा उत्पन्न करने वाले होने से उनके चक्र अर्थात् समूह को जिन्होंने छोड़ दिया है अथवा। उन भोग, बाणों व चक्र को जिन्होंने छोड़ दिया है इसलिए उन्हें त्यक्त भोगेषु चक्र अर्थात् वह त्यक्तभोगेषुचक्र हैं। तथा **मल्लिं**- मल्लिनाथ भगवान की शरण को मैं प्राप्त होता हूँ। क्या विशेषता वाले हैं वह? **विख्यातगोत्रं**- विशेष रूप से जिनका गोत्र अथवा इक्ष्वाकु लक्षण वाला कुल लोक में प्रसिद्ध है वह मल्लिनाथ भगवान हैं। तथा **खचरगणनुतम्**- आकाश में जो गमन करते हैं वह खचर, देव और विद्याधरों के द्वारा जो स्तुति को प्राप्त हैं। उनके समूह से जो स्तुत हैं।तथा **सुव्रतं**- मुनिसुव्रतनाथ भगवान की शरण को मैं प्राप्त होता हूँ। शोभनीय व्रत जिनके हैं अथवा जिनसे व्रतों की शोभा है भव्यों के लिए वही सुव्रतनाथ हैं। किस प्रकार के हैं वह? **सौख्य राशिं**- सुख की राशि अर्थात् समूह जिनमें है अथवा जिनसे भव्यों को सुख की राशि प्राप्त होती है इसलिए उन्हें सौख्य राशि कहा जाता है। उस अनंत सुखमय अर्थात् अनंत सुख के संपादक भगवान की मैं स्तुति करता हूँ। तथा **नमींद्रं**- नमिनाथ भगवान की मैं शरण को प्राप्त होता हूँ। क्या विशेषता वाले हैं वह? **देवेंद्रार्च्यम्**- देवों के द्वारा जो पूजा को प्राप्त हैं। इस प्रकार वह देवेंद्रार्च्य कहे जाते हैं। तथा **नेमिचन्द्रं**- नेमिचन्द्र भगवान की मैं शरण को प्राप्त होता हूँ। चन्द्रमा के समान होने से उन्हें चन्द्र कहा जाता है। अथवा नेमिनाथ भगवान ही चन्द्र हैं। कैसे? जैसे चन्द्र सूर्य की किरणों के द्वारा किये गये संतप्त जनों के संताप को दूर करने वाले हैं तथा अहंकार रूपी समूह का निराकरण करने वाले हैं और सन्मार्ग के प्रकाशक हैं उसी प्रकार से नेमिनाथ भगवान भी संसार के दु:खों से संतप्त जनों के संताप का नाश करने वाले हैं। अन्यों के अज्ञान रूपी अंधकार समूह का विनाश करने वाले हैं। और सन्मार्ग के प्रकाशक हैं। **भवांतम्**- इसलिए वे भवांत हैं। भव अर्थात् संसार का अंत या विनाश जिनसे भव्य जीवों का होता है या जिनके हो गया है इसलिए उन्हें भवांत कहते हैं। तथा **हरिकुलतिलकं**- जो हरि अर्थात् विष्णु का कुल यादव वंश है, उसके तिलक अर्थात् शोभा को प्राप्त हैं। तथा **पार्श्वनाथं**- पार्श्वनाथ भगवान की मैं शरण को प्राप्त होता हूँ। कैसे हैं वह? **नागेन्द्रवंद्यं**- नागेन्द्र के द्वारा वह वंदनीय हैं अथवा नाग अर्थात् नागकुमार देव और इन्द्र उन दोनों के द्वारा जो वंदनीय हैं। तथा **वर्धमानं च**- उसी प्रकार से वर्धमान भगवान को भी मैं जो कि नागेन्द्रों के द्वारा वंदनीय हैं, नागकुमार और इन्द्रों के द्वारा वंदनीय हैं उनकी शरण को प्राप्त होता हूँ। कैसे ? **भक्त्या**- भक्ति से। गुणानुराग की विशेषता के द्वारा। यहाँ भक्ति शब्द अंतदीपक है इसलिए भक्त्या शब्द सभी के साथ जोड़ना चाहिए। ईडे अर्थात् स्तुति करता हूँ। इस ईडे शब्द का भी प्रत्येक के साथ संबंध कर लेना चाहिए।

ये रात्रौ दिवसे पथि प्रयततां दोषा यतीनां कुतोऽ -
प्यायाताः प्रलये तु हेतुरमलस्तेषामयं दर्शितः ॥
श्रीमद्गौतमनामभिर्गणधरैर्लोकत्रयोद्योतकैः
सुव्यक्तः सकलोऽप्यसौ यतिपतेर्ज्ञातः प्रभाचन्द्रतः ॥

इति-श्रीगौतमस्वामि-विरचित-
दैवसिकादि-प्रतिक्रमणायाष्टीका
श्रीमत्प्रभाचन्द्र-पण्डितेन
कृतेति मंगलमहा।

ये रात्रौ दिवसे पथि प्रयततां दोषा यतीनां कुतोऽ -
प्यायाताः प्रलये तु हेतुरमलस्तेषामयं दर्शितः॥
श्रीमद्गौतमनामभिर्गणधरैर्लोकत्रयोद्योतकैः
सुव्यक्तः सकलोऽप्यसौ यतिपतेर्ज्ञातः प्रभाचन्द्रतः॥

काव्यार्थ— जो रात्रि में, दिन में, मार्ग में चलने वाले यतियों को दोष उत्पन्न हुए हैं और जो किसी भी प्रकार से दोष आ गये हैं उन सब के प्रलय करने में यह प्रतिक्रमण निर्मल हेतु है उसी के द्वारा जो तीनों लोक को प्रकाशित करने वाले ऐसे गणधर परमेष्ठी के द्वारा यह समस्त प्रतिक्रमण श्रेष्ठ रूप से व्यक्त हुआ है। और प्रभाचन्द्र यतिपति से यह ज्ञात हुआ है अर्थात् जाना गया है। इस प्रकार गौतम स्वामी से विरचित दैवसिक प्रतिक्रमण की टीका श्रीमद् प्रभाचन्द्र पण्डित के द्वारा किया गया यह मंगल महाधिकार पूर्ण हुआ।

''इस प्रकार इस प्रतिक्रमण ग्रन्थत्रयी का प्रथम ग्रन्थ 'दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमण' है। इसकी हिन्दी टीका आचार्य श्री विद्यासागर जी के शिष्य मुनि प्रणम्यसागर ने पूर्ण की।''

बृहत्प्रतिक्रमणम्।

दोषा दैवसिकप्रतिक्रमणतो नश्यन्ति ये नो नृणां
तन्नाशार्थमिमां ब्रवीति गणभृच्छ्रीगौतमो निर्मलाम्।
सूक्ष्मस्थूलसमस्तदोषहननीं सर्वात्मशुद्धिप्रदां
यस्मान्नास्ति बृहत्प्रतिक्रमणतस्तन्नाशहेतुः परः ॥1॥

श्रीगौतमस्वामी दैवसिकादिप्रतिक्रमणादिभिर्निराकर्तुमशक्यानां दोषाणां निराकरणार्थं बृहत्प्रतिक्रमणलक्षणमुपायं विदधानस्तदादौ मंगलाद्यर्थमिष्टदेवताविशेषं नमस्कुर्वन्नाह **णमो जिणाण**मित्यादि। अनेकभवगहनविषमव्यसनप्रापणहेतून्कर्मारातीञ्जयन्तीति जिनाः साकल्येन घातिकर्मक्षयात्प्राप्तकेवल-ज्ञानादिचतुष्टया अर्हन्तः। तेषां नमो नमस्कारोऽस्तु। ननु नमःशब्दयोगे 'नमः स्वस्ती-' त्यादिना चतुर्थी प्राप्नोति, तदयुक्तं, प्राकृते चतुर्थ्या विधानासम्भवात्। अतः सम्बंधमात्रविवक्षायां षष्ठयेव भवति॥ **णमो ओहिजिणाणं**॥ देशतो घातिकर्मक्षयविधानात्प्राप्तदेशावधिज्ञानानां नमः॥ **णमो परमोहिजिणाणं**॥ तद्विधानादेव प्राप्तपरमावधिज्ञानानां नमः॥ **णमो सव्वोहिजिणाणं**॥ सम्प्राप्तसर्वावधिज्ञानानां नमः॥ **णमो अणंतोहिजिणाणं**॥ न विद्यतेऽन्तो यस्यासावनन्तो भवान्तरानुगामी। सोवधिर्येषां ते च ते जिनाश्च देशतः कर्मक्षयकारका महर्षयस्तेषां नमः॥ **णमो कोट्ठबुद्धिणं**॥ कोष्ठे कोशा (ष्ठा) गारिकधृतभूरिधान्यानाम-विनष्टाव्यतिकीर्णानां यथावस्थानं तथैवावस्थानमवधारितग्रंथार्थानां यस्यां बुद्धौ सा कोष्ठबुद्धिस्तपोमाहात्म्याद्विद्यते येषां ते कोष्ठबुद्धयस्तेषां नमः॥ **णमो बीजबुद्धीणं**॥ विशिष्टक्षेत्रे कालादिसहायमेकमप्युप्तं बीजमनेकबीजप्रदं यथा भवति, तथैकबीजपदग्रहणादनेकपदार्थप्रतिपत्तिर्यस्यां बुद्धौ

बृहत् प्रतिक्रमणम्

काव्यार्थ—दैवसिक प्रतिक्रमण से मनुष्यों के जो दोष नाश को प्राप्त नहीं होते उन दोषों का नाश करने के लिए यह सूक्ष्म और स्थूल समस्त दोषों का नाश करने वाली, पूर्ण रूप से आत्मा को शुद्धि प्रदान करने वाली, निर्मल (बृहत् प्रतिक्रमण की) क्रिया को श्री गणधर देव गौतम स्वामी कहते हैं क्योंकि इस बृहत् प्रतिक्रमण से बढ़कर उन दोषों के नाश का हेतु कोई अन्य नहीं हैं।

टीका—दैवसिक आदि प्रतिक्रमण आदि के द्वारा जिन दोषों का निराकरण करने में अशक्य हैं उन्हीं दोषों का निराकरण करने के लिए बृहद् प्रतिक्रमण लक्षण के उपाय को धारण करते हुए श्री गौतम स्वामी उसके प्रारंभ में मंगल आदि के लिए इष्ट देवता विशेष को नमस्कार करते हुए कहते हैं।

णमो जिणाणं—अनेक भवों के गहन, विषम दु:खों की प्राप्ति के लिए हेतुभूत दुष्ट कर्म रूपी शत्रुओं को जो जीतते हैं वे जिन हैं, संपूर्ण रूप से घाति कर्मों के क्षय हो जाने से केवलज्ञान आदि चतुष्टय को प्राप्त करने वाले अर्हंत जिन है उनके लिए मेरा नमस्कार हो।

प्रश्न- नमः शब्द के योग में 'नमः स्वस्ती' इत्यादि सूत्र के द्वारा चतुर्थी विभक्ति होती है।

उत्तर- ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि प्राकृत में चतुर्थी वि. का विधान सम्भव नहीं हैं। यहाँ प्राकृत में संबन्ध मात्र के योग में षष्ठी होती है। जैसे-**णमो ओहि जिणाणं**- घाति कर्मों के एक देश क्षय हो जाने से जिन्हें देशावधि ज्ञान की प्राप्ति हुई है उन जिनों को मेरा नमस्कार हैं। **णमो परमोहि जिणाणं**-इस पूर्वोक्त विधान से ही जिन्होंने परम अवधि ज्ञान को प्राप्त किया उनके लिए मेरा नमस्कार हो। यहाँ संबंध के योग में षष्ठी विभक्ति है। **णमो सव्वोहि जिणाणं**- जिन्होंने सर्वावधि ज्ञान को प्राप्त किया है उन जिनों को मेरा नमस्कार हो। **णमो अणंतोहि जिणाणं**- जिसका अंत नहीं है वह अनंत हैं। ऐसा वह अवधि ज्ञान भवांतर में अनुगामी होता है। वह अवधि ज्ञान जिनके पास में हो वे जिन एक देश रूप से कर्म का क्षय करने वाले होने से महर्षि कहलाते हैं। उनके लिए मेरा नमस्कार हो। **णमो कोट्ठबुद्धीणं**- कोठे में रखे हुए अनेक प्रकार के धान्यों का बिना नष्ट हुए और बिना मिले हुए जो यथा अवस्थान रहना बना रहता है उसी प्रकार से ग्रंथ और अर्थों का जिस बुद्धि में यथावत् अवस्थान रहता है वह कोष्ठ बुद्धि कहलाते हैं। तप के माहात्म्य से यह बुद्धि ऋद्धि प्राप्त होती है। यह बुद्धि जिनके पास में हो उन्हें कोष्ठबुद्धि ऋषि कहते हैं। उनके लिए मेरा नमस्कार हो। **णमो बीजबुद्धीणं**- किसी विशिष्ट क्षेत्र में कालादि की सहायता के साथ में एक बीज भी बोने पर अनंत बीजों को जैसे प्राप्त करा देता है उसी प्रकार से एक बीज पद के ग्रहण से अनेक पदार्थों का ज्ञान जिनकी बुद्धि में हो जाता है वह बीज बुद्धि कहलाते हैं। वह बीज बुद्धि ऋद्धि जिन्हें प्राप्त हुई है उनके लिए मेरा नमस्कार हो। **णमो पदाणुसारीणं**- आदि अथवा अंत में जहाँ कहीं पर भी एक पद के ग्रहण से समस्त ग्रंथ के अर्थ का अवधारण जिनकी बुद्धि में हो जाता है वह पदानुसारिणी बुद्धि है। वह बुद्धि भी तप के माहात्म्य से होती है जिनको यह बुद्धि होती है उन पदानुसारिणी बुद्धि धारी मुनियों को मेरा

सा बीजबुद्धिः। सा तपः-प्रभावाद्विद्यते येषां ते बीजबुद्धयस्तेषां नमः॥ **णमो पदानु-(णु) सारीणं**॥ आदावन्ते यत्र तत्र चैकपदग्रहणात्समस्तग्रन्थार्थस्यावधारणं यस्यां बुद्धौ सा पदानुसारिणी बुद्धिः। सा तपोमाहात्म्याद्विद्यते येषां ते पदानुसारिबुद्धयः। तेषां नमः॥ **णमो संभिण्णसोदा-(द) राणं**॥ सं सम्यक् संकरव्यतिकरव्यतिकरेण (व्यतिरेकेण) भिन्नं विविक्तं शब्दस्वरूपं शृणोतीति सम्भिन्नश्रोत्री ऋद्धिः द्वादशयोजनायाम-नवयोजनविस्तारचक्रवर्तिस्कंधावारोत्पन्ननरकरभाद्य-क्षरानक्षरात्मकशब्दसंदोहस्याऽन्योन्यं विभिन्नस्यापि युगपत्प्रतिभासो यस्मामृद्धौ सत्यां भवति सा सम्भिन्नश्रोत्रीत्यर्थः। सा तपःप्रभावाद्विद्यते येषां ते संभिन्नश्रोतारः। तेषां नमः॥ **णमो सयंबुद्धाणं**॥ वैराग्यकारणं किंचिद्दृष्ट्वा परोपदेशं चानपेक्ष्य स्वयमेव ये वैराग्यं गतास्ते स्वयम्बुद्धाः। तेषां नमः। **णमो पत्तेयबुद्धाणं**॥ प्रत्येकान्निमित्ताद्बुद्धाः (प्रत्येकबुद्धाः) यथा नीलांजनाविलयाद्वृषभादयः। तेषां नमः॥ **णमो बोहियबुद्धाणं**॥ ये भोगासक्ताः शरीरादिष्वशाश्वतादिरूपं प्रदर्श्य वैराग्यं नीतास्ते बोधितबुद्धाः। तेषां नमः॥ एवमुत्तरत्रापि सर्वत्र नमः शब्दो योजयितव्यः॥ **णमो उजुमदीणं**॥ ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानिनाम्॥ **णमो विउलमदीणं**॥ विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानिनाम्॥ **णमो अभिण्णदसपुव्वीणं**[1]॥ अभिन्नदशपूर्वधराणाम्॥ **णमो चोद्दसपुव्वीणं** उत्पादादिचतुर्दशपूर्वधराणाम्॥ **णमो अट्ठंगमहाणिमित्तकुसलाणं**॥ अष्टांगमहानिमित्ते कुशलानां प्रवीणानाम्।

अंगं सरं वंजणलक्खणं च, छिण्णं च भौमं सुमिणंतरिक्खं।
एदे णिमित्ते हियएण किच्चा, जाणंति लोयस्स सुहासुहाणि॥

इत्यभिधानात्॥ **णमो विउव्वणइड्ढिपत्ताणं**॥ विविधा क्रियाऽणुमहदादिरूपतया कायादेः करणं यस्यामृद्धौ सा विक्रियर्द्धिः। तां प्राप्तानाम्॥ **णमो विज्जाहराणं**॥ अंगपूर्ववस्तुप्राभृतादिलक्षणसकल-विद्याधारभूतानाम्॥ **णमो चारणाणं**॥ अष्टविधाश्चारणा भवन्ति।

जलजंघतंतुफलफुल्लबीय-आयाससेढिगइकुसला।
अट्ठविहचारणगणा पइरिक्कमहीसु विहरंति॥

इत्यभिधानात्॥ **णमो पण्णसमणाणं**॥ विद्याधरा हि संतो ये तपो गृह्णंति तेषां प्रज्ञातिशयस्तदैवोत्पद्यत इति ते प्रज्ञाश्रमणा इत्युच्यन्ते। तेषाम्। **णमो आयासगामीणं**॥ चारणशब्देनोक्तानामप्याकाशगामिना-

---

1. दसपुव्वीणमित्येतावानेव - पाठो झा-प्रतौ।

नमस्कार हो। **णमो संभिण्णसोदाराणं**- समीचीन रूप से संकर(भिन्न), व्यतिकर(भिन्न-भिन्न)दोषों से भिन्न कहे हुए शब्द स्वरूप को जो सुनता है वह संभिन्नश्रोत्री ऋद्धि है। बारह योजन के आयाम और नव योजन विस्तार वाले चक्रवर्ती के स्कंधवार (कटक) में रहने वाले मनुष्य और ऊँट आदि के अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक शब्दों के समूह में जो परस्पर में भिन्न-भिन्न होते हैं फिर उनका युगपत् प्रतिभास जिनकी ऋद्धि में हो जाता है वह संभिन्नश्रोत्रि कहलाते हैं। यह भी तप के प्रभाव से होती है। जिनको यह बुद्धि है उन्हें संभिन्नश्रोतार कहते हैं उन मुनियों के लिए मेरा नमस्कार हो। **णमो सयंबुद्धाणं**- वैराग्य के कारण को थोड़ा सा देखकर पर के उपदेश की अपेक्षा के बिना स्वयं ही जो वैराग्य को प्राप्त हो जाते हैं वे स्वयंबुद्ध हैं उनके लिए मेरा नमस्कार हो। **णमो पत्तेय बुद्धाणं**- किसी एक निमित्त से जो वैराग्य को प्राप्त होते हैं वह प्रत्येक बुद्ध है। जैसे- नीलांजना का विनाश देखकर के वैराग्य को प्राप्त हो जाते हैं तो वे प्रत्येकबुद्ध कहलाते हैं, उनके लिए मेरा नमस्कार हो। **णमो बोहियबुद्धाणं**- जो भोगों में आसक्त हैं वे शरीर आदि के विषय में अशाश्वत आदि रूप को देखकर के वैराग्य को प्राप्त हो जाते हैं तो वे बोधितबुद्ध कहलाते हैं उनके लिए मेरा नमस्कार हो। इस तरह सर्वत्र ही नमः शब्द की योजना कर लेनी चाहिए। **णमो उजुमदीणं**- ऋजुमति मनःपर्यय ज्ञानियों के लिए मेरा नमस्कार हो। **णमो विउलमदीणं**- विपुलमति मनःपर्यय ज्ञानियों को मेरा नमस्कार हो। **णमो अभिण्णदसपुव्वीणं**- अभिन्न दशपूर्व धारियों के लिये मेरा नमस्कार हो। **णमो चोद्दसपुव्वीणं**-उत्पाद आदि चतुर्दश पूर्वधारियों के लिए मेरा नमस्कार हो। **णमो अट्ठंगमहाणिमित्तकुसलाणं**- अष्टांग महानिमित्त में कुशल मुनियों को मेरा नमस्कार हो।

गाथार्थ— अंग, स्वर, व्यजंन, लक्षण, छिण्ण, भौम, स्वप्न और अंतरिक्ष इन निमित्तों को हृदय में करके जो लोक के शुभ और अशुभ को जानते हैं वे अष्टांग निमित्त के धारी कहलाते हैं। इस प्रकार से सूत्र का अभिप्राय कहा गया है।

णमो विउव्वणइड्ढिपत्ताणं-विविध प्रकार की क्रिया से शरीर को बहुत छोटा(अणु)व बहुत बड़ा(महत्) आदि कर लेना जिस ऋद्धि में होता है वह विक्रिया ऋद्धि है। उस विक्रिया ऋद्धि को प्राप्त मुनीश्वरों को मेरा नमस्कार हो। **णमो विज्जाहराणं**- अंग, पूर्व, वस्तु, प्राभृत आदि लक्षण वाले समस्त विद्याओं के आधारभूत जो मुनीश्वर हैं वो विद्याधर हैं उनके लिए मेरा नमस्कार हो। **णमो चारणाणं**- आठ प्रकार के चारण होते हैं।

गाथार्थ— जलचारण, जंघ, तंतु, फल, फूल, बीज, आकाश, श्रेणी और गति में कुशल। ये आठ प्रकार के चारण को धारण करने वाले चारण ऋषि इस पृथ्वी पर विहार करते हैं। इस प्रकार के वचन से आठ प्रकार के चारणों का ज्ञान होता है।

णमो पण्णसमणाणं- जो विद्याधर होते हुए भी तप को ग्रहण कर लेते हैं उनको जो प्रज्ञा या अतिशय उसी समय ही उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार से ये प्रज्ञाश्रमण कहे जाते हैं। उनके लिए मेरा नमस्कार हो। **णमो आयासगामीणं**- चारण शब्द के द्वारा कहने पर भी आकाश गामीत्व प्राप्त हो जाता है। उन चारणों से विशिष्ट होने से यहाँ पर उनका (यानी आकाशगामी ऋद्धि धारियों का) पृथक् रूप से ग्रहण किया

मितरचारणेभ्यो विशिष्टत्वात्पुनः पृथगुपादानं॥ **णमो आसीविसाणं**॥ आशिराशंसनं तदेव विषं येषां। म्रियस्वेत्युक्ते हि नियमेन म्रियते। उपलक्षणं चैतत्। तेनाशिस्मृतानामित्यपि गम्यते। शापानुग्रहसमर्थानामित्यर्थः। यदि हि ते परस्यापकारमाशासते तदापकारो भवति। यदोपकारमाशासते तदोपकारो भवतीति॥ **णमो दिट्ठिविसाणं**॥ इदमप्युपलक्षणार्थं। तेन दृष्ट्यमृतानामिति गम्यते। यदि हि तेऽप्रसन्नदृष्ट्या परमवलोकन्ते तदा तद्भस्मकरणे तेषां सामर्थ्यम्। अथ प्रसन्नदृष्ट्या तमवलोकन्ते तदर्द्धिवृद्धिनीरोगतादिकरणे तेषां सामर्थ्यम्। तपःप्रभावादृद्धिविशेष एव हि तेषां, तादृशो, न पुनरुपकारमपकारं वा ते कस्यचित्कुर्वन्ति, शत्रौ मित्रे च तेषां परमोदासीनतोपेतत्वात्॥ **णमो उग्गतवाणं**॥ ये हि पञ्चम्यामष्टम्यां चतुर्दश्यां च प्रतिज्ञातोपवासा अलाभद्वये त्रये वा तथैव निर्वाहयन्ति त एवं प्रकारा उग्रतपसः। तेषाम्॥ **णमोदित्ततवाणं**॥येदेहदीप्त्या प्रहतान्धकारा दीप्ततपसः।तेषाम्॥**णमोतत्ततवाणं**॥ तप्तायःपिण्डपतितजलकणवद्गृहीताहार- शोषणान्नीहार-रहितास्तप्ततपसः। तेषाम्॥ **णमो महातवाणं**॥ पक्षमासोपवासाद्यनुष्ठानपरा महातपसः। तेषाम्॥ **णमो घोरतवाणं**॥ सिंहशार्दूलाद्याकुलेषु गिरिगह्वरादिषु भयानकश्मशानेषु च प्रचुरतरशीतवातातपदंशमशकादियुक्तेषु गत्वा दुर्धरोपसर्गसहनपरा घोरतपसः। तेषाम्॥ **णमो घोरगुणाणं**॥ घोरा अद्भुता महान्तो गुणा येषां ते घोरगुणाः। तेषाम्॥ **णमो घोरपरक्कमाणं**॥ पराक्रमो दुर्धरव्रतधारणे सामर्थ्यम्। घोरोऽचिन्त्यः पराक्रमो येषां ते तथोक्ताः। तेषाम्॥ **णमो घोरगुणबंभचारीणं**॥ घोरो दुर्धरो गुणो निरतिचारतालक्षणो यस्य तद्घोरगुणं दिव्यांगनालिंगनादिभिरप्यक्षुभितचित्तम्। अथवा घोरा अत्यद्भुता गुणा यस्मात्प्राणिनां भवन्ति तद्घोरगुणम्। तच्च तद्ब्रह्म च ब्रह्मचर्यम्। तच्चरन्त्यनुतिष्ठान्तीत्येवंशीला घोरगुणब्रह्मचारिणः। तेषाम्॥ **णमो आमोसहिपत्ताणं**॥ आमोऽपक्काहारः। स एवौषधिः। तां प्राप्ता आमौषधिप्राप्ताः। 'इषा च प्राप्तापन्ने'(जै.

है। उनके लिए मेरा नमस्कार हो। **णमो आसीविसाणं**- आशि अर्थात् आशंसनं वही है विष जिनके लिए वे आशीविष कहलाते हैं। तुम मर जाओ इस प्रकार के कहने पर नियम से वह मर जाता है। यह तो उपलक्षण मात्र है। ऐसे ऋद्धि को धारण करने वाले मुनि स्मरण भी कर लेते हैं तो भी वैसा हो जाता है इसलिए वे भी आशीविष वाले कहलाते हैं, यह जाना जाता है। अर्थात् शाप और अनुग्रह में जो समर्थ है वही आशीविष ऋद्धि वाले कहलाते हैं। यदि वे पर के अपकार की इच्छा करते हैं तो अपकार होता है। यदि वे पर के उपकार की इच्छा करते हैं तो उपकार होता है। यह तात्पर्य है। उनके लिए मेरा नमस्कार हो। **णमो दिट्ठिविसाणं**- दृष्टिविष ऋषियों के लिए नमस्कार हो। यह भी उपलक्षण के लिए है। इसलिए दृष्टि में अमृत भी रहता है इस प्रकार से भी जाना जाता है। यदि वे मुनि अप्रसन्न दृष्टि से दूसरों को देखते हैं तो वह उसको भस्म करने में भी समर्थ हो जाते हैं। यदि वे मुनिराज प्रसन्न दृष्टि से दूसरों को देखते हैं तो ऋद्धि-वृद्धि, निरोगता आदि को करने में भी उनकी सामर्थ्य होती हैं। तप के प्रभाव से ऋद्धि विशेष होने पर ही इस प्रकार से देखा जाता है। किंतु वे किसी भी प्रकार का उपकार अथवा अपकार किसी के लिए नहीं करते हैं। क्योंकि ऐसे मुनिमहाराज शत्रु और मित्र में परम उदासीनता को प्राप्त होते हैं। उनके लिए मेरा नमस्कार हो। **णमो उग्गतवाणं**- जो पंचमी, अष्टमी और चतुर्दशी में प्रतिज्ञा करके उपवास करते दोअलाभ या तीनअलाभ होने पर भी उसी तरह से उनका निर्वाह करते हैं वे इस प्रकार के तप करने वाले उग्रतपसी कहलाते हैं। उनके लिए मेरा नमस्कार हो। **णमो दित्ततवाणं**- देह की दीप्ती से जिन्होंने अंधकार को नष्ट कर दिया है वे दीप्त तप वाले मुनिराज हैं। उनके लिए मेरा नमस्कार हैं। **णमो तत्ततवाणं**- तप्त लोह के पिण्ड पर गिरी हुई जल के कण के समान जिनके शरीर में ग्रहीत हुआ आहार सूख जाता है और जो निहार से रहित होते हैं वह तप्ततपस्वी कहलाते हैं उनके लिए मेरा नमस्कार हो। **णमो महातवाणं**- पक्ष, मास उपवास आदि के अनुष्ठान में तत्पर रहने वाले महा तपस्वी हैं उनके लिए मेरा नमस्कार हो। **णमो घोरतवाणं**- सिंह, शार्दूल आदि से भरे हुए गिरि, गह्वर आदि स्थानों में और भयानक श्मशान आदि में बहुत अधिक शीत, वात, आतप, दंशमशक आदि से युक्त स्थानों में भी जाकर के जो दुर्द्धर उपसर्ग को सहन करने में तत्पर रहते हैं वह घोर तपसी कहलाते हैं। उनके लिए मेरा नमस्कार हो। **णमो घोरगुणाणं**- घोर अर्थात् अद्भूत्, महान जिनके गुण है वे घोर गुण वाले हैं उनके लिए मेरा नमस्कार हो। **णमो घोरपरक्कमाणं**- दुर्धर व्रतों के धारण करने में सामर्थ्य का नाम ही पराक्रम है। जिनके पास में ऐसा पराक्रम घोर अर्थात् अचिन्त्य होता है वे घोरपराक्रमधारी ऋषिराज हैं उनके लिए मेरा नमस्कार हो। **णमो घोर गुणबंभचारीणं**- घोर अर्थात् दुर्धर निरतिचारता लक्षण वाला गुण जिनके पास में है वे घोरगुण हैं। उनके चित्त दिव्यागंनाओं के आलिंगन आदि के द्वारा भी क्षुभित नहीं होते हैं। अथवा घोर अर्थात् अतिअद्भुत् गुण जिससे प्राणियों को प्राप्त हो जाते हैं वह घोर गुण है। और वह गुण ही ब्रह्मचर्य है। उस घोर गुण वाले ब्रह्मचर्य का जो अनुष्ठान करते हैं वे घोर गुण ब्रह्मचारी कहलाते हैं। उनके लिए मेरा नमस्कार हो। **णमो आमोसहिपत्ताणं**- अपक्व आहार को आम कहते हैं, वही औषधि है उस औषधि को जो प्राप्त हैं वह आमौषधि प्राप्त ऋद्धिधारी मुनीश्वर हैं उनके लिए मेरा

1/3/20) इति सविधिः॥ **णमो खेलोसहिपत्ताणं**॥ खेलो (क्ष्वेलो) निष्ठीवनम्। स एवौषधिस्तां प्राप्तानां सा वा प्राप्ता यैस्तेषाम्॥ **णमो जल्लोसहिपत्ताणं**॥ सर्वांगमलो जल्लः। स एवौषधिः। तां प्राप्तानां सा वा प्राप्ता यैस्तेषाम्॥ **णमो विप्पोसहिपत्ताणं**॥ विप्रुषो ब्रह्मबिन्दवः। स एवौषधिः। तां प्राप्तानां सा वा प्राप्ता यैस्तेषाम्॥ **णमो सव्वोसहिपत्ताणं**॥ सर्वं मूत्रपुरीषनखकेशादिकमौषधिः। तां प्राप्तानां सा वा प्राप्ता यैस्तेषाम्॥ **णमो मणबलीणं**॥ मनोबलं विद्यते येषां ते मनोबलिनः। तेषाम्॥ एवं **णमो वचिबलीणं**॥ वचोबलिनाम्॥ **णमो कायबलीणं**॥ कायबलिनाम्॥ **णमो खीरसवीणं**॥ क्षीरस्य स्रावः स्रवणं स्वादो वा (क्षीरस्रावः)। सोऽस्ति येषां ते क्षीरस्राविणः क्षीरस्वादिनो वा। तेषाम्। कदशनमपि हि तेषां पाणौ पतितं तपोमाहात्म्यात्तत्क्षीरं स्रवति स्वदते वा। एवं **णमो सप्पिसवीणं**॥ सर्प्पिर्घृतम्॥ तत्स्राविणां तत्स्वादिनां वा॥ **णमो महुरसवीणं**॥ मधुरशब्देनेह मधुरो रसो ग्रह्यते। मधुररसस्राविणां मघुररसस्वादिनां वेत्यर्थः॥ **णमो अमयसवीणं**॥ अमृतस्राविणाममृतस्वादिनां वा॥ **णमो अक्खीणमहाणसाणं**॥ अक्षीणं महानसं रसवती येषां तेऽक्षीणमहानसाः। तेषाम्। यतो हि भाजनादुद्धृत्य भोजनं तेभ्यो दत्तं तच्चक्रवर्तिस्कन्धावारेऽपि भोजिते वृद्धिविशेषवशान्न क्षीयते आ-अस्तात्॥ **णमो सिद्धायदणाणं**॥ सिद्धानां मुक्तात्मनामायतनानि निर्वाणस्थानानि तेषां नमः॥ **णमो भयवदो**॥ इत्यादि। भगवतः सहजविशिष्टमत्यादिज्ञानत्रयवतः पूजातिशयवतो वा॥ **महदिमहावीरवड्ढमाण-बुद्धरिसिणो चेदि**॥ महतिमहावीरश्चासौ वर्धमानश्चासावन्तिमतीर्थकरदेवः। बुद्धश्च स्वहेयोपादेयविवेकसम्पन्नः। ऋषिश्च प्रत्यक्षवेदी। भगवतो हि गर्भावतारादौ पित्रोरिन्द्रादिविनिर्मितां विशिष्टां पूजां रत्नवृष्टिं स्वस्य चर्द्धिवृद्ध्यादिकं दृष्ट्वा वर्धमान इति नाम कृतम्। अव समन्ताद् वृद्धो मानः पूजातिशयो ज्ञानाद्यतिशयो वा यस्मादिति कृत्वा जन्माभिषेके च लघुशरीरदर्शनादाशंकितवृत्तेरिन्द्रस्य स्वसामर्थ्यख्यापनार्थं पादांगुष्ठेन मेरू-संचालनादिन्द्रेण वीर इति नाम कृतम्। कुमारकाले चामलीक्रीडायां क्रीडितः संगमदेवेन

नमस्कार हो। **णमो खेलोसहिपत्ताणं**- खेल, निष्ठिवन अर्थात् थूक को कहते हैं। वह ही औषधि है, उस औषधि ऋद्धि को जिनने प्राप्त किया है उनके लिए मेरा नमस्कार हो। अथवा जिनके द्वारा ऐसी औषध ऋद्धि प्राप्त की गई है, उनके लिए मेरा नमस्कार हो। **णमो जल्लोसहिपत्ताणं**- सर्वांग का मल जल्ल कहलाता है। वह ही औषधि है उस औषधि को प्राप्त किये हुए अथवा जिनके द्वारा ऐसी औषधि प्राप्त हो जाए उन मुनीश्वर को जल्लौषधि ऋद्धि धारी ऋषि कहते हैं उनके लिए मेरा नमस्कार हो। **णमो विप्पोसहिपत्ताणं**- विप्रुष ब्रह्म बिंदु कहलाता है वह ही औषधि है। उसको प्राप्त किये मुनीश्वरों को अथवा जिनके द्वारा ऐसी ऋद्धि प्राप्त की गई है उनके लिए मेरा नमस्कार हो। **णमो सव्वोसहिपत्ताणं**- मूत्र, मल, नख, केश आदि सभी कुछ जिनकी औषधि हो गई है उस औषधि को प्राप्त हुए मुनीश्वरों के लिए अथवा जिनके द्वारा वह ऋद्धि प्राप्त हुई है उनके लिए मेरा नमस्कार हो। **णमो मणबलीणं**- जिनके लिए मन का बल विद्यमान है वह मनोबली है। उनके लिए मेरा नमस्कार हो। **णमो वचिबलीणं**- उसी प्रकार से वचनबली मुनीश्वरों को मेरा नमस्कार हो । **णमो कायबलीणं**- कायबली मुनीश्वरों को मेरा नमस्कार हो। **णमो खीरसवीणं**- क्षीर अर्थात् दूध का स्राव। स्रवण अर्थात् दूध के समान आस्वाद जिनके होता है वे क्षीरस्रावी हैं अथवा जो भोजन में क्षीर का आस्वाद लेते हैं वे क्षीरस्रावि हैं। उनके लिए मेरा नमस्कार हो। कदशन अर्थात् बुरा भोजन होने पर भी जिनके हाथ में आ जाने पर तप के माहात्म्य से क्षीर की तरह उसमें स्राव होने लग जाता है या क्षीर का स्वाद आता है वे क्षीरस्रावी ऋद्धिधारी मुनिमहाराज कहलाते हैं। उनके लिए मेरा नमस्कार हो **।णमो सप्पिसवीणं**- सर्पिष् अर्थात् घी। घी का स्राव जिनके हाथ में होता हो अथवा स्वाद जिनको आता हो वे सर्पिस्रावी ऋद्धिधारी मुनिराज हैं। उनके लिए मेरा नमस्कार हो। **णमो महुरसवीणं**- मधुर शब्द से यहाँ पर मधुर रस ग्रहण किया जाता है। उस मधुर रस का स्राव जिनके लिए होता हो अथवा मधुर रस का स्वाद जिनको आता हो वे मधुररसस्रावी मुनीश्वर हैं उनके लिए मेरा नमस्कार हो। **णमो अमयसवीणं**- अमृतस्रावी। अमृत का स्राव जिनके भोजन में होता है अथवा जिनको भोजन करने पर इसका स्वाद होता है वो अमृतस्रावी मुनीश्वर हैं । उनके लिए मेरा नमस्कार हो। **णमो अक्खीणमहाणसाणं**- जिनके लिए रसोई घर में रसवान भोजन कम नहीं होता है वे अक्षीण महानस वाले मुनीश्वर हैं। उनके लिए मेरा नमस्कार हो। क्योंकि जिस पात्र से निकाल करके भोजन उनके लिए दिया गया, उस भोजन को चक्रवर्ती का स्कंधवार (कटक-सेना)भी यदि खा लेता है तो भी उस पात्र में उसकी वृद्धि विशेष होती ही रहती है और वो भोजन कभी क्षीणता को प्राप्त नहीं होता जब तक कि सायंकाल न हो जाए इसलिए वे अक्षीण महानस ऋद्धिधारी मुनीश्वर कहलाते हैं। उनके लिए मेरा नमस्कार हो। **णमो सिद्धायदणाणं**- सिद्ध अर्थात् मुक्त आत्माएँ। उनके आयतन अर्थात् निर्वाण स्थान हैं उनके लिए मेरा नमस्कार हो। **णमो भयवदो**- सहज विशिष्ट मत्यादि तीन ज्ञान वाले या पूजा के अतिशय को प्राप्त भगवान हैं उनके लिए मेरा नमस्कार हो। **महदिमहावीरवड्ढमाणबुद्धरिसिणो चेदि**- महतिमहावीर ही वह वर्धमान है, वह ही अंतिम तीर्थंकर देव हैं। स्वयं हेय-उपादेय के विवेक से सम्पन्न होने से वह बुद्ध हैं और प्रत्यक्ष ज्ञान वाले होने से वह ऋषि हैं। भगवान के

स्वविमानस्खलनाद्भयोत्पादनार्थं महाफटाटोपोपेतं भयानकं सर्परूपं विकृत्य वृक्षो वेष्टितः। भगवांश्च तन्मस्तकादौ पादन्यासं कृत्वा वृक्षादुत्तीर्णः। ततस्तेन महावीर इति नाम कृतम्। तपो गृहीत्वा वाराणस्यां कायोत्सर्गेण स्थितस्य रुद्रकृतोपसर्गजयात्तेन महतिमहावीर इति नाम कृतम्॥ **चेदि**॥ चशब्देन नाम्नां भगवति समुच्चयः कृतः। इतिशब्दः प्रकारार्थे। एवप्रकारा इष्टदेवतात्वेन शास्त्रादौ स्तोतव्या इति। ननु चतुर्विंशतितीर्थकृतां सर्वेषामपि स्तुत्यत्वात्किमर्थमत्र ग्रन्थकृता वर्धमानस्वामिन एव स्तुतिः कृतेत्याशंकायामाह-जस्स इत्यादि। **जस्स**-यस्य भगवतः। **अंतिगं**॥ अन्ते समीपे भवमन्तिकम्॥ **धम्मपहं**॥ धर्ममार्गम्॥ **णिगच्छे**॥ निश्चयेन नियमेन वा गच्छे गच्छामि प्रतिपद्ये। प्रापोमीत्यर्थः॥ **तस्संतियं**॥ तस्य भगवतोऽन्तिकं समीपं यथा भवत्येवम्॥ **वेणयियं**॥ वैनयिकं विनयम्। विनय एव वैनयिकम्। विनयादित्वात्स्वार्थे ठण्॥ **पउंजे**॥ प्रयुंजे कुर्वेहम्। अन्तिकमिति धर्मपथं वैनयिकमित्यनयोरुभयोः क्रियाविशेषणमेतत्। केन वैनयिकं प्रयुंजे? कायेन वाचा मनसापि। किं कदाचित्तं प्रयुंजे? **णिच्चं**॥ नित्यं सर्वकालम्। न केवलं वैनयिकमेव प्रयुंजे, अपि तु **सक्कारए**॥ नमस्करोमि तं भगवन्तम्। केन? **सिरपंचमेण**॥ शिरः पंचमं यत्र जानुद्वयकरद्वययोः।

इति गणधर वलयाख्यः प्रतिक्रमणामंगलदण्डकः॥

गर्भावतरण आदि में माता पिता की इन्द्र आदि के द्वारा विशेष पूजा की जाती है, रत्न वृष्टि की जाती है और स्वयं की ऋद्धि की वृद्धि आदि को देखकर के उनका नाम **वर्धमान** किया गया। अव अर्थात् चारों ओर से जिनका मान, पूजा का अतिशय अथवा ज्ञान आदि का अतिशय वृद्धि को प्राप्त हुआ है ऐसा करके जन्माभिषेक के समय पर लघु शरीर के देखने से इंद्र को आशंका उत्पन्न हुई तो उन भगवान ने अपनी सामर्थ्य दिखाने के लिए अपने पाद के अंगुल से मेरु को हिला दिया इसलिए इन्द्र के द्वारा **वीर** यह नाम रखा गया। कुमारकाल में आमली क्रीडा में खेलते हुए संगम देव के द्वारा अपने विमान के रूकने के कारण उसने भय पैदा करने के लिए महाफण वाला आटोप बना लिया। अपने भयानक सर्प रूप को बड़ा करके वृक्ष से वेष्टित हो गया। भगवान उसके मस्तक आदि पर अपने चरण रख करके वृक्ष से उतर आये इसलिए उनके द्वारा **महावीर** यह नाम रखा गया। तप को ग्रहण करके वाराणसी में कायोत्सर्ग से स्थित थे। तब उनके लिए रुद्र के द्वारा उपसर्ग किया गया। उस उपसर्ग को जीत लेने से वह **महतिमहावीर** इस नाम को प्राप्त हुए। चेदि-च शब्द से भगवान के इन नामों का समुच्चय किया गया है। इति शब्द प्रकारार्थ में है अर्थात् इस प्रकार भगवान के अलग-अलग नाम हैं। इस प्रकार इष्ट देवतापने से शास्त्र के आदि में वे स्तुति के योग्य हैं।

प्रश्न- चतुर्विंशति तीर्थंकर ही स्तुति के योग्य हैं फिर किस लिए ग्रन्थकार द्वारा वर्धमान स्वामी की ही यहाँ पर स्तुति की गई है?

उत्तर- **जस्सं**- जिन भगवान के। **अंतिगं**-निकट में। **धम्मपहं**-धर्ममार्ग को। **णिगच्छे**-निश्चित रूप से, नियम से मैं प्राप्त हुआ हूँ। **तस्संतियं**- उन्हीं भगवान के निकट उन्हीं की समीपता को मैं प्राप्त करता हूँ। **वेणयियं**- विनय। विनय ही वैनयिक हैं। 'विनयादित्वात्स्वार्थे ठण्' इस सूत्र के अनुसार विनय शब्द में ठण् प्रत्यय लगकर के वैनयिक शब्द बना है। **पउंजे**- अर्थात् मैं उनके लिए विनय से प्रयुक्त होता हूँ। उनके निकट में धर्म पथ को और वैनयिक अर्थात् विनय के साथ इन दोनों को ही यहाँ क्रिया विशेषणों के रूप में प्रयुक्त किया गया हैं। किससे मैं वैनयिक क्रिया में प्रयुक्त होता हूँ? काय से, मन से, वचन से। क्या कदाचित् होता हूँ? **णिच्चं**- नित्य सर्वकाल होता हूँ। न केवल वैनयिक कर्म में प्रयुक्त होता हूँ। **अपि तु सक्कारए**- उन भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ। किसके द्वारा? **सिरपंचमेण**- दोनों जंघाए और दोनों हाथों को और पाँचवे सिर को झुका करके पंचांग नमस्कार करता हूँ।

इस तरह गणधर वलय नाम का प्रतिक्रमण का मंगल दण्डक समाप्त हुआ।

सुधम्मे इत्यादि। श्रीगौतमस्वामी-इष्टोपयोगसंबोधनेन भव्यान्संबोधयन् **सुधम्मे** इत्याद्याह॥ **आउसंतो**॥ आयुष्मंतो भव्या **मे** मया सुदं श्रुतम्। इह भरतक्षेत्रे खलु स्फुटं **भयवदा** भगवताऽहिंसादीनि व्रतानि **सम्मं धम्मोति** सम्यग्धर्म इति-**उवदेसिदाणि** उपदिष्टानि। तच्छ्रवणं च मम तत्स्वरूपप्रतिपादकाद्भगवतीयदिव्यध्वनेः सकाशात्संजातम्। आयुष्मन्त इति च संबोधनं सर्वेषामिष्टम्। तद्धर्मत्वप्ररूपण उपयोगे च व्रतानां हि धर्मत्वप्ररूपणमायुष्मतामेव सफलम्, चिरं तैः स्वयं तदनुष्ठानस्यान्येषां तत्प्रतिपादनस्य च सम्भवात्। नेतरेषां तद्विपर्ययात्। कथम्भूतेन भगवता? **समणेण** श्रमणेण परमयतिना। किन्नाम्ना? **महाइमहावीरेण**॥ महातिमहावीरनाम्ना। पुनरपि किंविशिष्टेन? **महाकस्सवेण**॥ महांश्चासौ काश्यपश्च काश्यपगोत्रस्तेन। तथा॥ **सव्वण्णुणा**[1]॥ सर्वज्ञेन केवलज्ञानेन निखिलार्थपरिज्ञानवता॥ **सव्वलोयदरसिणा**[2]॥ लोक इत्युपलक्षणमलोकस्य। तेन केवलदर्शनेन लोकालोकदर्शिनेति गम्यते। अथ ज्ञानदर्शनयोः को विशेषः? सविशेषनिर्विशेषवस्तुग्रहणकृतो नयोर्विशेषः। उक्तं च-

जं सामण्णं गहणं भावाणं णेव कट्टुमायारं।
अविसेसिऊण अट्ठे दंसणमिदि भण्णदे समए॥

पुनरपि किंविशिष्टेन तेन? **जाणंता पस्संता**॥ जानता पश्यता च। काम्? **आगदिं गदिं च**॥ कर्मवशादिह क्षेत्रे क्षेत्रान्तरादागतिमेतस्माच्च क्षेत्रात्क्षेत्रान्तरे गतिम्। कस्य? **(लोयस्स॥)** लोकस्य प्राणिगणस्य। कथंभूतस्य? **सदेवासुरमाणुसस्स**॥ देवासुरमानुषसहितस्य त्रैलोक्योदरवर्तिनः प्राणिगणस्येत्यर्थः। देवशब्देन ह्यूर्ध्वलोकवर्तिनः प्राणिगणस्योपलक्षणम्। मानुषशब्देन तु तिर्यग्लोकवर्तिनः। असुरशब्देन पुनरधोलोकवर्तिन इति। तथा॥ **चवणोववादं**॥ च्यवनं मृत्युमुपेत्य गत्वोपपद्यते जायत इत्युपपादव्युत्पत्तिः। तदुभयलोकस्य जानता पश्यता॥ तथा। **बंधं**॥ कर्मणां श्लेषम्॥ **मोक्खं**॥ मोक्षं देशतः साकल्येन वा कर्मनिर्जराम्॥ **इड्ढिं**॥ चक्रवर्तिसौधर्मादीनामृद्धिम्॥ **ठिदिं**॥ आयुषां स्थितिम्॥ **जुदिं**॥ द्युतिं तेजः॥ **अणुभागं**॥ कर्मविपाकं कर्मणां फलदानसामर्थ्यम्॥ **तक्कं**॥ तर्कम्। विचिन्तितार्थं तर्कशास्त्रं वा॥ **कलं**॥ द्वासप्ततिकलां गणितं वा॥ **मणो**॥

---

1. 'सव्वण्हुणा' -इति झा-प्रतौ पाठः।
2. 'दरिसिणा' -इति पाठः।

सुधम्मे इत्यादि। श्री गौतम स्वामी इष्ट उपयोग के संबोधन से भव्यों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं। सुधम्मे इत्यादि। **आउसंतो**- हे आयुष्मान भव्य जीवों ! मैंने सुना है। **इह**-इस भरत क्षेत्र में निश्चय से **भयवदा**- भगवान के द्वारा अहिंसा आदि व्रतों को ही **सम्मं धम्मोति**- सम्यग् धर्म इति **उवदेसिदाणि**- उपदिष्ट किया गया अर्थात् कहा गया है। मैंने वह धर्म उस स्वरूप का प्रतिपादक करने वाली भगवान की दिव्य ध्वनि से सुना है। हे आयुष्मान! इस प्रकार यह सम्बोधन सभी के लिए इष्ट है। उस धर्म के प्ररूपण करने में और उपयोग में यह सम्बोधन इष्ट है क्योंकि व्रतों के धर्मत्व का प्रकाश आयुष्मान जीवों के ही सफल है। तथा चिरकाल तक उनके द्वारा उस धर्म के अनुष्ठान की और दूसरों को उसके प्रतिपादन की संभावना रहती है। अपर जनों के लिए प्रतिपादन करने से उसमें विपरीतता आ जाती है। कैसे हैं वह भगवान? जिनके द्वारा यह धर्म उपदिष्ट किया गया है। **सममेण**- वह श्रमण हैं, परम यति हैं। किस नाम वाले हैं ? **महाइमहावीरेण**- महतिमहावीर नाम से वह भगवान हैं। पुनः क्या विशेषता वाले हैं? **महाकस्सवेण**-उनका महान काश्यप गोत्र है। उन काश्यप गोत्री भगवान के द्वारा कहा गया है उसी प्रकार से **सव्वण्णुणा**- वह भगवान सर्वज्ञ हैं अर्थात् केवलज्ञान के द्वारा समस्त पदार्थों के परिज्ञान करने वाले हैं। **सव्व लोय दरसिणा**- लोक इस प्रकार से यह उपलक्षण है इसलिए अलोक का भी ज्ञान करना चाहिए। इसलिए केवलदर्शन के द्वारा वह लोक और अलोक को देखने वाले हैं ऐसा जाना जाता है।

प्रश्न- ज्ञान और दर्शन में क्या विशेषता है?

उत्तर-सविशेष वस्तु का ग्रहण करना और निर्विशेष वस्तु का ग्रहण करना यही इन दोनों ज्ञान और दर्शन की विशेषता है।कहा भी है-

गाथार्थ—जो पदार्थों के आकार को ग्रहण किये बिना केवल सामान्य का ग्रहण करता है और बिना किसी विशेषता से पदार्थों को ग्रहण करता है, आगम में उसे दर्शन कहा गया है। **जाणंता पस्संता**- वह जानते हुए भी है और देखते हुए भी है। किसको? **आगदिं गदिं च**- कर्म के वश से इस क्षेत्र में क्षेत्रान्तर से आना आगति है और इस क्षेत्र से क्षेत्रान्तर में चले जाना गति है। आगति और गति किसकी होती है? **लोयस्स**- समस्त प्राणियों की। कैसे लोक की? **सदेवासुरमाणुसस्स**- देव, असुर, मनुष्य से सहित तीन लोक के उदर में रहने वाले समस्त प्राणी गणों की आगति, गति होती है। देव शब्द से देवलोक में रहने वाले प्राणिगण यहाँ उपलक्षण हैं। मनुष्य शब्द से यहाँ पर तिर्यक् लोकवर्ति जीवों का ग्रहण किया गया है। असुर शब्द से यहाँ पर अधोलोकवर्ति जीवों का ग्रहण किया गया हैं। तथा **चवणोववादं**- च्यवन अर्थात् मृत्यु को प्राप्त करके (उपपाद स्थान में)जाकर के उत्पन्न हो जाना उपपाद है यह उपपाद शब्द की व्युत्पत्ति है। इस तरह दोनों लोकों को वह जानने और देखने वाले सर्वज्ञ भगवान हैं। तथा **बंधं**- कर्मों का श्लेष संबंध बंध कहलाता है। **मोक्खं**-एक देश रूप से अथवा पूर्ण रूप से कर्म की निर्जरा होना मोक्ष है। **इड्ढिं**- चक्रवर्ती , सौधर्म आदि जीवों का वैभव ऋद्धि है। **ठिदिं**- आयु कर्म की स्थिति को स्थिति कहते हैं। **जुदिं**- द्युति अर्थात् तेज। **अणुभागं**- कर्म के फल देने की सामर्थ्य अनुभाग है। **तक्कं**- तर्क। विशेष रूप से चिन्तित पदार्थ को तर्क कहते हैं अथवा तर्क शास्त्र को भी तर्क कहते हैं। **कलं**- 72 कलाएँ अथवा गणित को कल कहते हैं। **मणो**- दूसरों के चित्त को मन

परकीयं चित्तम्॥ **माणसियं**॥ मानसिकं मनश्चेष्टितम्॥ **भुत्तं**॥ पूर्वमनुभूतम्॥ **कयं**॥ पूर्वकृतं॥ **पडिसेवियं**॥ पुनः सेवितं॥ **आइकम्मं**॥ कर्मभूम्यनुप्रवेशे प्रथमतः प्रवृत्तमसिमषिकृष्यादिकं कृत्रिमं कर्म॥ **अ-रहकम्मं**॥ अरहःकर्म प्रकटं कर्म। अकृत्रिमं द्वीपसमुद्रादि, तस्य सर्वदाऽतिरोहिततया प्रकटत्वात्। अर्हतो वा कर्मानुष्ठनं '**अरहकम्मं**'॥ **सव्वलोए**॥ त्रिचत्वारिंशदधिकशतत्रयरज्जुपरिमाणे लोके॥ **सव्वजीवे**॥ सर्वजीवान्॥ **सव्वभावे**॥ सर्वभावांस्तत्पर्यायान्॥ **सव्वं समं**॥ आगत्यादिकं सर्वभावपर्यन्तमेतत्सर्वं समं युगपज्जानता पश्यता। इत्थंभूतेन भगवता धर्मोपदेशार्थमिह खलु **विहरमाणेण** विहरता। केषां तानि धर्मोपदिष्टानि? **समणाणं**॥ मुनीनां। यानि चोक्तप्रकारेण भगवता॥ **पंचमहव्वयाणि**॥ पंचमहाव्रतानि॥ **राइभोयणवेरमणछट्ठाणि**॥ विरमणं व्यावृत्तिः। विरमणमेव वैरमणं। प्रज्ञादित्वात्स्वार्थिकोऽण्। रात्रौ भोजनं रात्रिभोजनं। तस्माद्विरमणं व्यावृत्तिः। तत् षष्ठं येषु तानि रात्रिभोजनवैरमणषष्ठानि॥ **सभावणाणि**॥ सह भावनाभिः पंचविंशतिप्रकाराभिर्वर्तमानानि॥ **समाउगपदाणि**॥ मातृकपदैः पंचसमितित्रिगुप्तिप्रतिपादकपदैः सह वर्तमानानि॥ **स-उत्तरपदाणि**॥ भावनापदमातृकपदेभ्योऽन्यानि पदान्युत्तरपदानि। तैः सह वर्तमानानि सम्यग्धर्मा इत्युपदिष्टानि। तेषां स्वरूपं तं जहेत्यादिना प्ररूपयति। तदुक्तविशेषणविशिष्टानां महाव्रतानां स्वरूपं यथा भगवता क्रमेणोपदिष्टं तथैव ग्रन्थकारः प्रतिपादयति॥ **पढमे**॥ इत्यादिना पढमे (प्रथमे) पंचानां मध्य आद्ये॥ **महव्वदे**॥ महाव्रते। अभिसन्धिकृतो हि नियमो व्रतं। महच्च तद्व्रतं च महाव्रतं, साकल्येन विरतिसद्भावान् महद्भिरनुष्ठितत्वान्महाकार्य-संसाधकत्वाच्च महाव्रतमित्युच्यते। तस्मिन्॥ **पाणादिवादादो वेरमणं**॥ प्राणानामिन्द्रियादिदशप्रकाराणामतिपातो व्यपरोपणं विनाशनं। तस्माद्विरमणं व्यावृत्तिः कर्तव्या। प्राणातिपातविरमणस्वरूपं प्रथमं महाव्रतमित्यर्थः। एवं द्वितीये महाव्रते मृषावादतो वैरमणं, तृतीये महाव्रतेऽदत्तादानतो वैरमणं, चतुर्थे महाव्रते मैथुनाद्वैरमणं। मिथुनस्य कर्म मैथुनं स्त्रीपुरुषयोः कामोद्रेकात्सरागं चेष्टितं। तस्माद्वैरमणं। पंचमे महाव्रते परिग्रहाद्वाह्याद्भ्यन्तराच्च वैरमणं। षष्ठेऽणुव्रते रात्रिभोजनाद्वैरमणं। कथमस्याणुव्रतत्वमिति चेत्, हिंसादिवदत्र साकल्येन विरतेरभावात्। रात्रावेव हि भोजननिवृत्तिर्न पुनर्दिवसे,

कहते हैं। **माणसियं**- मन की चेष्टा को मानसिक कहते हैं। **भुत्तं**- जो पहले अनुभूत हुआ है वह भुक्त है? **कयं**-जो पहले किया गया है। **पडिसेवियं** -जो पुनः सेवन किया जा रहा है वह प्रतिसेवन है। **आइकम्मं**- कर्म भूमि के प्रवेश के समय पर सबसे पहले जो असि, मसि, कृषि आदि की प्रवृत्ति हुई वह सभी कृत्रिम कर्म हैं। इसलिए वह आदि कर्म हैं। **अरहकम्मं**- अरह कर्म अर्थात् जो कर्म प्रकट है वह अरह कर्म है। अकृत्रिम द्वीप, समुद्र आदि भी अरह कर्म कहलाते हैं क्योंकि सर्वदा कभी भी तिरोहित स्वभाव वाले नहीं होने से सदा प्रगट हैं इसलिए वह अरह कर्म हैं। अथवा अरहंत भगवान का कर्म अनुष्ठान अरहकर्म कहलाता है। **सव्वलोए**- 343 घन राजू प्रमाण लोक में। **सव्वजीवे**- सभी जीवों के। **सव्वभावे**-समस्तभावों को अर्थात् उनकी पर्यायों को। **सव्वं समं**-आगति आदि सर्व भाव पर्यंत इन समस्त भावों को युगपत् जानते और देखते हैं। इस प्रकार से भगवान ने धर्म का उपदेश देने के लिए इस लोक में **विहरमाणेण**- विहार करते हुए। किनके लिए धर्म का उपदेश दिया है? **समणाणं**- मुनियों के लिए। जो कि इस प्रकार से भगवान के द्वारा कहा गया है। **पंचमहव्वयाणि**- पाँच महाव्रत हैं। **राइभोयणवेरमणछट्ठाणि**- विरमण अर्थात् उससे दूर हो जाना। विरमण ही वैरमण कहलाता है। 'प्रज्ञादित्यात्स्वार्थिकोऽण्' इस सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर विरमण का वैरमण हो जाता है क्योंकि आदि स्वर की वृद्धि हो जाती है। अतः रात्रि में भोजन रात्रिभोजन है उससे विरमण अर्थात् दूर हो जाना रात्रिभोजन वैरमण यह छट्ठा व्रत है। पंचमहाव्रत तथा छठा रात्रिभोजन का त्याग है। **सभावणाणि**- 25 प्रकार की भावनाओं के साथ ये व्रत वर्तमान अर्थात् रहते हैं। **समाउगपदाणि**- पाँच समिति और तीन गुप्तियों के प्रतिपादक मातृका पदों के साथ में यह व्रत रहते हैं। **स उत्तर पदाणि**- भावना पद और मातृका पदों के अलावा अन्य जो पद हैं वे उत्तर पद हैं। उनके साथ भी ये व्रत रहते हुए समीचीन धर्म है, यह उपदेश दिया है। उनके स्वरूप को- तं जहेत्यादिना आदि रूप से प्ररूपण करते हैं। इन उक्त विशेषणों से विशिष्ट महाव्रतों के स्वरूप को जैसा भगवान के द्वारा क्रम से उपदेश किया गया है उसी प्रकार से ग्रंथकार उसका प्रतिपादन करते हैं। **पढमे**- सर्व प्रथम पंचमहाव्रत आते हैं। **महव्वदे**- संकल्प पूर्वक किया हुआ नियम ही व्रत है। महान जो व्रत है वह महाव्रत है। सम्पूर्ण रूप से जिसमें विरति का सद्भाव है, महाव्रतियों के द्वारा जो अनुष्ठान को प्राप्त है, (मोक्ष) महान कार्य का संसाधक है इसलिए ये महाव्रत कहे जाते हैं। उस महाव्रत में **पाणादिवादादो वेरमणं**- प्राण अर्थात् इन्द्रिय आदि दस प्रकार के प्राण उनका अतिपात अर्थात् विनाश हो जाना ही प्राणों का व्यपरोपण है। उससे विरति होना प्राणातिपात विरमण है। यह विरति करनी चाहिए। प्राणातिपात विरमण स्वरूप वाला यह प्रथम महाव्रत है। इसी प्रकार से द्वितीय महाव्रत में मृषावाद से व्यावृत्ति अर्थात् दूर होना होता है, तीसरे महाव्रत में अदत्त आदान (बिना दिए हुए का ग्रहण) से दूर होना, चतुर्थ महाव्रत में मैथुन से दूर होना। मिथुन का कर्म मैथुन कहलाता है। स्त्री और पुरुषों के काम उद्रेक से सराग चेष्टाओं का नाम मैथुन है। उससे दूर हो जाना यह मैथुन वैरमण है। पाँचवे महाव्रत में परिग्रह से वैरमण है। छट्टे अणुव्रत में रात्रिभोजन से वैरमण अर्थात् दूर होना होता है।

प्रश्न- इसको अणुव्रत का नाम कैसे दिया?

तत्र यथाकालं भोजने प्रवृत्तिसंभवात्॥ **चेदि**॥ चशब्देनोक्तसमुच्चयः। इतिशब्देन व्रतानां स्वरूपप्रतिपादनपरिसमाप्तिः। तत्र प्रथमे महाव्रते भगवतोपदिष्टेऽनुष्ठातुः साकल्येन विरतिरूपतां दर्शयन्नाह तत्थेत्यादि॥ **तत्थ**॥ तत्र। उक्तप्रकारेषु पंचमहाव्रतेषु मध्ये प्रथमे महाव्रते॥ **भंते**॥ भगवन्॥ **(सव्वं)**॥ सर्वं स्थूलं सूक्ष्मं च प्राणातिपातं॥ **पच्चक्खामि**॥ प्रत्याख्यामि परित्यजामि॥ **पच्चाचक्खामि**॥ इति पाठेऽत्यर्थं प्रत्याख्यामीत्यर्थः। कियत्कालं? **जावजीवं**॥ यावज्जीवं जीवितपर्यन्तं। कथं तत्प्रत्याख्यामि? **तिविहेण**॥ तदैव त्रैविध्यं दर्शयति॥ **मणसा वचिया**[1] **(यसा) कायेण**॥ मनोवाक्कायप्रकारेण॥ **से**॥ तस्य प्रथमस्य महाव्रतस्य संबन्धि यत्प्राणातिपाताद्विरमणं तत् क्व कर्तव्यमित्याह॥ **एइंदिये वा**॥ इत्यादि। एकेन्द्रिये प्राणिनि॥ **णेव सयं पाणे अदिवादेज्ज** इति वक्ष्यमाणेन सम्बन्धः। एवं॥ **वेइंदिये वा**॥ द्वीन्द्रिये। वाशब्दः परस्परसमुच्चये॥ **(तींदिये वा)**॥ त्रीन्द्रिये वा॥ **(चउरिंदिये वा)**॥ चतुरिन्द्रिये वा॥ **(पंचिंदिये वा)**॥ पंचेन्द्रिये वा प्राणिनि नैव स्वयं प्राणानतिपातये इति सम्बन्धः। एवमिन्द्रियविशेषणविशिष्टानां प्राणिनां प्राणातिपातप्रतिषेधं प्रदर्श्य कायविशेषणविशिष्टानां तेषां तं प्रदर्शयन्नाह॥ **पुढविकाइए वा**॥ इत्यादि। पृथ्वीकायिके वा॥ **(अपकाइए वा)**॥ अप्कायिके वा॥ **(तेउकाइए वा)**॥ तेजःकायिके वा॥ **(वाउकाइए वा)**॥ वायुकायिके वा॥ **(वणप्फदिकाइए वा)**॥ वनस्पतिकायिके वा॥ **(तसकाइए वा)**॥ त्रसकायिके[2] वा प्राणिनि नैव स्वयं प्राणानतिपातये। तत्र त्रसकायिकान्प्राणिनो विवृण्वन्नाह॥ **अण्डाइए वा**॥ इत्यादि॥ यन्नखत्वक्सदृशं समुपात्तकाठिन्यं शुक्रशोणितपरिपूर्णं परिमण्डलं तदण्डम्। तत्र कर्मवशादुत्पत्त्यर्थमाय आगमनम्। सोऽस्यास्तीत्यण्डायिकः। तस्मिन्॥ **पोदाइए वा**॥ पोतो मार्जारादिगर्भविशेषः। तस्मिन्कर्मविशेषवशादुत्यत्त्यर्थमायः। सोऽस्यास्ति पोतायिकः। तस्मिन्॥ **जराइए वा**॥ यज्जालवत्प्राणिपरिवरणं विततमांसशोणितं तज्जरायुः। तत्र कर्मविशेषवशादुत्पत्त्यर्थमायः। सोऽस्यास्ति जरायिकः। ठस्येकादेशे कृते 'पृषोदरादीनि यथोपदिष्ट-'(जै. 4/3/214) मित्यनेन युकारस्य खं निपात्यते॥ **रसाइए वा**॥ रसो घृतादि समधातूनां प्रथमो धातुविशेषो वा। तत्रोत्पत्त्यर्थं कर्मवशादायो स्यास्ति रसायिकः। तस्मिन्॥ **संसेदिमे वा**॥ संस्वेदः प्रस्वेदः। तत्र भवः संस्वेदिमः। तस्मिन्। 'हृत'(जै. 3/1/61) इति बहुवचननिर्देशादिमः प्रत्ययो भवति॥ **सम्मुच्छिमे वा**॥ समन्तात्पुद्गलानां मूर्च्छनं संघातीभवनं सम्मूर्छः तत्रभवः सम्मूर्छिमः। तस्मिन्॥

---

1. 'वच्चिया' -इति झा-प्रतौ पाठः।
2. एष पाठः झा-प्रतौ नास्ति।

समाधान- हिंसा आदि के समान पूर्णरूप से इसमें विरति का अभाव है। इस अणुव्रत में रात्रि में ही भोजन की निवृत्ति की गई है न कि दिन में। दिन में तो यथाकाल भोजन में प्रवृत्ति संभव है। इसलिए समस्त काल की विरति का अभाव होने से इसको अणुव्रत की संज्ञा दी है। **चेदि**- च शब्द इन सभी व्रतों के समुच्चय के लिए है। इति शब्द से व्रतों का स्वरूप प्रतिपादन की समाप्ति की गई है। उसमें प्रथम महाव्रत में भगवान के द्वारा उपदिष्ट अनुष्ठान करने वाले को पूर्ण रूप से विरति रूपता को दिखाते हुए कहते हैं। **तत्थ**- उक्त प्रकार के पंच महाव्रतों में प्रथम महाव्रत में **भंते**- हे भगवन्! **सव्वं**- समस्त स्थूल और सूक्ष्म प्राणों के विघात को । **पच्चक्खामि**- मैं प्रत्याख्यान करता हूँ, उसको मैं छोड़ता हूँ। **पच्चाचक्खामि**- इस प्रकार का एक पाठ भी उपलब्ध होता है। इसका अर्थ है कि मैं अत्यधिक रूप से प्रत्याख्यान करता हूँ। कितने काल तक? **जावजीवं**- जीवन पर्यंत तक। किस प्रकार से उसका प्रत्याख्यान करता हूँ? **तिविहेण**-तीन प्रकार से। उस प्रत्याख्यान की त्रिविध रूपता दिखाते हैं। **मणसा वचिया (यसा) कायेण**- मन, वचन और काय के भेद से उस प्रथम महाव्रत से संबंधित जो प्राणातिपात से वैरमण है वो कहाँ करना चाहिए? इस प्रकार पूछने पर कहते हैं। **एंइंदिये वा** इत्यादि-एकेन्द्रिय प्राणियों में। **णेव सयं पाणे अदिवादेज्ज**- इस प्रकार कहे गये संबंध के द्वारा। इसी प्रकार से **वेइंदिये वा**- दो इन्द्रिय प्राणियों में। वा शब्द समुच्चय के लिए है। **तींदिये वा**-या त्रीन्द्रिय प्राणियों में। **चउरिंदिये वा**- या चतुरिन्द्रिय प्राणियों में। **पंचिंदिये वा**- या पंचेन्द्रिय प्राणियों में । मैं प्राणों का अतिपात नहीं करता हूँ इस प्रकार से सम्बंध करना चाहिए। इसी प्रकार इन्द्रियों के विशेषण से विशिष्ट प्राणियों के प्राणातिपात का प्रतिषेध दिखा करके अब काय विशेषण से विशिष्ट प्राणियों को दिखाते हुए कहते हैं। **पुढविकाइए वा**- पृथ्वी कायिक प्राणी में। **अपकाइए वा**- जल कायिक प्राणियों में। **तेउकाइए वा**- अग्निकायिक प्राणियों में। **वाउकाइए वा**- वायुकायिक प्राणियों में। **वणप्फदिकाइए वा**- वनस्पति कायिक प्राणियों में। **तसकाइए वा**- त्रसकायिक प्राणियों में, मैं स्वयं उनके प्राणों का प्रतिपात नहीं करता हूँ। अब त्रस कायिक प्राणियों का विवरण करते हुए कहते हैं। **अण्डाइए वा**- इत्यादि। जिसकी त्वचा नख के समान काठिन्यता को प्राप्त है जिसका परिमंडल शुक्र और शोणित से परिपूर्ण है ऐसा वह अण्ड है। उस अण्ड में कर्म के वश से उत्पत्ति के लिए आय अर्थात् आगमन होता है। वह ही अण्डायिक होता है। उसमें **पोदाइए वा**- बिल्ली आदि का गर्भ-विशेष पोत कहलाता है। उसमें कर्म विशेष के कारण से उत्पत्ति के लिए जीव का आना पोताय है और वह पोताय ही पोतायिक है। उसमें **जराइए वा**- जो जाल के समान प्राणियों के ऊपर चारों ओर फैला हुआ मांस और शोणित का आवरण होता है वह जरायु है। उस जरायु में कर्म विशेष के कारण से उत्पत्ति के लिए कर्म के कारण से जीव का आना जिसके होता है वह जरायिक है। व्याकरण के नियमानुसार जरायु से जरायिक शब्द बनता है। **संसेदिमे वा**- संस्वेद अर्थात् पसीना। उसमें उत्पन्न होने वाले संस्वेदिम जीव होते हैं। संस्वेद से संस्वेदिम बनता है। **सम्मुच्छिमे वा**- चारों ओर से पुद्गलों का मूर्च्छन अर्थात् इकट्ठा होना सम्मूर्छ है, सम्मूर्छ में होने वाला

उब्भेदिमे वा ॥ उद्भेदमुद्भेदो भूकाष्ठपाषाणादिकं भित्त्वोर्ध्वं निःसरणम्। तत्र भवः उद्भेदिमः। तस्मिन्॥ **उववादिमे वा** ॥ उपेत्य गत्वोपपद्यते जायतेऽस्मिन्नित्युपपादो देवनारकाणां जन्मस्थानम्। तत्र भव उपपादिमः। ननूपपादिनो देवनारकाः। तेषां चानपवर्त्यायुष्कत्वात्कथं हिंसा ? सत्यमेवमेतत्, किन्तु यद्यपि तेषां प्राणव्यपरोपणं न सम्भवति तथापि तेषामुपरि कुतश्चित्कारणात्प्रमत्तयोगस्य दुष्परिणामे सति हिंसोपपद्यत एव। गाथा-मरदु व जियदु व जीवो अयदाचारस्स णिच्चिदा हिंसा।

इत्यभिधानात्॥ **(तसे वा)॥** त्रसे वा॥ **(थावरे वा)॥** स्थावरे वा। त्रसस्थावरभेदभिन्ने॥ **बादरे वा सुहुमे वा॥** बादरसूक्ष्मभेदभिन्ने॥ **पाणे वा॥** द्वित्रिचतुरिन्द्रियरूपाः प्राणाः॥ **भूदे वा॥** वनस्पतिकायिकरूपे॥ **जीवे वा** ॥ पंचेन्द्रियरूपे॥ **सत्ते वा** ॥ पृथ्वीकायिकादिरूपे॥ उक्तं च-

द्वित्रिचतुरिन्द्रियाः प्राणा भूतास्ते तरवः स्मृताः।
जीवाः पंचेन्द्रिया ज्ञेयाः शेषाः सत्त्वाः प्रकीर्तिताः॥

पज्जत्ते वा॥ षट्पर्याप्तिसमापके॥ **अपज्जत्ते वा॥** तदसमापके। न केवलमुक्तैकेन्द्रियादिभेदभिन्ने प्राणिनि नैव स्वयं प्राणानतिपातये। किंतु॥ **अवि चउरासीजोणिपमुहसदसहस्सेसु॥** चतुरशीतियोनयः प्रमुखा आद्या येषां तानि च तानि शतसहस्राणि च लक्षास्तेष्वपि शीतोष्णसंवृतविवृत प्रभृतियोन्यादिभेदेन प्ररूपितेषु **(णेवसयं पाणे अदिवादेज्ज)॥** नैव स्वयं प्राणानतिपातये॥ **णो अण्णेहिं पाणे अदिवादावेज्ज॥ णो** नैवाऽन्यैः कृत्वा प्राणानतिपातयेयमतिपातये वा॥ **अण्णेहिं पाणे अदिवादिज्जंते पि ण समणुमण्णिज्ज**[1] **॥** अन्यैः प्राणवियोगकरणे स्वयमप्रयुक्तैः प्राणानतिपात्यमानान्मनागपि न समनुमन्येत (न्ये) न तत्रानुमतिं कुर्यात् (म्)॥ **तस्स** इत्यादि। तस्य प्राणातिपाताद्विरमणलक्षणस्य प्रथममहाव्रतस्य सम्बन्धिनमतिचारं प्रतिक्रमामि निराकरोमि। तत्प्रतिक्रमणं च कुर्वाणो॥ **णिंदामि अप्पाणं, गरहामि अप्पाणं॥** निन्दाविषयं गर्हाविषयं चात्मानं करोमीत्यर्थः। तदतिचारे हि संजाते 'हा दुष्टं कृत-' मित्यादिरात्मसाक्षिकः पश्चात्तापो निन्दा, परसाक्षिकरतु गर्हेति। आत्मानं च निंदन् गर्हमाणश्च यथा साम्प्रतिकं प्रतिक्रमामि॥ तथा॥ **पुव्विंच (त) णं (तं) भंते॥** पुव्विंच (त) णं पूर्वतनं पूर्वकालोपार्जितम्॥ तं॥ अतिचारम्॥ **भंते॥** भगवन्। आत्मानं निन्दन्गर्हमाणश्च॥ **वोस्स (स) रामि॥** व्युत्सृजामि निराकरोमि॥ तथा- **जं पि मए॥** यदपि मया॥ **रागस्स**

---

1. 'समणुमण्णेज्ज' -इति झा-प्रतौ पाठः।

सम्मूर्छिम जीव होता हैं। **उब्भेदिमे वा**- उद्भेद अर्थात् पृथ्वी , काष्ठ, पाषाण आदि का भेदन करके ऊपर निकल जाना उद्भेद है। उद्भेद से जो जीव की उत्पत्ति होती है वह उद्भेदिम कहलाता है । **उववादिमे वा**- जहाँ पहुँचकर जीव उत्पन्न हो जाता है वह उपपाद है। जिसमें देव, नारकियों का उत्पाद होता है वह जन्म स्थान उपपाद कहलाता है। उसमें जन्म वाले तो देव, नारकी जीव होते हैं। **शंका**-उन देव नारकियों की तो अनपवर्त्य आयु होती है अर्थात् उनका अकाल मरण नहीं होता है तो उनके लिए हिंसा कैसे हो सकती है?

समाधान- आपका यह कहना सत्य ही है किंतु यद्यपि उनके प्राणों का व्यपरोपण संभव नहीं है फिर भी उनके ऊपर भी किसी कारण से प्रमत्तयोग वाले जीव का दुष्परिणाम हो जाने पर हिंसा की उत्पत्ति हो जाती है।

गाथार्थ—जीव चाहे मरे या जीये, अयत्नाचारी को नियम से हिंसा होती है। इस वचन के अनुसार उनकी भी हिंसा संभव है। **तसे वा**- अथवा त्रस जीवों में। **थावरे वा**- स्थावर जीवों में, त्रस स्थावर इन दो भेदों से सहित जीवों में। **बादरे वा सूक्ष्मे वा**- बादर और सूक्ष्म इन दोनों के भेद से दो प्रकार के जीवों में। **पाणे वा**-दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, और चार इन्द्रिय रूप प्राण हैं, उनमें। **भूदे वा**- वनस्पति कायिक रूप जीव भूद कहलाते हैं। उनमें **जीवे वा**- और पंचेन्द्रिय रूप जीव हैं। **सत्ते वा**- पृथ्वीकायिक आदि रूप सत्व हैं। कहा भी गया है-

गाथार्थ— दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय जीव प्राण हैं, वनस्पतिकायिक जीव भूत हैं, पंचेन्द्रियों को जीव जानने चाहिए और शेषों को सत्व कहा गया है।

पज्जत्ते वा- छह पर्याप्तियों की समाप्ति कर लेने वालों को पर्याप्तक कहते हैं। **अपज्जत्ते वा**-उनका समापन नहीं करने वाले अपर्याप्तक हैं। इन कहे हुए एकेन्द्रिय आदि भेद वाले प्राणियों में ही प्राणों का अतिपात न मैं स्वयं कर रहा हूँ। केवल इतना ही नहीं किंतु। अवि **चउरासी जोणिपमुहसदसहस्सेसु**- चौरासी लाख योनियाँ जिनके प्रारंभ में हैं ऐसे लाखों में शीत, उष्ण, संवृत, विवृत आदि योनियों के भेद से कहे हुए स्थानों में भी। **(णेव सयं पाणे अदिवादेज्ज)**- मैं स्वयं प्राणों का अतिपात नहीं करूँगा या नहीं करता हूँ। **णो अण्णेहिं पाणे अदिवादावेज्ज। णो**- और ना ही अन्यों के द्वारा प्राणों का मैं अतिपात करवाता हूँ। **अण्णेहिं पाणे अदिवादिज्जंते पि ण समणुमण्णिज्ज**- अन्यों के द्वारा प्राण के वियोग करने में स्वयं प्रयुक्त नहीं होने से प्राणों का अतिपात करने वालों की मैं थोड़ी भी अनुमोदना नहीं करता हूँ। अर्थात् उस विषय में अनुमति नहीं करता हूँ। **तस्स**- इत्यादि। उस प्राणातिपात से विरति लक्षण वाले प्रथम महाव्रत संबंधी अतिचार का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। उनका मैं निराकरण करता हूँ। उस प्रतिक्रमण को करते हुए **णिंदामि अप्पाणं, गरहामि अप्पाणं**- अपनी आत्मा की निंदा और गर्हा करता हूँ। उन अतिचारों के हो जाने पर 'हा दुष्टं कृतं' मैंने दुष्कृत्य किया है। इत्यादि रूप से आत्मसाक्षी पूर्वक जो पश्चात्ताप है वह निंदा है और परसाक्षिका जो पश्चात्ताप होता है वह गर्हा होती है। अपने आत्मा की निंदा करता हुआ और गर्हा करता हुआ जिस प्रकार से वर्तमान में प्रतिक्रमण करता हूँ। उसी प्रकार से। **पुव्विंच (त) णं (तं) भंते**- पूर्वकाल में उपार्जित कर्मों को हे भगवन्! **तं**- उन अतिचारों को। **भंते** हे भगवन्! अपने आप की निंदा गर्हा करता हुआ। **वोस्सरामि**- मैं उन दोषों को छोड़ता हूँ अथवा उनका

वा दोसस्स वा मोहस्स वा वसंगएण ॥ रागद्वेषमोहवशवर्तिना सता ॥ **सयं पाणे अदिवादिदे ॥** साक्षात्स्वयं प्राणा अतिपातिताः ॥ **अण्णेहिं पाणे अदिवादाविदे ॥** अन्यैः कृत्वा प्राणा अतिपातिताः ॥ **अण्णेहिं पाणे अदिवादिज्जंते समणुमण्णिदे ॥** अन्यैः प्राणा अतिपात्यमानाः समनुमताः ॥ **तं पि ॥** तदेतदपि सर्वं व्युत्सृजामि । तथा-**इमस्स** इत्यादि । **इमस्स** अस्य वक्ष्यमाणविशेषणविशिष्टस्य धर्मस्य चारित्रलक्षणस्योत्तमक्षमादिस्वरूपस्य वा संबंधिनं सर्वमतिचारं गर्हे इति संबंधः । कथंभूतस्य धर्मस्य? **णिग्गंथस्स ॥** निर्ग्रन्थलिंगस्वरूपस्य ॥ **पावयणस्स ॥** पावनस्य पवित्रीभूतस्य प्रावचनस्य वा प्रवचने परमागमे प्रतिपादितस्य ॥ **अणुत्तरस्स ॥** न विद्यत उत्तरमुत्कृष्टमन्यद्यस्मात्सोऽनुत्तरः । तस्य । **केवलिपण्णत्तस्स ॥** केवलज्ञानिभिः प्रज्ञप्तस्य प्रतिपादितस्य । यत एव केवलिभिरसौ प्रज्ञाप्तोऽत एवानुत्तरः ॥ **अहिंसालक्खणस्स ॥** अहिंसालक्षणं स्वरूपं यस्य, अहिंसया वा लक्ष्यत इत्यहिंसालक्षणः । तस्य ॥ **सच्चाहिट्ठियस्स ॥** सत्येनाधिष्ठितः स्वीकृतः सत्याधिष्ठितः । तस्य ॥ **विणयमूलस्य ॥** विनयो मूलं कारणं यस्य तस्य ॥ **खमाबलस्स ॥** क्षमया बलमुपचयो यस्य तस्य ॥ **अट्ठारसे**त्यादि ॥ अष्टादशभिः शील सहस्त्रैः परि समंतान्मण्डितस्य कृतशोभस्य ॥ **चउरासी**त्यादि ॥ चतुरशीतिभिर्गुणसहस्त्रैर्विशेषेण भूषितस्यालंकृतस्य ॥ **बंभचेरगुत्तस्स ॥** ब्रह्मचर्येण गुप्तस्य रक्षितस्य ॥ **णियति** (अइ) लक्खणस्स ॥ नियतिर्विषयव्यावृत्तिः । तया लक्ष्यते सा वा लक्षणं यस्य तस्य ॥ **परिच्चायफलस्स ॥** परिच्चायो बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहत्यागः । तस्य फलं स वा फलं यस्स तस्य ॥ **उवसमपहाणस्स ॥** उपशमः क्रोधाद्यभावः । स प्रधानं कारणं यस्य तस्य ॥ **खंतिमग्गदेसयस्स ॥** क्षांतेः परमक्षमाया मार्ग इष्टानिष्टयोः समभावः । उदासीनतेत्यर्थः । तस्य ॥ **देसयस्य ॥** उपदेशकस्य ॥ **मुत्तिमग्गपयासयस्स ॥** मुक्तेर्देशतः कर्मनिर्जराया मार्ग उपायस्तत्प्रकाशकस्य । धर्म एव हि चारित्रलक्षण उत्तमक्षमादिरूपो वा देशतः कर्मनिर्जरायाः कारणमिति ॥ **सिद्धिमग्गपज्जवसाणस्स ॥** सिद्धिः साकल्येन कर्मनिर्जराऽनंतचतुष्टयस्वरूपावाप्तिर्वा । तस्या मार्गः प्रकृष्टं यथाख्यातचारित्रम् । तस्य पर्यवसानं निष्ठा परमप्रकर्षो यत्र धर्मे स तथोक्तः । तस्येत्थम्भूतस्य धर्मस्य संबंधि ॥ **सव्वं पुव्वं दुच्चरियं गरहामि** इति संबंधः । केन कृत्वा यज्जातं दुश्चारित्रमित्याह-**अण्णाणेण वा ॥** धर्मविषये

निराकरण करता हूँ। **जं पि मए**- यद्यपि मेरे द्वारा। **रागस्स वा दोसस्स वा मोहस्स वा वसंगएण**- राग, द्वेष, मोह वश वर्ति होते हुए। **सयं पाणे अदिवादिदे**- साक्षात् स्वयं प्राणों का अतिपात किया हो।

अण्णेहिं पाणे अदिवादाविदे- अन्यों के द्वारा प्राणों का अतिपात कराया हो। **अण्णेहिं पाणे अदिवादिज्जंते समणु मण्णिदे**- अन्यों के द्वारा प्राणों का अतिपात करते हुए उनकी अनुमोदना की हो। **तं पि**- यह दोष भी मैं छोड़ देता हूँ। **इमस्स इत्यादि**- आगे कहे जाने वाले विशेषणों से विशिष्ट इस धर्म का जो कि चारित्र लक्षण वाला धर्म है अथवा उत्तमक्षमादि स्वरूप वाला धर्म है। उस धर्म संबंधि सभी अतिचारों की मैं गर्हा इत्यादि संबंध करके गर्हा इत्यादि कार्य करता हूँ। वह धर्म किस प्रकार का है?

णिग्गंथस्स- वह निर्ग्रंथ लिंग स्वरूप है। **पावयणस्स**- जो पावन है अथवा पवित्रभूत है वह प्रवचन है। उन प्रवचन अर्थात् परमागम में उस निर्ग्रंथ लिंग का प्रतिपादन किया गया है। **अणुत्तरस्स**- जिससे बढ़कर के कोई दूसरा उत्कृष्ट नहीं होता है वह अनुत्तर है। अर्थात् इस लिंग से बढ़कर के दूसरा उत्कृष्ट पदार्थ नहीं है। **केवलिपण्णत्तस्स**- केवलज्ञानियों के द्वारा यह प्रतिपादित किया गया है। चूँकि यह केवलियों के द्वारा कहा गया है इसलिए ही अनुत्तर है। **अहिंसालक्खणस्स**- अहिंसा लक्षण ही जिसका स्वरूप है अथवा अहिंसा के द्वारा जो पहचाना जाता है ऐसा अहिंसा लक्षण वाला यह धर्म है। **सच्चाहिट्ठियस्स**- वह धर्म सत्य के द्वारा स्वीकृत है। इसलिए सत्य अधिष्ठित है। **विणयमूलस्स**- विनय ही जिसका मूल कारण है वह धर्म हैं। **खमाबलस्स**- क्षमा से जिसका बल वृद्धि को प्राप्त होता है वह धर्म है उसका। **अट्ठारस** इत्यादि- अट्ठारह हजार शील से जो मंडित है अर्थात् शोभा को प्राप्त है वह धर्म है। **चउरासी** इत्यादि- चौरासी लाख गुणों के द्वारा जो भूषित है वह धर्म है। **बंभचेरगुत्तस्स**- ब्रह्मचर्य से जो गुप्त है या रक्षित हैं। ऐसा यह धर्म हैं। **णियति (अइ) लक्खणस्स**- विषयों से व्यावृत्ति रूप अर्थात् दूर होना नियति है। उस नियति के द्वारा जिसको पहचाना जाता है अथवा नियति ही जिसका लक्षण है वह धर्म है।

परिच्चाय फलस्स- बाह्य और अभ्यंतर परिग्रह का त्याग करना परिच्चाय है। उसका फल ही धर्म है अथवा जिसका फल बाह्य और अभ्यंतर परिग्रह का त्याग धर्म है वह धर्म है। **उवसमपहाणस्स**- क्रोधादि का अभाव होना उपशम है। वह ही प्रधान कारण जिसका है वह धर्म है। **खंतिमग्गदेसयस्स**- क्षान्ति(धैर्य) अर्थात् परम क्षमा का मार्ग है अर्थात् इष्ट और अनिष्ट में समभाव धारण करना या उदासीनता होना धर्म है। **देसयस्स**- वह धर्म उपदेशक है। **मुत्तिमग्गपयासयस्स**- मुक्ति अर्थात् एकदेश कर्म की निर्जरा के मार्ग का उपाय है। उस उपाय का प्रकाशक करने वाला होने से धर्म है। धर्म ही चारित्र लक्षण वाला अथवा उत्तम क्षमादि रूप है जो एक देश कर्म निर्जरा का कारण हैं। **सिद्धिमग्ग-पज्जवसाणस्स**- सम्पूर्ण रूप से कर्म की निर्जरा होना अथवा अनंत चतुष्टय स्वरूप की प्राप्ति होना सिद्धि हैं। उस सिद्धि का मार्ग प्रकृष्ट यथाख्यात चारित्र है। उसके अंत तक निष्ठा होना अर्थात् परम प्रकर्षता जिसमें होती है वह धर्म है। इस प्रकार के धर्म संबंधि। **सव्वं पुव्वं दुच्चरियं गरहामि**- सभी पूर्व में हुए दुश्चरित्र की मैं गर्हा करता हूँ। क्या करके यह दुश्चरित्र उत्पन्न हुआ? **अण्णाणेण** वा- धर्म

सम्यग्ज्ञानरहितेन ॥ **असम्मणेण वा ॥** धर्मविषयेऽसम्मनमश्रद्धानम् । तेन । वाशब्दः सर्वत्र परस्परसमुच्चये ॥ **अणभिगमणेण वा ॥** अप्रतिग्रहणेण ॥ **अमीमंसगदाए वा**[1] **॥** अमीमांसकताऽविचारकता । तया ॥ **अबोहियाए वा ॥** अप्राप्त्या ॥ **रागेण वा ॥** प्रीत्यनुबन्धेन ॥ **दोसेण वा ॥** द्वेषेणाऽमर्षेण ॥ **मोहेण वा ॥** अज्ञानेन हिताहितविवेकविकलतया ॥ **हस्सेण वा ॥** हास्येन वर्करेण ॥ **भयेण वा ॥** राजभयादिना ॥ **पदोसेण वा ॥** प्रद्वेषेणाऽतीवामर्षवशात्प्रचुरोत्पन्नोत्कटरोषेण ॥ **पमादेण वा ॥** प्रमादोऽयत्नपरत्वं विकथादिर्वा । तेन ॥ **पेम्मेण वा ॥** स्नेहेन ॥ **पिवासेण वा ॥** विषयातिगृद्ध्या ॥ **लज्जेण वा ॥** लज्जया ॥ **गारवेण वा ॥** गुरुत्वेन महत्वाभिनिवेशेन ॥ **अलसदाए ॥** अलसतया धर्मानुष्ठाने निरुद्यमतया ॥ **बालिसदाए ॥** बालिशतयाऽविवेकतया ॥ **कम्मभारिगदाए ॥** कर्मणां भारः प्रदेशबहुत्वं कर्मभारः । सोऽस्यास्तीति कर्मभारिकः । तस्य भावस्तत्ता । तया । प्रतिबंधककर्मप्रदेशप्राचुर्येणेत्यर्थः ॥ **कम्मगुरुगदाए ॥** कर्मणां गुरुकता शक्तिबहुत्वम् । तया ॥ **कम्मदुच्चरिगदाए ॥** कर्मणां दुश्चारितां विघ्नलक्षणदुष्टकार्यकारिता । तया ॥ **कम्मपुरुक्कडदाए ॥** कर्मणां पुरुर्बृहत्युत्कटता तीव्रता तया ॥ **तिगारवगुरुगदाए ॥** गुरोर्भावो गौरवं महत्त्वाभिनिवेशाः । तत् त्रिविधं भवति-(1) ऋद्धिगौरवं, (2) रसगौरवं, (3) शब्दगौरवं स्वादगौरवं वा । त्रीणि च तानि गौरवाणि च तेषां गुरुकतोत्कटता । तया ॥ **अबहुस्सुददाए ॥** अबहुश्रुततया सकलशास्त्रप्रवीणतया ॥ **अविदिदपरमत्थदाए ॥** परमोऽकल्पितोऽर्थो मोक्षलक्षणस्तत्कारणलक्षणश्च । सोऽविदितो येनासावविदितपरमार्थः । तस्य भावस्तत्ता । तया ॥ **तं सव्वमित्यादि ॥** एतैः कारणैः यत्पूर्वं जातं दुश्चरित्रं मनोवाक्कायैर्दुष्टं चेष्टितं तत्सर्वं ॥ **गरहामि ॥** गर्हे ॥ **(पडिक्कमामि) ॥** प्रतिक्रमामि । प्रतिक्रमणद्वारेण निराकरोमीत्यर्थः ॥ **आगमेसिं च ॥** अनागतं च दुश्चरित्रं ॥ **अपच्चक्खियं ॥** उत्पद्यमानं प्रतिक्रमणयाऽनिराकृतं, कृतदोषनिराकरण- एव तस्याः सामर्थ्यात् । अतो भाविदोषाणां कारणभूतरागद्वेषाद्युत्पत्तिप्रतिषेधलक्षणप्रत्याख्यानद्वारेण तत् ॥ **पच्चक्खामि ॥** प्रत्याख्यामि निराकरोमि । उत्पत्तुं न ददामीत्यर्थः । **अणालोचियं आलोचेमि ॥** गुर्वादेः कृतदोषनिवेदनमालोचना । तत्सर्वं मयाऽज्ञानान्मदाद्वाऽनालोचितं दुश्चरित्रं, तदिदानीं तदभावादालोचयामि ॥ **अणिंदियं णिंदामि ॥** यत्पूर्वमविवेकान्मयाऽनिंदितं दुश्चरित्रं तदिदानीं विवकेसंपत्तौ निंदामि । 'हा दुष्टं कृत-' मित्याद्यात्मसाक्षिकं

---

1. 'अमिमस्सगए' 'अमिमंसदाए' चेति द्वौ पाठौ लभ्येते आदर्शप्रत्योः ।

के विषय में सम्यग्ज्ञान से रहित होने से। **असम्मणेण वा**- धर्म के विषय में असम्मन अर्थात् श्रद्धान नहीं होने से। वा शब्द परस्पर का समुच्चय करने के लिए है। **अणभिगमणेण वा**- उस धर्म का प्रतिग्रहण नहीं करने से। **अमीमंसगदाए वा**- उस धर्म के विषय मीमांसकता अर्थात् विचारपना नहीं होने से। **अबोहियाए वा**- उस धर्म की प्राप्ति नहीं होने से। **रागेण वा**- प्रीति के अनुबंध से । **दोसेण वा**- द्वेष के द्वारा। **मोहेण वा**-अज्ञानता के कारण हित व अहित के विवेक न होने से। **हस्सेण वा**- हास्य अर्थात् प्रमोद के द्वारा। **भयेण वा**- राजा के भय आदि के द्वारा। **पदोसेण वा**- प्रकृष्ट रूप से द्वेष। अत्यंत क्रोध के वश से अत्यधिक उत्पन्न उत्कट रोष के द्वारा। **पमादेण वा**-प्रमाद का अर्थ है-यत्नपरता न होना अथवा विकथा आदि को प्रमाद कहते हैं। उसके द्वारा। **पेम्मेण वा**- स्नेह से। **पिवासेण** वा- विषयों की अतिगृद्धि के द्वारा। **लज्जेण वा**- लज्जा के द्वारा। **गारवेण वा**- गुरुत्वपने से । अपने महत्व के अभिप्राय के द्वारा। **अलसदाए** - धर्म के अनुष्ठान में उद्यम नहीं होने रूप आलस से। **बालिसदाए**- अविवेकपने से। **कम्मभारिगदाए**- कर्मों का भार अर्थात् कर्मों के प्रदेशों की बहुलता कर्म का भार है। वह जिसके होती है वह कर्मभारिक है उसका जो भाव है उसके द्वारा अर्थात् प्रतिबंधक कर्म प्रदेशों की प्रचुरता के द्वारा। **कम्मगुरुगदाए**- कर्मों की गुरुता अर्थात् शक्ति की बहुलता होने से। **कम्मदुच्चरिगदाए**- कर्मों के दुश्चरित्र से अर्थात् कर्मों का विघ्न उत्पन्न करना ही दुष्ट कार्य है वही उनका दुश्चरित्र कहलाता है। उसके द्वारा। **कम्मपुरुक्कडदाए**- कर्मों की बहुत बढ़ी हुई तीव्रता के द्वारा। **तिगारवगुरुगदाए**- गुरु का भाव गौरव है अर्थात् अपने महत्व का अभिप्राय वह गौरव कहलाता है। वह तीन प्रकार का होता है। 1. ऋद्धि गौरव, 2. रस गौरव, 3. शब्द गौरव अथवा स्वाद गौरव। ये तीनों ही गौरव जिनके पास होते हैं वे गौरव की उत्कटता वाले होते हैं उसके द्वारा। **अबहुस्सुददाए**- बहुश्रुतपना नहीं होने से अर्थात् सकल शास्त्रों में प्रवीणपना नहीं होने से। **अविदिदपरमत्थदाए**- परम अर्थात् अकल्पित अर्थ अर्थात् मोक्ष का लक्षण अर्थात् मोक्ष के कारणभूत लक्षण। परम अकल्पनीय अर्थ मोक्ष है। उस मोक्ष के लक्षणों के बारे में और उस मोक्ष के कारण भूत लक्षणों के बारे में ज्ञान नहीं होना अविदित परमार्थ हैं उसके द्वारा। **तं सव्वमित्यादि**- इन कहे हुए पूर्वोक्त सब कारणों के द्वारा जो दुश्चरित्र हुआ है अर्थात् मन, वचन, काय की दुश्चेष्टाएँ हुई हैं उन सबकी **गरहामि**- मैं गर्हा करता हूँ। **(पडिक्कमामि)**- मैं प्रतिक्रमण करता हूँ अर्थात् प्रतिक्रमण के द्वारा उनका निराकरण करता हूँ। **आगमेसिं च**- और भविष्यकाल संबंधी दुश्चरित्र है। **अपच्चक्खियं**- उत्पन्न होने वाले दोष जिनका प्रतिक्रमण के द्वारा निराकरण नहीं किया गया है क्योंकि प्रतिक्रमण में तो किये गये दोष के निराकरण की ही सामर्थ्य है। इसलिए भावी दोषों के लिए कारणभूत जो राग द्वेष आदि की उत्पत्ति है उसका निषेध करने के लक्षण वाला प्रत्याख्यान होता है। उस प्रत्याख्यान के द्वारा मैं गर्हा करता हूँ। **पच्चक्खामि**- मैं प्रत्याख्यान करता हूँ। अर्थात् उन दोषों का निराकरण करता हूँ। अर्थात् मैं उन्हें उत्पन्न ही नहीं होने दूँगा यह अर्थ है। **अणालोचियं- आलोचेमि**- गुरु आदि के सम्मुख किये हुए दोषों का निवेदन करना आलोचना है। उन सबकी मेरे द्वारा अज्ञान से अथवा मद से जो दुश्चरित्र की आलोचना नहीं की गई है उसकी वर्तमान में, मैं आलोचना करता हूँ। यानि वर्तमान में मद

पश्चात्तापविषयतां नयामि॥ **अगरहियं गरहामि॥** यद्दुश्चरित्रं पूर्वं मया प्रमादादेरगर्हितं, तदिदानीमप्रमत्तादिरूपसंपत्तौ गर्हे परसाक्षिकं पश्चात्तापविषयतां नयामि॥ **अपडिक्कंतं पडिक्कमामि॥** प्रमादवशाद्यद्दुश्चरित्रं पूर्वं मयाऽप्रतिक्रांतंनिंदागर्हाविषयतामनीतं तत् पडिक्कमामि प्रतिक्रमामि॥ **विराहणं वोसिरामि॥** विराधनां रत्नत्रयविषये मनोवाक्कायकृतां सावद्यां वृत्तिमृत्सृजामि त्यजामि॥ **आराहणं अब्भुट्ठेमि॥** रत्नत्रयस्याराधनां तद्विषये निरवद्यां मनोवाक्कायवृत्तिमभ्युत्तिष्ठाम्यनुतिष्ठामि॥ **अण्णाणं॥** अज्ञानं मिथ्यामतिश्रुतावधिलक्षणं व्युत्सृजामि॥ सण्णाणं॥ सम्यग्ज्ञानं मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञान-लक्षणमभ्युत्तिष्ठामि **कुदंसणं॥** विपरिताभिनिवेशस्वरूपं व्युत्सृजामि॥ **सम्मदंसणं॥** सम्यग्दर्शनं तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणमभ्युत्तिष्ठामि॥ **कुचरियं॥** मिथ्यारूपं चारित्रं व्युत्सृजामि॥ **सुचरियं॥** सम्यग्रूपं सामायिकादिचारित्रमभ्युत्तिष्ठामि॥ **कुतवं॥** कुत्सितं तपः पंचाग्निसाधनादिकं व्युत्सृजामि॥ **सुतवं॥** शोभनं तपोऽनशनादि बाह्यमाभ्यंतरं चाभ्युत्तिष्ठामि॥ संक्षेपतस्तु**अकरणिज्जं॥** अकृत्यमननुष्ठातव्यमव्रतादि व्युत्सृजामि॥ **करणिज्जं॥** कृत्यं व्रतादिकमभ्युत्तिष्ठामि॥ करणीयस्यापि। **अकिरियं॥** अकरणमननुष्ठानं व्युत्सृजामि॥ **किरियं॥** करणमनुष्ठानमभ्युत्तिष्ठामि। एवं व्रतविराधकं व्युत्सृजामि, तदविराधकं त्वनुतिष्ठामीति दर्शयन्नाह **पाणादिवाद**मित्यादि॥ **(पाणादिवादं)॥** प्राणातिपातं व्युत्सृजामि, प्रथममहाव्रतस्य विराधकत्वात्॥ अभयदानमभ्युत्तिष्ठामि, तदविराधकत्वात्॥ **मोसं॥** मृषावादं व्युत्सृजामि, द्वितीयमहाव्रतविराधकत्वात्। सत्यमभ्युत्तिष्ठामि, तदविराधकत्वात्॥ **(मोसं)॥** अदत्तादानं व्युत्सृजामि, तृतीयमहाव्रतापकारकत्वात्। दत्तं कल्पनीयं योग्यमभ्युत्तिष्ठामि, तदुपकारकत्वात्॥ **अबंभं॥** अब्रह्म। अब्रह्मचर्यं व्युत्सृजामि, चतुर्थमहाव्रतविराधकत्वात्॥ **बंभचरियं॥** ब्रह्मचर्यमभ्युत्तिष्ठामि, तदविराधकत्वात्॥ **(परिग्गहं)॥** परिग्रहं व्युत्सृजामि, पंचममहाव्रतस्यापकारकत्वात्। अपरिग्रहमभ्युत्तिष्ठामि, तदुपकारकत्वात्॥ **(राइभोजणं)** रात्रिभोजनं व्युत्सृजामि षष्ठाणुव्रतस्य विराधकत्वात्। दिवाभोजनमेकभुक्तं॥ **पच्चुप्पण्णं॥** यथाकाले (लं)

और अज्ञान का अभाव होने से उसकी आलोचना करता हूँ। **अणिंदियं णिंदामि**- जो पहले अविवेक से मेरे द्वारा अनिन्दित दुश्चरित्र किया गया है उसकी वर्तमान में विवेक सम्पत्ति होने से निंदा करता हूँ। 'हा दुष्टं कृतं' हा मैंने दुष्ट कार्य किया। इत्यादि आत्म साक्षीपूर्वक पश्चात्ताप के विषय को प्राप्त करता हूँ। **अगरहियं गरहामि**- जो दुश्चरित्र पहले मेरे द्वारा प्रतिक्रांत नहीं किया गया अर्थात् निंदा, गर्हा के विषय को नहीं ले जाया गया उस चरित्र का भी मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। **विराहणं वोसिरामि**- रत्नत्रय के विषय में मन, वचन, काय के द्वारा की गई सावद्य वृत्ति विराधना है उसको मैं छोड़ता हूँ **आराहणं अब्भुट्ठेमि**- रत्नत्रय की आराधना और उसके विषय में जो दोष रहित मन, वचन, काय की वृत्ति है उसके लिए मैं अनुष्ठान करता हूँ। **अण्णाणं**- मिथ्यामतिज्ञान, मिथ्याश्रुतज्ञान, मिथ्यावधिज्ञान लक्षण वाला अज्ञान है, मैं इसको छोड़ता हूँ। **सण्णाणं**- मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान लक्षण वाला सम्यग्ज्ञान है, मैं उसका अनुष्ठान करता हूँ। अर्थात् उसके विषय में भावों से उठता हूँ। **कुदंसणं**- विपरीत अभिनिवेश स्वरूप कुदर्शन है उसका मैं परित्याग करता हूँ। **सम्मदंसणं**- तत्त्वार्थ श्रद्धान के लक्षण रूप सम्यग्दर्शन है उसमें मैं उपस्थित होता हूँ।

कुचरियं- मिथ्यारूप चारित्र कुचारित्र है उसको मैं छोड़ता हूँ। **सुचरियं**- सम्यग्रूप सामायिक आदि रूप चारित्र सुचारित्र है, उसको मैं प्राप्त करता हूँ। **कुतवं**- पंचाग्नि के साधन आदि रूप कुत्सित तप है उनको मैं छोड़ता हूँ। **सुतवं**- अनशन आदि तप, बाह्य और अभ्यंतर के भेद से हैं उनमें मैं उपस्थित होता हूँ। संक्षेप से तो **अकरणिज्जं**- जो करने योग्य नहीं है अर्थात् अनुष्ठान के योग्य नहीं है ऐसे अव्रत आदि उनका मैं त्याग करता हूँ। **करणिज्जं**- जो व्रतादि करने योग्य हैं उनमें मैं उपस्थित होता हूँ। **अकिरियं**- जिसका अनुष्ठान नहीं किया है जो अकरण है अर्थात् अनुष्ठान के योग्य नहीं है उसको मैं छोड़ता हूँ। **किरियं**- जो करने योग्य है, अनुष्ठान के योग्य है उसमें मैं उपस्थित होता हूँ। इस प्रकार से व्रत की विराधना करने वाली चीजों को छोड़ता हूँ और विराधना नहीं करने वाले भावों में, मैं उपस्थित होता हूँ। इस तरह से दिखाते हुए कहते हैं। **पाणादिवाद मित्यादि**- प्राणातिपात को छोड़ता हूँ क्योंकि वह प्रथम महाव्रत का विराधना करने वाला है। अभयदान में उपस्थित होता हूँ क्योंकि वह प्रथम महाव्रत में विराधक नहीं है। **मोसं**- मैं मृषावाद को छोड़ता हूँ क्योंकि वह द्वितीय महाव्रत की विराधना करने वाला है। सत्य में उपस्थित होता हूँ क्योंकि वह द्वितीय महाव्रत की विराधना नहीं करता है। (मोसं) - अदत्तादान को मैं छोड़ता हूँ क्योंकि वह तृतीय महाव्रत का उपकार करने वाला है और जो कल्पनीय, योग्य दिया गया है, मैं उसे ग्रहण करता हूँ क्योंकि वह तृतीय महाव्रत का उपकारक है। **अबंभं**- अब्रह्म। अब्रह्मचर्य को मैं छोड़ता हूँ क्योंकि वह चतुर्थ महाव्रत का विराधक है। **बंभचरियं**- ब्रह्मचर्य में मैं उपस्थित होता हूँ क्योंकि वह चतुर्थ महाव्रत का विराधक नहीं हैं। **(परिग्गहं)**- मैं परिग्रह को छोड़ता हूँ क्योंकि वह पंचम महाव्रत का उपकार करने वाला है। अपरिग्रह में, मैं उपस्थित होता हूँ क्योंकि वह पंचम महाव्रत का उपकार करने वाला है। **(राइभोयणं)**- रात्रि भोजन को मैं छोड़ता हूँ क्योंकि छट्ठे अणुव्रत का विराधक है। एक बार दिन मैं भोजन करता हूँ। **पच्चुप्पण्णं**- जो यथाकाल में प्राप्त हुआ प्रासुक

प्राप्तं प्रासुकमभ्युत्तिष्ठामि तदविराधकत्वात्॥ **अट्टरुद्दज्झाणं॥** आर्तध्यानं चतुर्विधं ''आर्तममनोज्ञस्य संप्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारः। तद्विपरीतं मनोज्ञस्य। वेदनायाश्च। निदानं च।'' इत्यभिधानात्। रौद्रध्यानमपि चतुर्विधं, 'हिंसानृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रम्-' इति वचनात्। एवंविधं द्विविधमपि दुर्ध्यानं व्युत्सृजामि, अप्रशस्तत्वात्॥ **धम्मसुक्कझाणं॥** धर्म-(र्म्य) ध्यानं चतुष्प्रकारं 'आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्य-' मित्यभिधानात्। शुक्लध्यानमपि चतुर्विधं 'पृथक्त्वैकत्ववितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्युपरतक्रिया-निवृत्तीनी-' ति वचनात्। एतच्चोक्तप्रकारं द्विविधमपि ध्यानमभ्युत्तिष्ठामि, प्रशस्तत्वात्॥ **किण्ण- (ण्ह) णीलकाउलेस्साओ॥** कषायनुरंजिता योगप्रवृत्तिर्लेश्या। जीवं हि कर्मणा लिंपतीति लेश्या। लिपे-'र्युड्व्या बहुलं' (जै. 2/3/94) इति कर्तरि ण्यः।'ध्युङ्' (जै. 5/2/83) इत्येप्।'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टं' (जै. 4/3/214) इति पकारस्य शकारादेशः। सा च कृष्णनीलकापोतरूपा त्रिविधा लेश्या पापकर्मणा जीवं लिंपति। ततस्तां व्युत्सृजामि। **तेउपम्मसुक्कलेस्सा (ओ)॥** तेजःपद्मशुक्लरूपा तु त्रिप्रकारोऽपि लेश्या पुण्यकर्मणा जीवं लिंपति। अतस्तामभ्युत्तिष्ठामि॥ **आरंभं॥** असिमसिकृष्यादिव्यापारं मनोवाक्कायैर्व्युत्सृजामि॥ **अणारंभं॥** तद्व्यापाराभावमभ्युत्तिष्ठामि॥ **(असंजमं)॥** असंयमं व्युत्सृजामि॥ **(संजमं)॥** संयममभ्युत्तिष्ठामि। संयमो हि द्वादशप्रकारः। षड्विध इंद्रियसंयमः, पंचानामिंद्रियाणां षष्ठस्य च मनसः संयमनात् स्वविषये गच्छतो नियंत्रणात्। प्राणिसंयमश्च षड्विधः, पंचानां स्थावराणां त्रसानां चाविराधनात्। तद्विपर्ययादसंयमोऽपि द्वादशप्रकारः। अथवा सप्तदशप्रकारः संयमः।

पंचासवेहिं विरमण पंचिंदियणिग्गहो कसायजओ।
तिहिं दंडेहिं य विरदी सत्तारस संजमा भणिया॥

इत्यभिधानात्। तत्प्रतिषेधादसंयमोऽपि सप्तदशप्रकारः॥ **सग्गंथं॥** बाह्याभ्यन्तरग्रंथसहितमात्मनः स्वरूपं व्युत्सृजामि॥ **(णिग्गंथं)॥** तद्विपरीतं निर्ग्रंथस्वरूपमभ्युत्तिष्ठामि॥ **सचेलं॥** चेलं वस्त्रं तेन सहितं सावरणं स्वरूपं व्युत्सृजामि॥ **(अचेलं)॥** तद्विपरीतमचेलं निरावरणं स्वरूपमभ्युत्तिष्ठामि॥ **अलोचं॥** लोचो बालोत्पाटः। तदभावोऽलोचः शिरोऽमुंडनं। तद्व्युत्सृजामि॥ **(लोचं)॥** लोचं पुनरभ्युत्तिष्ठामि॥ **ण्हाणं॥** स्नानं जलेन शरीरमलप्रक्षालनं व्युत्सृजामि॥ **(अण्हाणं)॥** तदभावोऽस्नानमभ्युत्तिष्ठामि॥ **अखिदिसयणं॥**

भोजन है उसी को मैं प्राप्त करता हूँ क्योंकि वह छठवें अणुव्रत का विराधक नहीं है। **अट्ठरुद्दज्झाणं**- आर्तध्यान चार प्रकार का है। अमनोज्ञ की प्राप्ति हो जाने पर उसके वियोग के लिए जो स्मृति समन्वाहार है वह पहला अमनोज्ञ के संयोग का आर्तध्यान है। दूसरा मनोज्ञ के वियोग का आर्तध्यान है। तीसरा वेदना नाम का आर्तध्यान है और चौथा निदान नाम का आर्तध्यान है। ऐसे चार प्रकार के आर्त ध्यान कहे हैं। रौद्रध्यान भी चार प्रकार का है। हिंसानंद रौद्रध्यान, मृषानंद रौद्रध्यान, चौर्यानंद रौद्रध्यान और विषय संरक्षणानंद रौद्रध्यान। एवं दोनों ही प्रकार के दुर्ध्यान को मैं छोड़ता हूँ क्योंकि ये दोनों ध्यान अप्रशस्त हैं। **धम्मसुक्कझाणं**- धर्म ध्यान चार प्रकार का है। आज्ञा विचय, अपाय विचय, विपाक विचय, संस्थान विचय। शुक्लध्यान जो कि पृथकत्ववितर्क विचार ध्यान, एकत्ववितर्क अविचार ध्यान, सूक्ष्म क्रियाप्रतिपाति और व्युपरत क्रिया निवृत्ति के भेद से चार प्रकार का कहा गया है। इन दोनों ही प्रकार के धर्म और शुक्ल ध्यानों में मैं उपस्थित होता हूँ क्योंकि ये प्रशंसनीय हैं। **किण्ण (ण्ह) णीलकाउलेस्साओ**- कषाय से अनुरंजित योग की प्रवृत्ति लेश्या है। जीव को कर्मों के द्वारा जो लेपती है इसलिए भी वह लेश्या कहलाती है। लिंप् धातु से लेश्या शब्द बनता है। कृष्ण, नील, कापोत रूप तीनों ही प्रकार की लेश्याएँ पाप कर्म से जीवों को लेपती हैं। इसलिए मैं उनको छोड़ता हूँ। **तेउपम्मसुक्क लेस्सा (ओ)**- तेजो लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या। ये तीनों ही प्रकार की लेश्याएँ पुण्य कर्म से जीवों को लेपती हैं इसलिए मैं उनको प्राप्त करता हूँ। **आरंभं**- असि, मसि, कृषि आदि का व्यापार आरंभ है जो मन, वचन, काय के द्वारा किया जाता है उसे मैं छोड़ता हूँ। **अणारंभं**-उस व्यापार के अभाव को मैं प्राप्त होता हूँ। **(असंजमं)**-मैं असंयम को छोड़ता हूँ। **(संजमं)**- मैं संयम के निकट उपस्थित होता हूँ। संयम बारह प्रकार का है। छः प्रकार का इन्द्रिय संयम है। पाँच इन्द्रिय संयम और छठा मनसंयम। पाँच इन्द्रिय तथा मन का अपने-अपने विषय में जाने से नियंत्रण कर लेना है यह छः प्रकार का इन्द्रिय संयम है। प्राणि संयम भी छः प्रकार है पाँच स्थावर जीवों का और त्रस जीवों की विराधना नहीं करने से वह प्राणि संयम छः प्रकार का है। उसके विपरीत असंयम भी बारह प्रकार का है। अथवा सत्रह प्रकार का संयम है।

गाथार्थ-पाँच आस्त्रवों से दूर होना, पाँच इन्द्रियों का निग्रह होना, चार कषायों का जय होना, तीन प्रकार के दंडों से विरति होना, ये सत्रह प्रकार का संयम पाया जाता है।

उस संयम का प्रतिषेध हो जाने से असंयम भी सत्रह प्रकार का हो जाता है। **सग्गंथं**- बाह्य और अन्तरंग ग्रन्थ अर्थात् परिग्रह से सहित आत्मा का स्वरूप सग्ग्रंथ है उसको मैं छोड़ता हूँ। **णिग्गंथं**- उसके विपरीत जो निर्ग्रन्थ स्वरूप है उसका मैं पालन करता हूँ। **सचेलं**- चेल वस्त्र अर्थात् आवरण से सहित स्वरूप को मैं छोड़ता हूँ। **अचेलं**- उसके विपरीत निरावरण स्वरूप को मैं प्राप्त करता हूँ। **अलोचं**- लोच अर्थात् बालों का उखाड़ना। उसका अभाव अलोच है सिर का मुंडन नहीं करना **तद्व्युत्सृजामि**- उस अलोच को मैं छोड़ता हूँ। पुनः लोचं- लोच को मैं करने के लिए तैयार होता हूँ। **ण्हाणं**- शरीर के मल का प्रक्षालन करना स्नान है उसको मैं छोड़ता हूँ। **अण्हाणं**- उसका अभाव

क्षितौ भूमौ शयनं क्षितिशयनं। तदभावोऽक्षितिशयनं खट्वादिशयनं। तद्व्युत्सृजामि॥ **(खिदिसयणं)॥** क्षितिशयनं पुनरभ्युत्तिष्ठामि॥ **दंतवणं॥** दन्तानां मलशोधनं व्युत्सृजामि॥ **(अदंतवणं)॥** तद्विपरीतमदंतवणं अभ्युत्तिष्ठामि॥ **अठ्ठिदिभोयणं॥** स्थितिभोजनमुद्भभोजनं। तदभावोऽस्थितिभोजनमुपविष्टादिभोजनं तद्व्युत्सृजामि॥ **(ठिदिभोयणं)॥** स्थितिभोजनमेकभक्तंपुनरभ्युत्तिष्ठमि॥ **अपाणिपत्तं॥** पाणिरेव पात्रं भोजनभाजनं पाणिपात्रं। न पाणिपात्रमपाणिपात्रं स्थाला (ल्या) दि तद्व्युत्सृजामि॥ **(पाणिपत्तं)॥** पाणिपात्रं पुनरभ्युत्तिष्ठामि॥ **(कोहं)॥** क्रोधं कोपममर्षं व्युत्सृजामि॥ **(खंतिं)॥** क्षांतिमुत्तमक्षमा-मभ्युत्तिष्ठामि॥ **(माणं)॥** मानं गर्वं स्तब्धत्वं व्युत्सृजामि॥ **(मद्दवं)॥** मार्दवं मृदुत्वं विनीतत्वमभ्युत्तिष्ठामि॥ **(मायं)॥** मायां योगवक्रतां व्युत्सृजामि॥ अज्जवं॥ ऋजुत्वमयोगवक्रतामभ्युत्तिष्ठामि॥ **(लोहं)॥** लोभं परिग्रहगृद्धिं व्युत्सृजामि॥ **(संतोसं)॥** संतोषं परिग्रहानाकांक्षामभ्युत्तिष्ठामि॥ **मिच्छत्तं॥** अदेवेऽधर्मेऽतत्त्वे च देवादिबुद्धिरूपतया विपरीताभिनिवेशं॥ **परिवज्जामि॥** परिवर्जयामि परित्यजामि॥ **सम्मत्तं॥** देवादौ देवादिबुद्धिरूपतया विपरीताभिनिवेशाभावं॥ **उवसंपज्जामि॥** उपसंपद्ये स्वीकरोमि॥ **असीलं॥** व्रतपरिरक्षणं शीलं। न शीलमशीलं व्रतविघातस्तत्परिवर्जयामि॥ **सुसीलं॥** शोभनं व्रतपरिरक्षणमष्टादशसहस्त्रसंख्यं वा शीलं परमागमे प्रतिपादितस्वरूपमुपसंपद्ये॥ **ससल्लं॥** शल्यमिव शल्यं मायामिथ्यानिदानं। यथैव हि शल्यं बाणादि शरीरमनुप्रविश्य पीडां करोति, तथा मायादिकमप्यात्मानमनुप्रविश्य शारीरमानसादीनि नानादुःसहदुःखान्यनेकयोनिगतानि करोतीति शल्यमित्युच्यते। सह तेन वर्तते इति सशल्यं स्वरूपं परिवर्जयामि॥ **(णिस्सल्लं)॥** ततो निष्क्रान्तं पुनर्निःशल्यं स्वरूपमुपसंपद्ये॥ **अविणयं॥** विनयो ज्ञानदर्शनचारित्रोपचारगोचरत्वाच्चतुर्विधः। तदभावोऽविनयस्तं परिवर्जयामि॥ **(विणयं)** विनयं पुनरुपसंपद्ये॥ **अणाचा (या)रं॥** आचारः सामायिकच्छेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसांपराययथाख्यातलक्षणो व्रताद्याचरणं वा। तदभावोऽनाचारः। तं परिवर्जयामि॥ **(आयारं)॥** आचारं तुपसंपद्ये॥ **उम्मग्गं॥** सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रलक्षणो

रूप अस्नान है उसको मैं प्राप्त करता हूँ। **अखिदिसयणं**- भूमि पर शयन क्षिति शयन है उसका अभाव अर्थात् खटिया आदि पर शयन करना ये अक्षिति शयन है उस अक्षिति शयन को मैं छोड़ता हूँ। **खिदिसयणं**- क्षितिशयन को मैं पुनः प्राप्त करता हूँ। **दंतवणं**- दाँतों के मल शोधन को मैं छोड़ता हूँ। **अदंतवणं**- उसके विपरीत अदंत धवन को मैं प्राप्त होता हूँ। **अट्ठिदिभोयणं**- एक बार खड़े होकर भोजन करना स्थिति भोजन है। उसका अभाव हो जाना अस्थिति भोजन है अर्थात् बैठ करके या बैठे हुए आदि तरीके से भोजन करना उसको मैं छोड़ता हूँ। **ठिदिभोयणं**- एक बार भोजन करना और खड़े होकर भोजन करना उसको मैं पुनः प्राप्त करता हूँ। **अपाणिपत्तं**- पाणि ही जिसका पात्र है जिस भोजन के लिए पाणि अर्थात् हाथ ही पात्र है ऐसे पाणि पात्र का अभाव हो जाना अपाणिपात्र है अर्थात् थाली आदि को मैं छोड़ता हूँ। **पाणिपत्तं**- और पाणिपात्र को पुनः प्राप्त होता हूँ। **कोहं**- क्रोध या कोप अमर्ष को कहते हैं उसको मैं छोड़ता हूँ। **खंतिं**- क्षांति -धैर्य-उत्तम क्षमा भाव है उसको मैं प्राप्त करता हूँ। **माणं**- मान गर्व है, स्तब्धपना है, उसको मैं छोड़ता हूँ। **मद्दवं**- मार्दव मृदुपना है विनीतपना है उसको मैं प्राप्त करता हूँ। **मायं**- माया योगों की वक्रता है उसको मैं छोड़ता हूँ। **अज्जवं**- ऋजुपना योगों की वक्रता रहित होना है उसको मैं प्राप्त करता हूँ। **लोहं**- लोभ परिग्रह की वृद्धि है उसको मैं छोड़ता हूँ। **संतोसं**- परिग्रह की अनाकांक्षा ही संतोष है उसको मैं प्राप्त होता हूँ। **मिच्छत्तं**- अदेव, अधर्म और अतत्त्व में देव आदि रूप बुद्धि होने से विपरीत अभिप्राय का होना मिथ्यात्व है। **परिवज्जामि**- उसको मैं छोड़ता हूँ। **सम्मत्तं**- देव आदि बुद्धि रूप से विपरीत अभिनिवेश का अभाव हो जाना सम्यक्त्व है उसको मैं प्राप्त होता हूँ। **उवसंपज्जामि**- उसको मैं स्वीकार करता हूँ। **असीलं**- व्रतों की रक्षा करना ही शील है, जहाँ शील नहीं है वह अशील है, व्रत का जो विघात है उसको मैं छोड़ देता हूँ। **सुसीलं**- शोभनीय तरीके से व्रतों का परिरक्षण करना अथवा अठारह हजार संख्या वाले शील का, जिनका स्वरूप परमागम -शास्त्रों में कहा गया है उसको मैं प्राप्त होता हूँ। **ससल्लं**- माया, मिथ्या और निदान शल्य के समान होने से शल्य कहे जाते हैं जैसे कि शल्य, बाण आदि शरीर में प्रवेश करके पीड़ा आदि उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार से माया आदि भी आत्मा में प्रवेश करके शारीरिक और मानसिक आदि नाना प्रकार के दुस्सह दुःख अनेक योनियों तक प्राप्त कराते रहते हैं इसलिए यह शल्य कहे जाते हैं, उस शल्य के साथ रहना सशल्य है उस स्वरूप को मैं छोड़ता हूँ। **णिस्सल्लं**- उस शल्य से जो निष्क्रान्त हुए हैं अर्थात् निशल्य स्वरूप को प्राप्त हुए हैं उसी को मैं प्राप्त करता हूँ अर्थात् निशल्य स्वरूप को मैं स्वीकारता हूँ। **अविणयं**- ज्ञान, दर्शन, चारित्र और उपचार के भेद से चार प्रकार की विनय होती है, उस विनय का अभाव हो जाना अविनय है, मैं उस अविनय को छोड़ता हूँ। **विणयं**- पुनः उस विनय को मैं स्वीकार करता हूँ। **अणाचा (या) रं**-सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय, यथाख्यात लक्षण वाला आचार होता है अथवा व्रत आदि का आचरण आचार कहलाता है उसके अभाव से अनाचार होता है उस अनाचार को मैं छोड़ता हूँ। **आयारं**- उस आचार को मैं स्वीकार करता हूँ। **उम्मग्गं**- सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र लक्षण वाला, जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहा हुआ स्वर्ग और मोक्ष का जो मार्ग है उससे भिन्न एकांत वादियों के द्वारा

जिनोक्तः स्वर्गापवर्गमार्गः। ततोऽन्य एकांतवादिपरिकल्पित उन्मार्गः। तं परिवर्जयामि॥ **(मग्गं)॥** उक्तप्रकारं तु जिनमार्गमुपसंपद्ये॥ **(अखंतिं)॥** अक्षांतिं परिवर्जयामि॥ **(खंतिं)॥** क्षांतिमुपसंपद्ये॥ **अगुत्तिं॥** सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः। सा त्रिविधा, मनोवाक्कायगुप्तिभेदात्। रत्नत्रयस्य हि गोपनं रक्षणं गुप्तिः। रत्नत्रयं वा गोपयति रक्षति पालयतीति गुप्तिः प्रशस्ता मनोवाक्कायाः। तद्भावोऽगुप्तिः। तां परिवर्जयामि॥ **(गुत्तिं)॥** गुप्तिं पुनरुपसंपद्ये॥ **अमुत्तिं॥** देशतः साकल्यतो वा कर्मणां निर्जरा मुक्तिः। तदभावोऽमुक्तिः। तां परिवर्जयामि॥ **(मुत्तिं)॥** मुक्तिं तूपसंपद्ये॥ **असमाहिं॥** धर्म्यं शुक्लं च ध्यानं समाधिः। तदभावोऽसमाधिः। तं परिवर्जयामि॥ **णिम्ममत्तिं (त्तं)॥** शरीरादौ निर्ममत्वं निःस्पृहत्वमुपसंपद्ये॥ एवं विस्तरेण हेयोपादेयानां प्रत्येकं नामोच्चारणपूर्वकौ परित्यागस्वीकारौ प्रदर्शितौ। संक्षेपतस्तु-**अभावियं भावेमि॥** अभावितमनादौ संसारे परिभ्रमता मया यत्कदाचिदपि न भावितं नाभ्यस्तं सम्यग्दर्शनादि तद्भावयाम्यभ्यस्यामि॥ **(भावियं)॥** भावितमनादौ संसारे यत्सर्वदाऽभ्यस्तं मिथ्यादर्शनादि तत्॥ **ण भावेमि॥** न भावयामि नाभ्यस्यामि॥ **इम-**मित्यादि। इमं वक्ष्यमाणविशेषणविशिष्टं॥ **णिग्गंथं॥** निर्ग्रंथलिंगलक्षणं॥ **पव्वयण (णं)॥** प्रव्रजनं दीक्षाग्रहणं। तच्छ्रद्दधामीति संबंधः॥ **पावयण**मिति पाठे प्रवचन आगमे भवं प्रावचनं। मोक्षमार्गत्वेन निर्ग्रंथलिंगमागमे प्रतिपादितमित्यर्थः। कथंभूतमेतत् ? **अणुत्तरं॥** न विद्यत उत्तरमुत्कृष्टं मोक्षमार्गत्वेनान्यद्यस्मान्निर्गन्थलिंग-ग्रहणरूपात्प्रव्रजनात्॥ **केवलियं॥** केवलिनः संबंधि यन्निर्ग्रंथलिंगं तत्॥ **पडिपुण्णं ॥** परिपूर्णमयोगकेवलिनि निर्ग्रंथलिंगस्य निःशेषकर्मक्षयहेतुत्वेन संपूर्णत्वात्॥ **णेगाइयं॥** परिपूर्णरत्नत्रयनिकाये भवं नैकायिकं॥ यत एवंविधं तल्लिंगमत, एव परिपूर्णं॥ **णेगायियं॥** अनेकप्रकारमद्वितीयं वेत्यन्ये॥ **सामायियं॥** समयनं समय एकत्वं परमोदासीनता सर्वसावद्ययोगव्यावृत्तिर्वा। तत्र भवं तत्प्रयोजनं वा सामायिकं। तल्लिंगं॥ **संसुद्धं॥** निरतिचारमालोचनादिप्रायश्चित्तविशुद्धं वा॥ **सल्लघट्टाणं॥** (सल्लघत्ताणं) शल्यैर्मायादिभिर्घुट्यंते (घट्ट्यंते)

परिकल्पित सभी उन्मार्ग है उस उन्मार्ग को मैं छोड़ता हूँ। **मग्गं**- उक्त प्रकार से जो जिन मार्ग कहा गया है उसी को मैं स्वीकार करता हूँ। **अखंतिं**- अधैर्य को छोड़ता हूँ। **खंतिं**- अर्थात् धैर्य को मैं स्वीकार करता हूँ। **अगुत्तिं**- सम्यक् रूप से योगों का निग्रह करना गुप्ति है, मन, वचन, काय के भेद से तीन प्रकार की होती है,रत्नत्रय की रक्षा करना गुप्ति है। अथवा रत्नत्रय की जो रक्षा करती है या रत्नत्रय का जो पालन करती है वह गुप्ति है, वह प्रशस्त मन, वचन व काय के व्यापार हैं और उस गुप्ति का अभाव होना अगुप्ति है, मैं उस अगुप्ति को छोड़ता हूँ। **गुत्तिं**- अर्थात् गुप्ति को पुनः स्वीकार करता हूँ। **अमुत्तिं**- एकदेश रूप से अथवा पूर्णरूप से कर्मों की निर्जरा मुक्ति है, उस मुक्ति का अभाव होना अमुक्ति है, मैं उस अमुक्ति को छोड़ता हूँ। **मुत्तिं**- मुक्ति को मैं स्वीकार करता हूँ। **असमाहिं**- धर्म ध्यान व शुक्ल ध्यान यह समाधि है उसका अभाव हो जाना असमाधि है मैं उस असमाधि को छोड़ता हूँ। **णिम्ममत्तिं (त्तं)**- शरीर आदि में निर्ममत्व होना निःस्पृहता होना उसको मैं स्वीकार करता हूँ। और इस प्रकार से विस्तार पूर्वक हेय-उपादेय प्रत्येक का नाम उच्चारपूर्वक परित्याग और स्वीकार ये दोनों ही दिखाया है, संक्षेप से तो यही कहता हूँ कि- **अभावियं भावेमि**-अनादि संसार में भ्रमण करते हुए मेरे द्वारा जिसकी कदाचित् भी भावना नहीं की गयी है और जिसका अभ्यास नहीं किया गया है वह अभावित भाव है। ऐसे सम्यक् दर्शन आदि की मैं भावना करता हूँ अर्थात् उनका मैं अभ्यास करता हूँ। **भावियं**- और जो अनादि काल से संसार में भ्रमण करते हुए मेरे द्वारा अनेक बार भावित हुआ है वह भावित भाव है ऐसा वह मिथ्यादर्शन आदि का अभ्यास उसको मैं नहीं भाता हूँ। **ण भावेमि**- अर्थात् उसकी मैं भावना नहीं करता हूँ उसका मैं अभ्यास भी नहीं करता हूँ। **इम मित्यादि**- इस प्रकार आगे कहे जाने वाले विशेषणों से विशिष्ट। **णिग्गंथं**- ये जो निर्ग्रंथ लिंग लक्षण वाला है ये निर्ग्रंथ का लक्षण है। **पव्वयणं (णं)**-दीक्षा का ग्रहण करना उसकी मैं श्रद्धा करता हूँ यह सम्बन्ध है। **पावयण**- इस प्रकार का पाठ होने पर प्रवचन अर्थात् आगम में उत्पन्न हुए वचन प्रावचन हैं। मोक्ष मार्ग रूप से निर्ग्रंथ लिंग को आगम में प्रतिपादित किया गया है यह इसका अर्थ है। कैसा है यह निर्ग्रंथ लिंग ? **अणुत्तरं**- निर्ग्रन्थ लिंग अनुत्तर है इससे उत्तर अर्थात् उत्कृष्ट कुछ भी नहीं है। इस निर्ग्रंथ लिंग के ग्रहण रूप दीक्षा से हटकर अन्य कुछ भी मोक्ष मार्ग रूप से नहीं है। **केवलियं**- केवली से सम्बन्धित यह निर्ग्रन्थ लिंग है। **पडिपुण्णं**- यह परिपूर्ण है क्योंकि निर्ग्रंथ लिंग के धारण करने वाले अयोगी केवली में निःशेष रूप से कर्म का क्षय होने से हेतु रूप से यह लिंग परिपूर्ण हो जाता है। **णेगाइयं**- परिपूर्ण रत्नत्रय के समूह में होता है इसलिए नैकायिक लिंग कहलाता है चूँकि यह इस प्रकार का लिंग है इसलिए ही यह परिपूर्ण है। **णेगायियं**- अनेक प्रकार का है अर्थात् अद्वितीय है इसलिए नेगायिक है। **सामायियं**- समय अर्थात् स्वशुद्ध आत्मा में एकत्व परम उदासीनता अथवा समस्त सावद्ययोगों से व्यावृत्ति रूप होने से यह सामायिक रूप होता है इसलिए समय है उस समय में होना जिसका प्रयोजन है वह सामायिक है। इस प्रकार का वह लिंग है। **संसुद्धं**- वह निरतिचार है अथवा आलोचना आदि प्रायश्चित से वह विशुद्ध हुआ है। **सल्लघट्टाणं**- माया आदि शल्यों के द्वारा जो पीड़ित किये जाते हैं वह शल्य घट्ट है उन शल्यघट्टों की शल्य को घातन करने वाला यह लिंग

कदर्थ्यंत इति शल्यघट्टाः। तेषां। शल्यघातनं तल्लिंगं। तस्मिन्सति सर्वत्र निःस्पृहत्वेन निदानादिशल्यासंभवात्॥ **सिद्धिमग्गं॥** सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिर्बुद्धितपोलब्ध्यादि-ऋद्धि प्राप्तिर्वा। तस्या मार्गस्तल्लिंगं॥ **सेढिमग्गं॥** प्रतिसमयमसंख्यातगुणकर्मनिर्जरा श्रेणिमार्गः। अथवोपशमश्रेणि-क्षपकश्रेण्योर्मार्गारोहणहेतुर्निग्रंथलिंगं॥ **खंतिमग्गं॥** क्षांतेरुत्तमक्षमाया मार्गः, बाह्याभ्यंतरपरिग्रहाभावे रागद्वेषयोरनुत्पत्तौ तल्लिंगस्योत्तमक्षमा-मार्गत्वोपपत्तेः॥ **मुत्तिमग्गं** ॥ मोचनं मुक्ति सर्वसंगपरित्यागः। तस्या मार्गस्तल्लिंगं॥ **मोक्खमग्गं पमोक्खमग्गं॥** मोक्षो देशतः कर्मक्षयोऽर्हदवस्थालक्षणः। **प्रमोक्षः** साकल्येन कर्मक्षयः सिद्धावस्थारूपः। तयोर्मार्गस्तल्लिंगं॥ **णिज्जाणमग्गं॥** यानात्संसारे पर्यटनान्निष्क्रांतं निर्याणं चतुर्गतिभ्रमणाभावः। तस्य मार्गस्तल्लिंगं॥ **णिव्वाणमग्गं॥** निर्वाणं संसारोपरमः परमसुखं वा तस्य मार्गस्तल्लिंगं॥ अत एव॥ **सव्वदुक्खपरिहाणिमग्गं॥** सर्व दुःखानां शारीरमानसादीनां परि समंताद्धानिः प्रच्युतिः। तस्या मार्गस्तल्लिंगं॥ **सुचरियपरिणिव्वाणमग्गं॥** शोभनं सुविशुद्धं चारित्रं सामायिकादि येषां ते सुचरित्राः। तेषां परिनिर्वाणमार्गस्तल्लिंगं, तद्भवे द्वितीयादिभवे वा मोक्षप्रापकत्वात्॥ **जत्थ ठिदे**त्यादि॥ यत्र निर्ग्रंथलिंगे स्थिता जीवा मुक्त्यर्थिनः सिद्धयंति स्वात्मोपलंभं लब्ध्यादि-ऋद्धीश्च लभंते॥ **बुज्झंति॥** जीवादितत्त्वानां यथावत्स्वरूपं बुध्यंते, तल्लिंगे सत्येव तद्बोधनिबन्धनानां बुद्ध्यादिलब्धीनां संभेवात्॥ **मुच्चंति॥** सकलकर्मविमुक्ता भवति॥ **परिणिव्वायंति॥** परिनिर्वायंति (परिनिर्वांति) सुखिनः कृतकृत्या वा भवंति॥ **सव्वदुक्खाणमंतं करेंति॥** सकलदुःखानां शारीरमानसाद्यखिलदुःखानामंतं विनाशं कुर्वंति॥ **तं सद्दहामि** ॥ तत्पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टं निर्ग्रंथलिंगं श्रद्दधाम्यनुत्तरमित्यादि-विशेषणविशिष्टतया तत्र विपरीताभिनिवेशविविक्तो भवामि॥ **तं पत्तियामि॥** तत्तथाभूतविशेषणविशिष्टतया प्रत्येमि प्रतिपद्ये वेद्मीत्यर्थः॥ **तं रोचेमि॥** मोक्षादिकारणतया तत्रैव रुचिं करोमि, जन्मनि जन्मनि तन्मम भवत्वित्यखिलमभिलषामि वा॥ **तं फासेमि॥** मोक्षार्थित्वात्तदेव तत्साधनतया स्पृशाम्यनुतिष्ठामि॥ **इदो उत्तर**भित्यादि॥ इतोऽस्मादुक्तप्रकारान्निर्ग्रंथ-

है अर्थात् इस लिंग के होने पर सर्वत्र निस्पृह के साथ निदान आदि शल्य संभव नहीं होते हैं। **सिद्धिमग्गं**- स्व आत्मा की उपलब्धि सिद्धि है अथवा बुद्धि लब्धि, तप लब्धि आदि ऋद्धियों की प्राप्ति करना सिद्धि है, उस सिद्धि का मार्ग यह निर्ग्रंथ लिंग है। **सेढिमग्गं**- प्रतिसमय असंख्यात गुणी कर्मों की निर्जरा श्रेणी का मार्ग है अथवा उपशम श्रेणी व क्षपक श्रेणी के मार्ग में आरोहण करने के लिए निर्ग्रंथ लिंग हेतु है। **खंतिमग्गं**- क्षान्ति अर्थात् धैर्य उत्तम क्षमा का मार्ग है। बाह्य अथवा अन्तरंग परिग्रह का अभाव हो जाने पर राग और द्वेष की उत्पत्ति नहीं होने से इस लिंग को उत्तम क्षमा का मार्ग होना सिद्ध हो जाता है। **मुत्तिमग्गं**- छोड़ देना मुक्ति है, समस्त परिग्रह का परित्याग करना उस मुक्ति का मार्ग यह निर्ग्रंथ लिंग है। **मोक्खमग्गं पमोक्खमग्गं**- एकदेश रूप से कर्मों का क्षय होना अरहंत अवस्था वाला मोक्ष है, प्रमोक्ष-समस्त रूप से कर्मों का क्षय हो जाना सिद्ध अवस्था रूप है, इन दोनों ही प्रकार के मोक्ष का मार्ग यह निर्ग्रंथ लिंग है। **णिज्जाणमग्गं**-संसार में भ्रमण करना यान है, उस भ्रमण से रहित होना निर्वाण है अर्थात् इसमें चतुर्गति के भ्रमण का अभाव हो जाता है। उस निर्वाण का मार्ग यह निर्ग्रंथ लिंग है। **णिव्वाणमग्गं**- निर्वाण अर्थात् संसार से दूर हट जाना अथवा परमसुख को प्राप्त हो जाना है। उस निर्वाण का मार्ग यह निर्ग्रंथ लिंग है। इसीलिए इसे निर्वाण का मार्ग कहा जाता है। **सव्वदुक्खपरिहाणिमग्गं**- सभी प्रकार के शारीरिक, मानसिक आदि दुःखों को चारों ओर से छुड़ा देने वाला है इसलिए उस दुःख की हानि का मार्ग यह निर्ग्रंथ लिंग है। **सुचरियपरिणिव्वाणमग्गं**- शोभनीय सुविशुद्ध चारित्र व सामायिक आदि जिनके हैं वे सुचरित्र कहलाते हैं। उन सुचारित्र वालों के परिनिर्वाण का मार्ग निर्ग्रंथ लिंग है। उस भव में अथवा दूसरे आदि भव में चूँकि यह मोक्ष को प्राप्त करा देता है इसलिए इस सुचरित्र से परिनिर्वाण का मार्ग होता है, यह सिद्ध होता है। **जत्थ ठिदे**-जिस निर्ग्रंथ लिंग में स्थित हुए मुक्ति की इच्छा करने वाले जीव सिद्धी को प्राप्त होते हैं, अपने स्व आत्मा की उपलब्धि करते हैं और अनेक प्रकार की लब्धि आदि ऋद्धियों को भी प्राप्त करते हैं। **बुज्झंति**- जीव आदि तत्त्वों को यथावत् स्वरूप से जानते हैं, इस लिंग के होने पर ही उस ज्ञान से सम्बन्ध रखने वाली बुद्धि आदि लब्धियाँ भी संभव हो जाती हैं। **मुच्चंति**- इस निर्ग्रंथ लिंग से जीव समस्त कर्मों से विमुक्त हो जाते हैं। **परिणिव्वायंति**- ये जीव सभी प्रकार से सुखी हो जाते हैं अर्थात् कृतकृत्य हो जाते हैं। **सव्वदुक्खाणमंतं करेंति**- शारीरिक, मानसिक आदि समस्त प्रकार के दुःखों के अंत को अर्थात् विनाश को प्राप्त कर लेते हैं। **तं सद्दहामि**- इस प्रकार के पूर्वोक्त विशेष गुणों से विशिष्ट निर्ग्रंथ लिंग की मैं श्रद्धा करता हूँ। अनुत्तर आदि विशेषणों से विशिष्ट उस निर्ग्रंथ लिंग के द्वारा तथा उस विषय में विपरीत अभिनिवेश से रहित हो जाता हूँ। **तं पत्तियामि**- उस प्रकार के विशेषणों से विशिष्ट उस निर्ग्रंथ लिंग की मैं स्वीकारता धारण करता हूँ ,उस पर विश्वास करता हूँ , उसको जानता हूँ। **तं रोचेमि**- मोक्ष आदि का कारण होने से मैं उसी में रुचि रखता हूँ। जन्म-जन्म में वह मेरे लिए होवे अथवा उस सम्पूर्ण लिंग की मैं इच्छा करता हूँ। **तं फासेमि**- मोक्ष की इच्छा करने वाला होने से उसको साधन रूप में स्पर्श करता हूँ अर्थात् उसका मैं अनुष्ठान करता हूँ अर्थात् उसके निकट उपस्थित होता हूँ। **इदो उत्तरमित्यादि**- इस उक्त प्रकार कहे हुए निर्ग्रंथ लिंग से बढ़कर और कुछ भी उत्कृष्ट

लिंगादुत्तरमुत्कृष्टं ॥ **अण्णं ॥** अन्यन्मोक्षादिसाधकं लिंगं वर्तमानकाले ॥ **णत्थि ॥** नास्ति । अतीतकाले ॥ **ण भूदं ॥** न भूतं न संजातं ॥ **ण भव्वं ॥** न वर्तमानकाले समीपवर्ति संभवति ॥ **ण भविस्सदि ॥** अनंतेनापि कालेनाग्रे न भविष्यति ॥ **कयाचि वा ॥** कदाचिद्वा काले ॥ **कुदोचि वा ॥** कुतश्चिद्वा गुणविशेषात्ततो नास्त्युत्कृष्टं । तमेव गुणविशेषं दर्शयन्नाह-**णाणेण वा दंसणेण वा चरित्तेण वा ॥** ज्ञानदर्शनचारित्राण्युत्कृष्टान्यत्रैव लिंगे संभवंति । अतस्तैः कृत्वाऽन्यल्लिंगमुत्कृष्टं न संभवति ॥ **सुत्तेण वा ॥** सूत्रमागमः, उत्कृष्टागमप्रतिपादितत्वेनापि तदुत्कृष्टं, उत्कृष्टेन सर्वज्ञप्रणीतागमेन निर्ग्रंथलिंगस्यैव मोक्षादिहेतुतया प्रतिपादितत्वादन्यागमानां चागमाभासतयानुत्कृष्टत्वात् ॥ **सीलेण वा गुणेण वा ॥** शीलान्यष्टादशसहस्रसंख्यानि गुणाश्चतुरशीतिलक्षसंख्या य आगमे प्रतिपादितास्तेऽस्मिन्नेव लिंगे सति संभवंति । इति गुणशीलाभ्यामप्यतोऽन्यदधिकं न संभवंति **॥ तवेण वा ॥** तपसा वा द्वादशप्रकारेण ॥ **णियमेण वा वदेण वा ॥** नियतकालं-व्रतं नियमः । यावज्जीवं व्रतं । तेन ॥ **विहारेण वा ॥** आचरणेन वा ॥ **आलएण वा ॥** निरवद्याश्रयेण ॥ **अज्जवेण वा ॥** आर्जवेन वाऽवक्रतया ॥ **लाहवेण वा ॥** कर्मलघुत्वेन ॥ **अण्णेण वा ॥** उक्तप्रकारेभ्योऽन्येन केनचित्प्रकारेणातो निर्ग्रंथलिंगादन्यल्लिंगमुत्कृष्टं नास्ति, न भूतं, न भविष्यतीति । तथा चैवंविधे निर्ग्रंथलिंगे स्थितोऽहं ॥ **समणोमि ॥** श्रमणो यतिरस्मि भवामि ॥ **संजदोमि ॥** प्राणीद्रियसंयमपरो भवामि ॥ **उवरदोमि ॥** विषयादिभ्यो व्यावृत्तो भवामि ॥ **उवसंतोमि ॥** क्वचिदपि विषये रागद्वेषाभावादुपशांतो भवामि ॥ **उवही**त्यादि ॥ उपधिः परिग्रहः ॥ **णियडि ॥** निकृतिर्वंचना ॥ **माणो ॥** मानो गर्वः ॥ **माया ॥** माया कौटिल्यं ॥ **मोस ॥** असत्यं मिथ्याज्ञानमिथ्यादर्शनमिथ्याचारित्राणि च सुप्रसिद्धान्येव ॥ **पडिविरदोमि ॥** एतानि प्रति विरतोऽस्मि व्यावृत्तो भवामि, तत्र रुचिं न करोमि ॥ सम्यग्ज्ञानं सम्यग्दर्शनं सम्यग्चारित्रं च ॥ **रोचेमि ॥** श्रद्दधे ॥ एवमुक्तविशेषणे लिंगे स्थितः संयतत्वादिविशेषणविशिष्टोपि सन्नहं कस्मिन्सति श्रमणो भवामीत्याह- **पढम** इत्यादि ॥ **पढमे महव्वदे ॥** उवट्ठावणमंडलेति संबंधः । प्रथमहाव्रतलक्षणव्रतारोपणे सतीत्यर्थः । उपस्थापनं हि व्रतारोपणं । प्रशस्तमुपस्थापनमुपस्थापनमंडलं । 'हृत' (श. 3/1/82) इति बहुवचननिर्देशात्स्वार्थे मंडलप्रत्ययः, कपोलपालीत्यादौ पालिप्रभृतिवत् । कथंभूते तस्मिन् ? **महत्थे ॥** महान्मोक्षलक्षणोऽर्थो[1] यस्मात् ॥

---

1. 'महान्मोहक्षयलक्षणार्थो' -इति झा-पाठः ।

नहीं है। **अण्णं**- अन्य मोक्ष आदि का साधक लिंग वर्तमान काल में। **णत्थि**- नहीं है। अतीतकाले **ण भूदं**- और अतीत काल में न हुआ है। **ण भव्वं**- न वर्तमान काल में समीपवर्ती संभव है। **ण भविस्सदि**- और अनंतकाल आगे जाकर भी संभव न होगा। **कयाचि वा**- किसी भी काल में। **कुदोचि वा**- किसी भी गुण विशेष से इस लिंग से बढ़कर कुछ भी उत्कृष्ट नहीं है। इस प्रकार के गुण विशेषों को दिखाते हुए कहते हैं- **णाणेण वा दंसणेण वा चरित्तेण वा**- ज्ञान, दर्शन, चारित्र ये उत्कृष्ट हैं, ये इस लिंग में ही संभव होते हैं। इसलिए इनके द्वारा अन्य लिंग कभी उत्कृष्ट संभव नहीं है। **सुत्तेण वा**- सूत्र आगम है। उत्कृष्ट आगम का प्रतिपादन करने अर्थात् उत्कृष्ट आगम में प्रतिपादित हो जाने से वह लिंग उत्कृष्ट है, और सर्वज्ञ प्रणीत उत्कृष्ट आगम के द्वारा निर्ग्रंथ लिंग को ही मोक्ष आदि का हेतुपना कहा गया है। उससे अन्य आगमों को तो आगमाभास होने से अनुत्कृष्टपना सिद्ध होता है। **सीलेण वा गुणेण वा**- अठ्ठारह हजार संख्या वाले शील हैं, चौरासी लाख संख्या के गुण हैं। ये सब आगम में प्रतिपादित हुए हैं इनके होने पर ही यह लिंग संभव होता है इस प्रकार के गुण और शील के द्वारा भी यह अन्यों से अधिक संभव नहीं है। **तवेण वा**- बारह प्रकार के तप द्वारा भी यह अन्यों से अधिक है। **णियमेण वा वदेण वा**-नियत काल के लिए ग्रहण किए हुए व्रत नियम कहलाते हैं और जो जीवन पर्यन्त के लिए होते हैं वो व्रत होते हैं इसके द्वारा भी ये लिंग उत्कृष्ट है। **विहारेण वा**- आचरण के द्वारा यह उत्कृष्ट है। **आलएण वा**- निरवद्यता या निर्दोषता का आश्रय लेता है इसलिए भी यह उत्कृष्ट है। **अज्जवेण वा**- इसमें किसी भी प्रकार की वक्रता नहीं होने से आर्जव रूप है इसलिए उत्कृष्ट है। **लाहवेण वा**- इससे कर्म बहुत हल्के हो जाते हैं इसलिए यह लाघव रूप होने से उत्कृष्ट है। **अण्णेण वा**- कहे हुए प्रकारों से अन्य किसी भी प्रकार से यह निर्ग्रंथ लिंग से अन्य लिंग उत्कृष्ट नहीं होता है, न हुआ है, न होगा। इस प्रकार के निर्ग्रंथ लिंग में स्थित होता हूँ। **समणोमि**- मैं श्रमण अर्थात् यति होता हूँ। **संजदोमि**- प्राणि और इन्द्रिय संयम में तत्पर होता हूँ। **उवरदोमि**- विषय आदि से दूर होता हूँ। **उवसंतोमि**- किसी भी विषय में राग द्वेष का अभाव हो जाने से अब मैं उपशान्त होता हूँ। **उवहीत्यादी**- उपधि परिग्रह को कहते हैं। **णियडि**- निकृति वंचना है। **माणो**- मान गर्व है। **माया**- माया कौटिल्य है। **मोस**-असत्य है। मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र सुप्रसिद्ध हैं। **पडिविरदोमि**- इनके प्रति मैं विरत हूँ अर्थात् इनसे मैं दूर होता हूँ। इस विषय में कोई रुचि नहीं करता हूँ। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र । **रोचेमि**- मैं उनकी श्रद्धा करता हूँ , इस प्रकार कहे हुए विशेषण वाले लिंग में स्थित होता हुआ संयतत्व आदि विशेषण से विशिष्ट होने पर भी किसके होने पर मैं श्रमण होता हूँ ? **पढम** इत्यादि- **पढमे महव्वदे**- उवट्ठावणमंडल यहाँ तक इसका संबंध करना है। प्रथम महाव्रत के लक्षण वाले व्रत के होने पर मैं श्रमण होता हूँ इसका अर्थ है। **उपस्थापनं हि व्रतारोपणं**- इन महाव्रत में उपस्थापित होना ही महाव्रत है। प्रशस्त स्थापन ही उपस्थापन मंडल है। इस प्रकार 'ह्रत' सूत्र से बहुवचन का निर्देश होने से 'स्वार्थ' में मंडल प्रत्यय लगा हुआ है। कपोलपाली-इत्यादि शब्दों में पालि आदि शब्द के समान। उस महाव्रत में किस प्रकार का होने पर ? **महत्थे**- मोक्ष का लक्षण रूप महान् अर्थ है जिससे वह महान हुआ है। **महागुण**- अनंतज्ञान आदि

महागुण ॥ महांतो गुणा अनंतज्ञानादयो यस्मात् ॥ **महाणुभावे ॥** महान्दुर्गतिगमनाभावः संसारोच्छेदत्रिभुवनपूजाहेतुत्वादिलक्षणोऽनुभावो माहात्म्यं यस्माद्व्रव्यानां भवति तन्महानुभावं तस्मिन् ॥ **महापुरिसाणुचिण्णे ॥** महांतश्च ते पुरुषाश्च महापुरुषास्तीर्थकरदेवादयस्तैश्चीर्णेऽनुष्ठिते । इत्थंभूते प्रथमे महाव्रते ॥ **जिणवरपण्णत्ते ॥** जिनवरैस्तीर्थकरदेवैः प्रज्ञप्त आगमे प्रतिपादिते यत् **पाणादिवादादो वेरमणं ॥** इदं मे महाव्रतं ॥ **सुव्वदं ॥** शोभनं निरतिचारं व्रतं सुव्रतं ॥ **दिढव्वदं ॥** दृढमखंडं व्रतं भवतु । किंविशिष्टं ? अर (रि) हंतसाक्षिकं सिद्धसाक्षिकं साधुसाक्षिकं देवतासाक्षिकमात्मसाक्षिकं परमसाक्षिकं यथा भवत्येवं तन्मे महाव्रतं भवतु । एतान्साक्षिभूतान्कृत्वा तन्मया गृहीतमित्यर्थः । पुनरपि कथंभूतं तत्? **णित्थारयं ॥** दुःखदुस्तरदुर्गान्निस्तारकं तत्पर्यंतप्रापकं ॥ **पारयं ॥** संसारपारप्रापकत्वात्पारगं संसारसमुद्रे पततां पालकं वा रक्षकं ॥ **तारयं ॥** संसारमहार्णवोत्तारकं ॥ **आराहयं चावि ॥** अनंतचतुष्टयावाप्तिलक्षणमोक्षस्याराधकं साधकं । अथवा मोक्षार्थिनामाराध्यमवश्यानुष्ठानात् । इत्थंभूतस्य प्रथममहाव्रतस्यारोपणे कृते सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं दैवासिकादिप्रतिक्रमणा क्रियत इत्याह–**देवसियेत्यादि ॥** दैवसिकरात्रिकपाक्षिकचातुर्मासिकसांवत्सरिकेति कालनियमेन यः कश्चिदतिचारो जातस्तस्य सर्वस्य ॥ **उत्तमट्ठं ॥** उत्तमार्थं विशुद्ध्यर्थं प्रतिक्रमणा क्रियते ॥ **इरियावहकेसलोच ॥** इतीर्यापथादिद्रव्यसंबंधे नियमेन यः कश्चिदतिचारो जातस्तस्य सर्वस्योत्तमार्थं प्रतिक्रमणा क्रियत इति ॥

अहावरे इत्यादि ॥ अथ प्रथममहाव्रतादनन्तरं ॥ **अवरे ॥** अपरस्मिन् ॥ **विदीये ॥** द्वितीये महाव्रते ॥ **भंते ॥** भगवन् ॥ सर्वं स्थूलं सूक्ष्मं च ॥ **मुसावादं ॥** मृषावादं प्रत्याख्यामि यावज्जीवं । त्रिविधेनेत्यादि व्याख्यातार्थं ॥ **से कोहेण** वेत्यादि ॥ **से** तस्य महाव्रतस्य मृषावादविरतिलक्षणस्य क्षतिकारित्वेन संबंधिना ॥ **कोहेण वा माणेण** वेत्यादि सर्वं सुगमं ॥ **अण्णदरेण वा केण वि कारणेण जादेण ॥** अन्यतरेणोक्तकारणेभ्योऽन्येन केनचित्कारणेन जातेनोपढौकितेन ॥ **णेव सयं मोसं भासेज्ज** इत्यादि सुगमं ॥ **अहावरे तदियमहव्वदे सव्वं भंते अदत्तादाणं पच्चक्खामि ॥** इत्यादि सुगमं । **से** इत्यादि । **से तस्य** तृतीयमहाव्रतस्यादत्तादानाद्विरतिलक्षणस्य

महान गुण होते हैं इस कारण से वह महाव्रत महान है। **महाणुभावे**- दुर्गति में गमन का अभाव हो जाने से महान कहलाता है अर्थात् संसार के नाश करने के लिए तीन लोक की पूजा का हेतु होने से इत्यादि लक्षणों का सामर्थ्य जिसका माहात्म्य है इस प्रकार के लक्षण व सामर्थ्य व माहात्म्य जिन भव्य जीवों को प्राप्त होता है वह मोक्ष को प्राप्त होता है इसलिए वह महान भाव है। **महापुरिसाणुचिण्णे**- जो महान भी हैं और पुरुष भी हैं, ऐसे महापुरुष तीर्थंकर देव आदि के द्वारा यह अनुष्ठान को प्राप्त हुआ है, इस प्रकार का यह महाव्रत है। **जिणवरपण्णत्ते**- जिनेन्द्र भगवान अर्थात् तीर्थंकरदेव के द्वारा आगम में इसका प्रतिपादन किया गया है। **पाणादिवादादो वेरमणं**- यह महाव्रत प्राणातिपात से विरति रूप महाव्रत है। **सुव्वदं**- शोभनीय अर्थात् निरतिचार व्रत सुव्रत है। **दिढव्वदं**- दृढ़ व्रत अर्थात् अखंड व्रत मेरे लिए होवे। किस विशेषता वाला ? अरहंत की साक्षी में, सिद्ध की साक्षी में, साधु की साक्षी में, देवता की साक्षी में, आत्मा की साक्षी में, परम साक्षी में, जैसे भी हो वह मेरे लिए महाव्रत होवे। इन साक्षीभूतों को करके मेरे द्वारा यह व्रत ग्रहण किया गया है। पुनः किस प्रकार का है यह महाव्रत ? **णित्थारयं**- दुःख रूप, कठिनता से पार करने योग्य दुर्ग से निस्तार दिलाने वाला है अर्थात् उसके पार ले जाने वाला है। **पारयं**- संसार से पार कराने वाला है अथवा संसार समुद्र में गिरने वालों का पालक अर्थात् रक्षक है। **तारयं**- संसाररूपी महासागर के पार उतारने वाला है। **आराहयं चावि**- अनंत चतुष्टय की प्राप्ति लक्षण वाले मोक्ष का आराधक अर्थात् साधक है। अथवा मोक्षार्थियों के लिए आराध्य है अर्थात् अवश्य ही यह अनुष्ठान करने योग्य है। इस प्रकार प्रथम महाव्रत का आरोपण किये जाने पर सभी अतिचारों की विशुद्धि करने के लिए दैवसिक आदिक प्रतिक्रमण किये जाते हैं इसी प्रकार से यहाँ कहते हैं- **देवसियेत्यादि**- दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक इस प्रकार के काल के नियम से जो कुछ भी अतिचार उत्पन्न हुआ हो उस सभी के **उत्तमट्ठं**- उत्तमार्थ के लिए अर्थात् विशुद्धि के लिए प्रतिक्रमण किया जाता है। **इरियावहकेसलोच**- इस प्रकार से ईर्यापथ आदि द्रव्यों के संबंध में नियम से जो कुछ भी अतिचार उत्पन्न हुआ है उन सब की विशुद्धि के लिए मेरे द्वारा प्रतिक्रमण किया जाता है।

अहावरे इत्यादि- अब प्रथम महाव्रत के पश्चात्। **अवरे**- अन्य। **विदीये**- द्वितीय महाव्रत आ जाता है। **भंते**- हे भगवन् जो कुछ भी स्थूल और सूक्ष्म। **मुसावादं**- जो कुछ भी मृषावाद हुआ है उसका मैं जीवन पर्यंत के लिए प्रत्याख्यान करता हूँ। त्रिविधेनेत्यादि व्याख्यातार्थ- तीन प्रकार से, इसकी व्याख्या की जा चुकी है। **से कोहेण** इत्यादि- उस महाव्रत के मृषावाद विरति लक्षण की क्षति करने संबंधी । **कोहेण वा माणेण** इत्यादि- क्रोध या मान से। **अण्णदरेण वा केण वि कारणेण जादेण**- अन्यतर जो कहे हुए कारण हैं उनके अलावा और भी किसी अन्य कारण के उपस्थित हो जाने पर। **णेव सयं मोसं भासेज्ज** इत्यादि- मैं स्वयं मृषा भाषण नहीं करूँगा। **अहावरे तदियमहव्वदे सव्वं भंते अदत्तादाणं पच्चक्खामि**- अब तृतीय महाव्रत में मैं अदत्तादान का कथन करता हूँ , इत्यादि इस सूत्र का कथन सुगम है। **से तस्य**- उस तृतीय महाव्रत में जो कि अदत्तादान विरति लक्षण वाला है उसमें क्षति उत्पन्न करने के कारण से मैं अदत्त को ना स्वयं ग्रहण करता हूँ ना

क्षतिहेतुत्वेन सन्निहितमदत्तं नैव स्वयं गृह्णीयादित्यभिसंबंधः। क्व क्व सन्निहितं यददत्तमित्याह- **गामे वा णयरे वा खेडे वा कव्वडे वा मडंवे वा पट्टणे वा दोणमुहे वा॥** ग्रामादीनां लक्षणं-

ग्रामो वृत्या वृतः स्यान्नगरमुरुचतुर्गोपुरोद्भासिसालं
खेटं नद्यद्रिवेष्टं परिवृतमभितः कर्वटं पर्वतेन॥
ग्रामैर्युक्तं मटंबं दलितदशशतैः पत्तनं रत्नयोनि-
र्द्रोणाख्यं सिंधुवेलावलयवलयितं वाहनं चाद्रिरूढं॥

दोणमुहे॥ द्रोणामुखे। द्रोणाख्य इत्यर्थः॥ **घोसे॥** घोषे गोकुले॥ **आसमे वा॥** आश्रमे तापसपल्ल्यां॥ **सहाये वा॥** सभायां॥ **संवाहे** इति पाठे संवाहः संवाहनमद्रिमारूढं॥ **सण्णिवेसे॥** राजधान्यां गोष्ठिप्रदेशे वा जनपदसमूहाश्रयभूते॥ **खेत्ते॥** सस्यनिष्पत्तिक्षेत्रे॥ **खले॥** धान्यानां मर्दनपचनराशीकरणाद्याश्रयभूतं खलं॥ **जले॥ पथे॥** पथि इति सुप्रसिद्धं॥ **उप्पथे॥** पथो व्यतिरिक्तः प्रदेशो मार्गसमीपवर्त्युत्पथस्तस्मिन्॥ **अरण्णे॥** अरण्येऽटव्यां। एतेषु स्थानेषु यद्वस्तु॥ **णट्ठं वा॥** नष्टं तत्स्वामिनोऽदर्शनविषयतगतं॥ **पमुद्धं वा॥** चोरैरानीय धृतं॥ **पडिदं॥** हस्तादिभ्यश्च्युत्वा पतितं॥ **सुणिहिदं॥** सुष्ठु महता तात्पर्येण निहितं धृतं स्थापितं॥ **दुण्णिहियं॥** अनादरेण स्थापितं॥ **अप्पं॥** स्तोकं॥ **बहुं॥** प्रचुरं॥ **अणु॥** सूक्ष्मं॥ **थूलं॥** स्थूलं महत्॥ **सचित्तं॥** सचेतनं॥ **अचित्तं॥** अचेतनं॥ **मज्झत्थं॥** गृहान्तर्वर्तिं॥ **बहित्थं॥** गृहाद्बहिर्देशस्थितं॥ **अवि दंतंतरसोहणमेत्तं पि॥** अपि च दंतांतरशोभनमात्रमपि। अदत्तं नैव स्वयं गृह्णीयादित्यादि सुगमं॥ **अहावरे चउत्थे महव्वदे सव्वं भंते अब्बंभं पच्चक्खामि** इत्यादि सुगमं॥ **से इत्यादि॥** से तस्य चतुर्थमहाव्रतस्याब्रह्मचर्याविरतिलक्षणस्य क्षतिहेतौ देवीषु मानवीषु तिरश्चीष्वित्यादौ हस्तसंघट्टनादौ सति नैवाब्रह्म सेवेतेत्यभिसंबंधः॥ **देवियं वा माणुसियं वा तिरिच्छियं वेति** पाठेऽपि **देवीसु** चेत्ययमेवार्थः॥ दैवीं मानुषीं तिरश्चीं वेति निर्देशस्तु 'अन्यार्थेऽन्या' इति

कराता हूँ इत्यादि संबंध कर लेना चाहिए। कहाँ-कहाँ अदत्तादान हो सकता है इस प्रकार से कहते हैं। **गामे वा णयरे वा खेडे वा कव्वडे वा मडंवे वा पट्टणे वा दोणमुहे वा**- ग्राम में, नगर में, खेट में, कर्वट में, मटंब में, पत्तण में अथवा द्रोणमुख में। ग्राम आदि का लक्षण कहते हैं।

जो वृत्ति से घिरा हुआ हो वह ग्राम है और जिसके चार विशाल गोपुर द्वार साल से सुशोभित होते हैं वह नगर है। नदी और पर्वत से वेष्टित हो वह खेट है और जो पर्वत से चारों ओर से घिरा हुआ हो वह कर्वट है॥

हजार गावों से जो युक्त हो वो मटम्ब है। जो रत्नों की खान हैं वह पत्तन है। समुद्र की बेला से अर्थात् सभी स्थानों पर किनारों पर समुद्र से घिरा हुआ हो वह द्रोण है और जो पर्वत पर आरूढ हो वह वाहन है।

दोणमुहे- द्रोणामुख द्रोणा नाम वाला है। उसमें **घोसे**- गोकुल को घोस कहते हैं। **आसमे वा**- तापस की पल्लियाँ स्थानों को आश्रम कहते हैं। **सहाये वा**- सभा में। **संवाहे**- इस प्रकार का संवाहक पाठ होने पर संवाहन अर्थात् पर्वत पर आरुढ अर्थ लेना चाहिए। **सण्णिवेसे**- राजधानी में अथवा गोष्ठी के स्थान में। जो स्थान जनपद के समूह का आश्रयभूत होता है उसे सन्निवेष कहते हैं। **खेत्ते**- जहाँ पर फसल उत्पन्न होती हो वह क्षेत्र है। **खले**- धान्य का जहाँ पर मर्दन किया जाता हो, उनको पकाया जाता हो, उनकी अलग-अलग राशि करके भिन्न किया जाता हो, इस प्रकार के आश्रय वाले स्थान को खल कहते हैं। **जले**- **पथे**- ये शब्द प्रसिद्ध है अर्थात् जल में, मार्ग में। **उप्पथे**- पथ से भिन्न रास्ता अर्थात् मार्ग के समीपवर्ती स्थान उत्पथ कहलाता है। **अरण्णे**- अरण्य अटवी को कहते हैं, उन सभी स्थानों में जो वस्तु। **णट्ठं वा**- उस वस्तु के स्वामी को वह वस्तु दिखाई ना दे इस प्रकार की वस्तु नष्ट कहलाती है। **पमुद्धं वा**- चौरों के द्वारा लाकर के रखी गई हो। **पडिदं**- हस्त आदि के द्वारा छूटकर के गिर पड़ी हो वह पतित है। **सुणिहिदं**- बहुत अच्छे तरीके से या किसी महान प्रयोजन के निमित्त से जिसको रखा गया हो वह सुनिहित है। **दुण्णिहियं**- अनादर से किसी ने उसको रख दिया हो वह दुर्निहित है। **अप्पं**- अर्थात् स्तोक या कम। **बहुं**- अर्थात् प्रचुर या बहुत अधिक। **अणु**- सूक्ष्म। **थूलं**- स्थूल अर्थात् बड़ा। **सचित्तं**- सचेतन। **अचित्तं**- अचेतन। **मज्झत्थं**- घर के भीतर। **बहित्थं**- घर के बाहर स्थान पर स्थित। **अवि दंतंतरसोहणमेत्तं पि**- और दाँतों के अन्तर में सुशोभित मात्र होने वाली अर्थात् अत्यल्प भी बिना दिये हुए परिग्रह को मैं स्वयं ग्रहण नहीं करता हूँ इत्यादि सुगम है। **अहावरे चउत्थे महव्वदे सव्वं भंते अब्बंभं पच्चक्खामि**- अब चतुर्थ महाव्रत में हे भगवन्! मैं अब्रह्म का प्रत्याख्यान करता हूँ। इसकी टीका सुगम है। **से इत्यादि** अर्थात् उस चतुर्थ महाव्रत में जो कि अब्रह्म से अर्थात् अब्रह्मचर्य से विरति लक्षण वाला है उसमें क्षति के कारण देवियों में, मनुष्य स्त्रियों में, तिर्यंचनियों में इत्यादि में हस्त संघटन आदि के होने पर भी मैं अब्रह्म का सेवन नहीं करता हूँ , इस प्रकार का अभिसंबंध करना चाहिए। **देवियं वा माणुसियं वा तिरिच्छियं**- देवियों, मनुष्यनियों, तिर्यंचनियों-यह पाठ होने पर इस प्रकार का अर्थ लेना चाहिए। देवीं मानुषीं तिरश्चीं वा, इस

प्राकृतलक्षणमाश्रित्य सप्तम्यर्थे द्वितीया कृता॥ **अचेदणीएसु वा॥** अचेतनासु स्त्रीप्रतिमासु। क्व क्व या अचेतना स्त्रीप्रतिमा इत्याह॥ **कट्ठकम्मेसु** वेत्यादि॥ काष्ठकर्मसु चित्रकर्मसु काष्ठचित्रविनिर्मितस्त्रीरूपादिषु॥ **वत्थकम्मेसु॥** वस्त्रकर्मसु। वस्त्रविनिर्मितस्त्रीरूपादिष्वित्यर्थः॥ **लेप्पकम्मेसु॥** विज्ञानिनिर्वर्तितानि मृत्तिकामयानि स्त्रीरूपादीनि लेप्यकर्माणि तेषु॥ **लयणकम्मेसु॥** लयनपुत्तलिकादिषु॥ **सिलाकम्मेसु॥** पाषाणनिर्मितचित्रस्त्रीरूपादिषु॥ **भित्तिकम्मेसु॥** भित्तौ विनिर्मितचित्रस्त्र्यादिरूपेषु॥ **भेदकम्मेसु॥** भेदकर्मसु। कर्तर्यादिना वस्त्रादिकं कर्तयित्वा निर्मितस्त्रीरूपादिषु॥ **दंतकम्मेसु॥** गजदंतनिर्मितस्त्रयादिरूपेषु। एतेषु देवीप्रभृतिषु दंतकर्मपर्यंतेषु विषयेषु॥ **हत्थसंघट्टणदाए॥** हस्तसंघट्टनतायां हस्तोपमर्दे॥ **पादसंघट्टणदाए॥** पादोपमर्दे॥ **पोग्गलसंघट्टणदाए॥** हस्तादिव्यतिरिक्तशरीरावयवसंघट्टनतायां काष्ठादिपुद्गलेन स्त्र्याद्यवयवसंघट्टनतायां वा॥ **मणुण्णामणुण्णे**त्यादि॥ मनोज्ञामनोज्ञेषु स्त्र्यादिरूपेषु श्रोत्रेंद्रियपरिणाम इति संबंधः। एवं मनोज्ञामनोज्ञेषु स्त्रीरूपेषु चक्षुरिंद्रियपरिणामे, मनोज्ञामनोज्ञेषु स्त्रीगंधेषु घ्राणेंद्रियपरिणाम, मनोज्ञामनोज्ञेषु स्त्रीवदनरसादिषु जिह्वेंद्रियपरिणामे, मनोज्ञामनोज्ञेषु स्त्रीस्पर्शेषु स्पर्शेन्द्रियपरिणामे। स्पर्शस्य ग्राहकमिंद्रियं स्पर्शनेंद्रियमित्यर्थः। तेन जनित आत्मनः परिणामो विकारस्तस्मिन्। एवं प्रतिनियत-श्रोत्रादींद्रियपरिणाम आत्मनोऽब्रह्मप्रतिषेधं प्रदर्श्य समस्तशब्दादिगोचरनोइंद्रियपरिणामेऽप्यात्मनस्तत्प्रतिषेधं दर्शयति॥ **णोइंदियपरिणामे॥** ईषदिंद्रियं नोइन्द्रियं। यथैव हि स्पर्शनादींद्रियाणि प्रतिनियतस्पर्शादिविषयाणि, न तथा मनस्तस्यानियतार्थगोचरचारितया विषयं प्रति नियमाभावादीषदिंद्रियं नोइंद्रियं तदित्युच्यते। अतः श्रोत्रादीन्द्रियपरिणामे नोइंद्रियपरिणामपर्यंते चतुर्थमहाव्रतक्षतिहेतौ सत्यपि नैव स्वयमब्रह्म॥ **सेवेज्ज** इत्यादि सुगमं॥ **अहावरे पंचमे महव्वदे** इत्यादि सुगमं॥ **से** इत्यादि॥ से तस्य पंचममहाव्रतस्य परिग्रहविरतिलक्षणस्य क्षतिहेतुत्वेन सन्निहितं हिरण्यादिकं नैव स्वयं गृह्णीयादित्यभिसंबंधः॥ **(हिरण्णं)॥** हिरण्यं रूप्यं॥ **धणं॥** द्रव्यादि॥ **(धण्णं)॥** धान्यं ब्रीह्यादि॥ **खेत्तं॥** सस्यनिष्पत्त्यधिष्ठानं॥ **वत्थुं॥** वास्तु। गृहमित्यर्थः॥ **कोसं॥** कोशं भाण्डागारं॥ **बलं॥** चतुरंगहस्त्यश्वरथपदातिलक्षणं। एतदेव विवृण्वन्नाह-**वाहणं** चेत्यादि॥ **वाहणं॥** वाहनं हस्त्यश्वादि॥ **सयडं॥** बलीवर्दवाह्यं शकटं॥ **जाणं॥** जंपानं॥ **जुगं॥** दोलिकां॥ अथवा युग्यं।

प्रकार का निर्देश है जो 'अन्यार्थेऽन्या' इस प्राकृत के सूत्र से सप्तमी के अर्थ में द्वितीया विभक्ति से है। **अचेदणीएसु वा**- अचेतन स्त्री की प्रतिमाओं में। **क्व क्व**-जो स्त्री की अचेतन प्रतिमा हैं वो कहाँ-कहाँ होती हैं ? **कट्ठकम्मेसु** इत्यादि- काष्ठकर्म में, चित्रकर्म में। काष्ठचित्र से बनी हुई स्त्री रूप आदि में। **वत्थकम्मेसु**- वस्त्र से बनी हुई स्त्री के रूप आदि में। **लेप्पकम्मेसु**- शिल्पी आदि जानकारों से निर्मित मृत्तिकामय स्त्री के रूप आदि लेप्य कर्म में। **लयणकम्मेसु**- लयन आदि में बनी हुई पुतलियाँ आदि में। **सिलाकम्मेसु**- पाषाण आदि से बने हुए स्त्री रूप आदि में। **भित्तिकम्मेसु**- दीवारों में बने हुए स्त्री-चित्रों आदि रूपों में। **भेदकम्मेसु**- भेद कर्म में अर्थात् कैंची आदि के द्वारा वस्त्र आदि में कतर करके स्त्री आदि के रूप को निर्मित करने में। **दंतकम्मेसु**- हाथी के दाँत आदि से निर्मित स्त्री आदि के रूप में। ये सभी देवी आदि से लेकर के दंतकर्म पर्यंत विषयों में। **हत्थसंघट्टणदाए**- हाथों के संघटन के द्वारा अर्थात् हाथों के द्वारा मर्दन करने पर। **पादसंघट्टणदाए**- पैरों के द्वारा मर्दन करने पर। **पोग्गलसंघट्टणदाए**- हाथ आदि के अलावा शरीर के अन्य अवयवों से संघटन करने पर काष्ट आदि पुद्गलों के द्वारा स्त्री आदि के अवयवों के संघटन हो जाने पर। **मणुण्णामणुण्णेत्यादि**- मनोज्ञ और अमनोज्ञ स्त्री के रूप आदि विषयों में श्रोत इन्द्रिय परिणाम इस प्रकार का संबंध करना। इस प्रकार मनोज्ञ और अमनोज्ञ स्त्री के रूपों में चक्षु इन्द्रिय के परिणाम में, मनोज्ञ व अमनोज्ञ स्त्री की गंध में घ्राण इन्द्रिय के परिणाम में, मनोज्ञ और अमनोज्ञ मुख-रस आदि के विषय में जिह्व इन्द्रिय के परिणाम में, मनोज्ञ व अमनोज्ञ स्त्री के स्पर्श के विषय में स्पर्शन इन्द्रिय के परिणाम में। स्पर्श की ग्राहक इन्द्रिय स्पर्शन इन्द्रिय है। यह अर्थ है। उससे उत्पन्न आत्मा का परिणाम विकार है। उसमें इस प्रकार प्रतिनियत श्रोत्र आदि इन्द्रियों के परिणाम में आत्मा के अब्रह्म का प्रतिषेध प्रदर्शित करके समस्त शब्द आदि के गोचर जो नोइन्द्रिय परिणाम हैं उनमें भी आत्मा के अब्रह्म के प्रतिषेध को दिखाते हैं। **णोइंदियपरिणामे**- ईषत् इन्द्रिय नोइन्द्रिय कहलाती है। जिस प्रकार से स्पर्शन आदि इन्द्रियाँ प्रतिनियत स्पर्श आदि विषय वाली हैं उस प्रकार से मन नहीं है क्योंकि वह अनियत अर्थ के गोचर चलने वाला है। इस कारण से किसी विषय के प्रति उसके नियम का अभाव होने से भी उसे ईषत् इन्द्रिय अर्थात् नोइंद्रिय कहा जाता है। इसलिए श्रोत्र आदि इंद्रिय के परिणाम में नोइंद्रिय के परिणाम पर्यंत तक चतुर्थ महाव्रत की क्षति के कारण होने पर भी मैं स्वयं अब्रह्म का इस प्रकार से। **सेवेज्ज**- सेवन नहीं करता हूँ। इत्यादि कथन सुगम है। **अहावरे पंचमे महव्वदे**- इत्यादि कथन सुगम है। उस पाँचवे महाव्रत परिग्रह विरति लक्षण वाले पंच महाव्रत की क्षति के कारणों से सम्बन्ध रखने वाले जो हिरण्य आदिक हैं उनको न मैं स्वयं ग्रहण करता हूँ इत्यादि संबंध करना चाहिए। **हिरण्णं**- हिरण्य अर्थात् रूप्य या सोना। **धणं**- धन अर्थात् द्रव्य आदि। **धण्णं**- धान्य अर्थात् ब्रीह्य (चावल) आदि। **खेत्तं**- फसल की उत्पत्ति के स्थान खेत। **वत्थुं**- वास्तु। गृह इत्यादि। **कोसं**- कोश अर्थात् भाण्डारागार। **बलं**- हाथी, रथ, घोड़ा और पैदल आदि लक्षण वाली चतुरंगिणी सेना बल कहलाती है। इसी का ही और विवरण करते हुए कहते हैं- **वाहणं** चेत्यादि॥ **वाहनं**- हाथी, अश्व आदि वाहन हैं। **सयडं**- बैल के द्वारा वहन करने योग्य शकट कहलाती है। **जाणं**- जंपानं। **जुगं**- झूल से अथवा **युग्यं**-

'पत्र-'(जै.) मिति निपातनाद्युग्यं वाहनसामान्यं॥ **गदुं॥** (?) शय्यापालकं। उपरि छादितः शकटविशेष इत्यर्थः॥ **रहं॥** उत्तमपुरुषसत्त्व उत्तमाश्ववाह्यो रथः॥ **संदणं॥** सामान्यपुरुषसत्त्वः सामान्याश्ववाह्यो रथः स्यंदनः॥ **सिबियं॥** विचित्रकूटोपेतानेकमणिविभूषितासुरनरविद्याधरवाह्या शिविका॥ **गवेडयं॥** एडकं॥ **अंडजं॥** कोशजं॥ **तसरिचीवरं॥** वोंडजं कर्पासवस्त्रं॥ **अविवालंग (बालग्ग) कोडिमेत्तं पि॥** अवेर्मेषस्य बालस्तस्याग्रकोटिरग्रभागस्तावन्मात्रमपि नैव स्वयं परिग्रहं गृह्णीयात्। किंविशिष्टं ? **असमणपाउग्गं॥** न श्रमणा अश्रमणा गृहस्थास्तेषां प्रकर्षेण आ समंताद्योग्यं तं न गृह्णीयात्। तद्योग्यं तु ज्ञानसंयमोपकरणादिकं गृह्णीयादेव॥ **अहावरे छट्ठे अणुव्वदे सव्वं भंते राइभोयणं पच्चक्खामी**त्यादि सुगमं॥ से इत्यादि॥ से तस्य षष्ठाणुव्रतस्य रात्रिभोजनविरतिलक्षणस्य क्षतिहेतुत्वेन सन्निहितं॥ **असणं॥** भक्तमुमादिकं॥ **पाणं॥** पानं दुग्धद्राक्षापानादिकं[1]॥ **खादियं॥** खाद्यं मोदकादिकं॥ **साविय (इमं)॥** स्वाद्यं व्यंजनादि। **तित्तं कटुकमित्यादि तु** तद्विशेषणं। एतद्विशेषणविशिष्टमशनादि सर्वं चतुर्विधमाहारं नैव स्वयं॥ **रत्तिये भुंजेज्ज॥** रात्रौ भुंजीय भुंजे वा॥(?) इत्यादि सुगमं॥ **चूलियं तु पच्चक्खामी**त्यादि॥ उक्तानुक्तार्थचिंतनरूपां चूलिकां पुनरिदानीं प्रवक्ष्यामि। तस्यां च वक्ष्यमाणाया भावनाः पंचविंशतिस्तावद्वक्ष्यंते। ताश्च विभागेन पंच पंच॥ **अणुण्णादा॥** अनुज्ञाता अभ्युपगताः। क्व ? **एक्केक्कम्हि महव्वदे॥** एकस्मिन्नेकस्मिन्महाव्रते। तत्र॥ **पढमं वदमस्सिदो॥** प्रथमं प्राणातिपाताद्विरति-लक्षणं महाव्रतमाश्रितः स्वीकृतवानहम्॥ **मणगुत्त** इत्यादि॥ पंचभावनापरो भवामि॥ मनो गुप्तं रक्षितं नियंत्रितं येनाऽसौ मनोगुप्तोऽहं भवामि। तथा वचो गुप्तं येनाऽसौ वचोगुप्तश्चेति। वाग्गुप्तिपरो भवामि॥ **इरियाकायसंयदो॥** ईरणमीर्या गमनं। तत्र संयतः प्राणिपीडापरिहारपरो भवामि। कायेन च तत्पीडापरिहारपरो भवामि॥ **एसणासमिदिसंजुत्तो॥** अन्नादेरुद्गमादिदोषपरिहारेण ग्रहणमेषणासमितिः। तया संयुक्तो विशिष्टो भवामि। एताभिर्भावनाभिर्युक्तस्य प्राणातिपातविरतिव्रतं निर्मलं भवतीत्यर्थः। तथा॥ **विदियं वदमस्सिदो॥** द्वितीयं मृषावादाद्विरतिलक्षणं महाव्रतमाश्रितोऽहं क्रोधादिपंचभावनापरो भवामीत्याह॥ **अकोहण** इत्यादि॥ न विद्यते क्रोधनं क्रोधो यस्याऽसावक्रोधनः॥ **अलोहो** य॥ न विद्यते लोभो यस्याऽसावलोभश्चाहं भवामि। न केवलमक्रोधन एवालोभ एव चाहं भवामि।अपि

---

1. पानकादिकमिति झा-प्रतौ पाठः।

सामान्य वाहन जो जोता गया हो। **गदुं**- शय्या पालक गदु है। ऊपर से आच्छादित गाड़ी-शकट-गदु है। **रहं**- रथ-उत्तम पुरुष सत्त्व अर्थात् उत्तम घोड़ों के द्वारा वहन करने योग्य जो है वो रथ है। **संदणं**- सामान्य पुरुष सत्त्व, सामान्य अश्व द्वारा वहन करने योग्य जो रथ है वह स्यंदन कहलाता है। **सिबियं**- जो नाना प्रकार कूटों से सहित अनेक मणियों से विभूषित हो और देव, मनुष्य और विद्याधरों के द्वारा ले जाने योग्य है वो शिविका है। **गवेडयं**- गवेडय अर्थात् एडक को गवेडय कहते हैं। **अंडजं**- अर्थात् कोश से उत्पन्न हुआ। **तसरिचीवरं**-कपास के वस्त्र को वोंडज कहते हैं। **अविबालंग (बालग्ग) कोडिमेत्तं पि**- अवि अर्थात् मेढ़ा, उस मेढ़े के बच्चे के अग्रभाग मात्र भी मैं स्वयं उस परिग्रह को ग्रहण नहीं करता हूँ। **किंविशिष्टं ? असमणपाउग्गं**- जो श्रमण नहीं हैं वे अश्रमण हैं अर्थात् गृहस्थ हैं। उनके लिए ही प्रकर्ष रूप से जो चारों तरफ से योग्य है ऐसे उस परिग्रह को मैं ग्रहण नहीं करता हूँ। और जो योग्य परिग्रह है, ज्ञान संयम आदि के उपकरण हैं उन्हीं को मैं ग्रहण करता हूँ। **अहावरे छठ्ठे अणुव्वदे सव्वं भंते राइभोयणं पच्चक्खामीत्यादि**- कथन सुगम है अर्थात् अब मैं सभी प्रकार के रात्रि भोजन वाले छट्ठे अणुव्रत का प्रत्याख्यान करता हूँ। उस षष्ठ अणुव्रत रात्रि भोजन विरति लक्षण वाले अणुव्रत की क्षति के हेतु सन्निहित होने पर। **असणं**- जो भात, दाल आदि है वह असन है। **पाणं**- दूध, द्राक्षा आदि पान हैं। **खादियं**- मोदक आदि खाद्य हैं। **साविय**- व्यंजन आदि स्वाद्य हैं। **तिक्तं कटुक**मित्यादि- तिक्त, कटुक आदि इसके विशेषण हैं इस प्रकार के विशेषणों से विशिष्ट जो चार प्रकार का अशन आदि समस्त आहार है उसको मैं स्वयं नहीं। **रत्तिये भुंजेज्ज**- मैं रात्रि में भोजन नहीं करूँगा। इत्यादि यह कथन सुगम है।

चूलियं तु पच्चक्खामीत्यादि- कहे हुए और नहीं कहे हुए अर्थ के चिंतन रूप चूलिका होती है। उस चूलिका को मैं अब यहाँ पर कहूँगा। उस चूलिका के कहने में पच्चीस प्रकार की भावनाएं यहाँ पर कही जायेंगी। वे भावनाएं पंच-पंच है। **अणुण्णादा**- अर्थात् वे कही गयी हैं। किस विषय में कही गयी हैं ? **एक्केक्कम्हि महव्वदे**- एक-एक महाव्रत के विषय में। **पढमं वदमस्सिदो**- प्रथम प्राणातिपात से विरति लक्षण वाले महाव्रत का आश्रय करते हुए मैं उसको स्वीकार करता हूँ। **मणगुत्त** इत्यादि- अर्थात् मैं पंच भावना में तत्पर होता हूँ। जिससे मन गुप्त हो, रक्षित हो, नियंत्रित हो वह मैं मनोगुप्ति मय होता हूँ। उसी प्रकार से वचन गुप्ति है जिसके द्वारा मैं वचन गुप्ति वाला होता हूँ। अर्थात् वाग् गुप्ति में तत्पर होता हूँ। **इरियाकायसंयदो**- ईरण अर्थात् गमन करने का नाम ईर्या है। उसमें संयत होता हुआ प्राणिपीडा के परिहार के लिए मैं तत्पर होता हूँ। **कायेन च**- काय के द्वारा भी प्राणपीड़ा के परिहार के लिए मैं तत्पर होता हूँ। **एसणासमिदिसंजुत्तो**- उद्गम आदि दोषों के परिहार के द्वारा अन्न आदि ग्रहण करना एषणा समिति है। उससे संयुक्त होता हूँ अर्थात् विशिष्ट होता हूँ। इन भावनाओं से युक्त होकर के प्राणातिपात विरति नाम का व्रत निर्मल होता है। उसी प्रकार। **विदियं वदमस्सिदो**- द्वितीय मृषावाद से विरति लक्षण वाले महाव्रत के आश्रित होता हूँ। मैं क्रोध आदि पाँच भावनाओं में तत्पर नहीं होता हूँ यह कहते हैं। **अकोहण** इत्यादि- जिसके क्रोध नहीं होता है वह अक्रोधन है। **अलोहो य**- जिसके लोभ विद्यमान नहीं है वह अलोभ है ऐसा कथन है। न केवल मैं क्रोध से रहित और लोभ से रहित

तु॥ **भयहस्सविवज्जिदो॥** भयं च हास्यं च ताभ्यां विशेषेण वर्जितो भवामि॥ **अणुवीचिभासकुसलो॥** अनुवीचिभाषाऽऽगमभाषया भाषणं। तत्र कुशलः प्रवीणोऽहं भवामि। एताभिः पंचभिर्भावनाभिरुपेतस्य मृषावादविरतिलक्षणं निर्मलमवतिष्ठते॥ तथा॥ **तदियं वदमस्सिदो॥** तृतीयमदत्तादानाद्विरतिलक्षणं व्रतमाश्रितोऽहं॥ पंचभावानापरो भवामीत्याह॥ **देहणमित्यादि॥** कर्मवशादुपात्तो यो मया देहः स एव मे धनं परिग्रहो, नान्यो मे परिग्रह इति। 'पृषोदरादीनि यथोपदिष्ट-' मिति धकारलोपः। अथवा देहनं[1]। दिह लेपे। इदं शरीरादिकमात्मनो देहनमुपलेपः कर्मकृतं गुरुत्वं, न पुनरुपकारकमित्येवं भावनापरो भवामि॥ **भावणं चावि॥** देह एव याऽशुचित्वानित्यत्वादिभावना तां चापि भावयामि॥ **ओग्गहं च॥** अवग्रहं च। निवृत्तिंभावयामि। क्व ? **परिग्गहे॥** परिग्रहविषये। तथा॥ **संतुट्ठो॥** गृद्धिरहितो भवामि। क्व ? **भत्तपाणेसु॥** भक्तमोदनं पानं दुग्धमथितशिखरिण्यादि। उपलक्षणं चैतत्खाद्यस्वाद्यानां। तेषु। एवंविधाः पंच भावना भावयतोऽदत्तादानाद्विरतिव्रतं निर्मलं भवति। तथा॥ **चउत्थं वदमस्सिदो॥** चतुर्थं मैथुनाद्विरतिलक्षणं व्रतमाश्रितोऽहं। स्त्रीकथादिभ्यो निवृत्तो भवामीत्याह॥ **इत्थिकहेत्यादि॥** स्त्रीकथा च स्त्रीसंसर्गश्च स्त्रीभिः सह हास्यं च खेदश्च वर्करः प्रलोकनं च सरागं स्त्रीवदनाद्यवलोकनमिति द्वंद्वैकवद्भावः। तस्मिन्॥ **णियत्तो य॥** निवृत्त एवाहं भवामि। कुत एतत् ? **णियमम्हि ठिदो॥** नियमे व्रते स्थितोऽहं यतः। व्रती यतोऽहमित्यर्थः। तत उक्तपंचभावनापरो भवामि, तत्परस्यैव चतुर्थव्रतनिर्मलतोपपत्तेः। स्थितशब्दरहिते णियमम्हि इति पाठे निवृत्तो नियमेनेत्यर्थः। तथा॥ **पंचमं वदमस्सिदो॥** पंचमं परिग्रहाद्विरतिलक्षणं व्रतमाश्रितोऽहं। सचित्तादिभ्यो विरतो भवामीत्याह॥ **सचित्तेत्यादि॥** सचित्तद्रव्याणि दासीदासादीनि, अचित्तद्रव्याणि धनधान्यादीनि। तेषु विरतो भवामि। तथा॥ **बज्झब्भंतरेसु य॥** बाह्याभ्यंतरेषु च द्रव्येषु विरतो भवामि। बाह्यानि वस्त्राभरणादीनि, अभ्यंतराणि तु द्रव्याणि ज्ञानावरणादीनि। तथा॥ **परिग्गहादो॥** गृहक्षेत्रादिलक्षणात्परिग्रहाद्विरतो भवामि। एवंविधाः पंच भावना भावयतः परिग्रहाद्विरतिव्रतं निर्मलमवतिष्ठते। पंचापि हीमानि व्रतानि प्रतिज्ञारूपाणि,

---

1. 'देहनं देहलोपे' 'दहदिह लोपे' -इति पाठौ लभ्येत आदर्शप्रत्योः।

होता हूँ। किंतु । **भयहस्सविवज्जिदो**- भय और हास्य इन दोनों विशेषणों से भी मैं रहित होता हूँ। **अणुवीचिभासकुसलो**- अनुवीचि भाषा अर्थात् आगम भाषा के द्वारा भाषण करना उसमें मैं कुशल अर्थात् प्रवीण होता हूँ। इन पाँचों ही भावनाओं से सहित मृषावाद विरति लक्षण वाला निर्मल व्रत रहता है। उसी प्रकार। **तदियं वदमस्सिदो**- तृतीय अदत्तादान विरति लक्षण वाले व्रत के मैं आश्रित होता हूँ। उसकी भी पाँच भावनाओं में मैं तत्पर होता हूँ इस प्रकार कहते हैं। **देहणमित्यादि**- कर्म के वश से मेरे द्वारा जो देह प्राप्त हुई है वह ही मेरा धन अर्थात् परिग्रह है और कोई मेरा परिग्रह नहीं है। 'पृषोदरादि' इस सूत्र के द्वारा धकार का लोप हुआ है अथवा **देहनं**- दिह धातु लेप में आती है। शरीर आदि आत्मा के उपलेप हैं और कर्मकृत होने से इसमें गुरुत्व है, गुरूपना है अर्थात् भारी है किंतु यह देह आदि उपकारक नहीं है इस प्रकार की मैं भावनाओं में तत्पर होता हूँ। **भावणं चावि**- देह में जो अशुचित्व, अनित्य आदि भावना है उनको भी मैं भाता हूँ। **ओग्गहं च**- अवग्रह अर्थात् मैं इस देह से निवृत्ति की भावना करता हूँ। किस विषय में निवृत्ति की **? परिग्गहे**- परिग्रह के विषय में। **संतुट्ठो**- तथा मैं उस परिग्रह के विषय में गृद्धि से रहित होता हूँ। किस विषय में **भत्तपाणेसु**- भक्त भात आदि हैं, पान दुग्ध और मथे हुए शिखरिणि-दही आदि हैं। इन सब खाद्य, स्वाद आदि का यह उपलक्षण है। इस प्रकार पाँच प्रकार की भावनाएं भाने वाले के अदत्तादान विरति वाला व्रत निर्मल होता है। **विशेषार्थ**- ये पाँच भावनाएं निम्न प्रकार की हैं। पहली **देहनं**- अर्थात् यह देह ही मेरे लिए धन है, दूसरी **भावणं चावि**- इस देह में ही अशुचि, अनित्य भावना करता हूँ। तीसरी **ओग्गहं**- अवग्रह अर्थात् परिग्रह से निवृत्ति की भावना करता हूँ अर्थात् परिग्रह से निवृत्त होता हूँ। चौथी और पाँचवी **संतुट्ठो**- अर्थात् मैं भक्त और पान इन दोनों के विषय में संतुष्ट होता हूँ। इस तरह से पाँच भावनाएँ गिनी गयी हैं। **चउत्थं वदमस्सिदो**- मैथुन से विरति लक्षण वाला चतुर्थ व्रत है मैं उसका आश्रय लेता हूँ। स्त्री कथा आदि से भी निवृत्त होता हूँ इस प्रकार से कहते हैं। **इत्थिकहेत्यादि**- स्त्री कथा, स्त्री का संसर्ग, स्त्रियों के साथ हास्य तथा खेद, उनको देखना, राग से सहित होकर स्त्री के मुख आदि का अवलोकन करना। उससे मैं। **णियत्तो य**- उससे मैं निवृत्त होता हूँ। ये कैसे होता है? **णियमम्हि ठिदो**- नियम और व्रत में स्थित होता हूँ। चूँकि मैं व्रती हूँ यह अर्थ है इसलिए उक्त पाँच भावनाओं में तत्पर होता हूँ , उस प्रकार से तत्पर रहने वाले के चतुर्थ व्रत निर्मलता को प्राप्त होता है। स्थिति शब्द से रहित होने पर णियमम्हि इस प्रकार का पाठ होने पर मैं नियम से निवृत्त होता हूँ , इस प्रकार का अर्थ हो जाता है। तथा। **पंचमं वदमस्सिदो**- परिग्रह से विरति लक्षण वाला पाँचवा व्रत है मैं उसका आश्रय लेता हूँ। सचित्त आदि से मैं विरत होता हूँ इस प्रकार से कहते हैं। **सचित्तेत्यादि**- दासी-दास आदि सचित्त द्रव्य हैं, धन-धान्य आदि अचित्त द्रव्य हैं। इन सबसे मैं विरत होता हूँ। तथा। **बज्झब्भंतरेसु य**- बाह्य और अभ्यंतर दोनों ही प्रकार के द्रव्यों से मैं विरत होता हूँ। वस्त्र आभरण आदि बाह्य द्रव्य हैं। ज्ञानावरण आदि अभ्यंतर द्रव्य हैं। तथा। **परिग्गहादो**- गृह, क्षेत्र आदि लक्षण वाले परिग्रह से मैं विरत होता हूँ इस प्रकार पाँच भावनाएँ भाने वाले के परिग्रह विरति नाम का निर्मल व्रत ठहरता है, ये पाँचों ही व्रत प्रतिज्ञा रूप हैं क्योंकि अभिसंधि के द्वारा किया हुआ नियम ही व्रत होता है इस प्रकार

अभिसंधिकृतो नियमो व्रतमित्यभिधानात्। तत्र च॥ **उत्तमं वदं॥** उत्तमां प्रतिज्ञामाश्रितः स एव भवति, यः॥ **धिदिमंतो॥** धृतिमान्संतुष्टः। इहलोकपरलोकाकांक्षारहित इत्यर्थः॥ **खमाजुत्तो॥** उत्तमक्षमायुक्तः॥ **झाणजोगपरिट्ठिदो॥** ध्यानमेकाग्रचिंतानिरोधः। तेन योगः संबंधः। तत्र परि समंतात्स्थितः। अथवा ध्यानेन योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। तत्र स्थितः॥ **परीसहाणुरदंतो॥** परीषहाणामुरो ददानोऽभिमुखो भवन्। तेभ्यः पराङ्मुखोऽभवन्नित्यर्थः।

ननु सर्वस्य जगत्प्रपंचस्य मध्ये यथा सारभूतानि व्रतानि, तथा तेष्वपि मध्ये किं सारभूतमिति गौतमस्वामिनः प्रश्ने भगवानाह॥ जो सारो इत्यादि॥ सर्वाणि च तानि व्रतादीनि साराणि च सर्वसाराणि। सर्वेषु वा जगदन्तर्वर्तिवस्तुषु मध्ये साराण्युत्कृष्टानि व्रतादीनि तेषु मध्येऽन्यः सारः स कः ? **सो सारो एस गोदम॥** स सारः हे गौतम एष ध्यानलक्षणः। एतदेवाह॥ **सारं झाणे त्ति णामेण॥** ध्यानमिति नाम्ना यदुच्यते तत्सारमिति। एतच्च न केवलं मयैव प्रतिपादितमपि तु॥ **सव्वबुद्धेहिं देसिदं॥** सर्वे च ते बुद्धाश्च साक्षाद्विदिताशेषार्थाः सर्वज्ञाः। सर्वं वा बुद्धं यैस्ते सर्वबुद्धाः। तैर्देशितं प्रतिपादितं॥ **इच्चेदाणि॥** इत्येतान्युक्तप्रकाराणि पंचमहाव्रतानीत्यादि सुगमं। अमुमेवार्थमुपसंहृत्य संग्रहश्लोकमाह-

पाणादिवादं चहि मोसगं च अदत्तमेहुण्णपरिग्गहं च।
वदाणि सम्मं अणुपालइत्ता णिव्वाणमग्गं विरदा उवेंति॥

हे आत्मन् चहि जहि परित्यज त्वं। किं तत्? **पाणादिवादं॥** प्राणातिपातं। तथा॥ **मोसगं च॥** मृषावादं च जहि॥ **अदत्तमेहुण्णपरिग्गहं च॥** अदत्तादानं मैथुनं परिग्रहं च जहि। एतत्परित्यजतस्तव मोक्षमार्गपरिप्राप्तिर्भविष्यति, यतो व्रतान्येतानि **(सम्मं)** सम्यग् **अणुपालइत्ता** अनुपाल्य **विरदा** महर्षयो **(णिव्वाणमग्गं)** निर्वाणमार्गं यथाख्यातचारित्रादि **उवेंति** उपयंत्युपगच्छंति। प्राप्नुवंतीत्यर्थः। तानि च प्रतिपालयन्निःशल्यो भवेदित्याह॥ **जाणीत्यादि॥** यानि कान्यपि शल्यानि मायामिथ्यानिदान लक्षणानि त्रीणि, क्रोधशल्यमानशल्यमायाशल्यलोभशल्यप्रेमशल्य-पिपासाशल्यनिदानशल्यमथ्यादर्शनशल्यलक्षणानि चाष्टौ। कथंभूतान्येतानि? गर्हितानि निंदितानि। क्व ? जिनशासने। तानि सर्वाणि॥ **वोसरित्ता॥** उत्सृज्य परित्यज्य **॥ छंडित्ता॥** इति पाठेऽप्ययमवार्थः। इत्थं निःशल्यः सन् मुनिः॥ **विहरदि॥** विहरति व्रताद्यनुष्ठाने प्रवर्तते॥

का वचन है। अभिसंधि अर्थात् बुद्धि पूर्वक लिया गया नियम ही व्रत होता है उसमें। **उत्तमं वदं**- उत्तम प्रतिज्ञा के मैं आश्रित होता हूँ। उस प्रतिज्ञा के आश्रय वो होता है जो **धिदिमंतो**- धैर्यवान हो अर्थात् संतुष्ट हो इहलोक और परलोक की आकांक्षा से रहित हो यह अर्थ है। **खमाजुत्तो**- जो उत्तम क्षमा से युक्त हो। **झाणजोगपरिट्ठिदो**- जो एकाग्र चिंता निरोध लक्षण वाला ध्यान है उसके साथ जिसका योग अर्थात् सम्बंध हो और उस ध्यान योग में ही चारों ओर से स्थित हो अथवा ध्यान के द्वारा चित्त वृत्ति का निरोध करना अथवा उसमें जो स्थित होता है वह ध्यान योग स्थित कहलाता है। **परीसहाणुरदंतो**- परिषहों के लिए सहनशील होता है अर्थात् उनके अभिमुख होता हुआ उन परिषहों से पराङ्मुख नहीं होता है यह अर्थ है।

सर्व जगत के प्रपंच के बीच में जिस प्रकार सारभूत व्रत तत्त्व है उस प्रकार से इन व्रतों के मध्य में सारभूत क्या है ? इस प्रकार का गौतम स्वामी का प्रश्न होने पर महावीर स्वामी कहते हैं-

जो सारभूत है इत्यादि- जो इन व्रतों आदि में भी सारभूत है वह सर्वसार है अथवा समस्त जगत की अन्तर्वर्ती वस्तुओं के बीच में जो सार है अर्थात् जो उत्कृष्ट है, वो व्रत हैं। उनमें भी जो सार है, वह सार क्या है ? उसका उत्तर देते हैं। **सो सारो एस गोदम**- हे गौतम! यह ध्यान लक्षण ही उसमें सार है। इसी को कहते हैं। **सारं झाणे त्ति णामेण**- ध्यान इस नाम से जो कहा जाता है वह ही सार भूत है । यह सार न केवल मेरे द्वारा प्रतिपादित हुआ है किंतु। **सव्वबुद्धेहिं देसिदं**- जितने भी बुद्ध और साक्षात् समस्त पदार्थों को जानने वाले सर्वज्ञ हुए है उन सभी बुद्धों ने इसी प्रकार से कहा है, प्रतिपादित किया है। **इच्चेदाणि**- इस प्रकार कहे हुए पाँच महाव्रतों आदि का जो कथन किया है वह सब सुगम है। इसी अर्थ का उपसंहार करते हुए यह संग्रह श्लोक यहाँ पर कहते हैं-

श्लोकार्थ-प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तदान, मैथुन, परिग्रह इन सबसे विरत होना सम्यक् रूप से व्रत कहलाते हैं। ये समीचीन रूप से कहे गये हैं। इन सब व्रतों को पालने वाला व्रती निर्वाण के मार्ग को प्राप्त करता है।

हे आत्मन् - तुम छोड़ दो। क्या छोड़ दो ? **पाणादिवादं**- प्राणतिपात को अर्थात् प्राणों के घात को छोड़ दो। **मोसगं च**- मृषावाद को भी छोड़ दो। **अदत्तमेहुण्णपरिग्गहं च**- अदत्तादान, मैथुन, और परिग्रह को भी छोड़ दो। इस प्रकार से छोड़ते हुए आपको मोक्ष मार्ग की प्राप्ति होगी क्योंकि ये व्रत हैं। **(सम्मं)** समीचीन रूप से। **अणुपालइत्ता**- इनका अनुपालन करके **विरदा** अथवा महर्षि **(णिव्वाणमग्गं)** निर्वाण मार्ग को अर्थात् यथाख्यात चारित्र आदि को **उवेंति**-प्राप्त हो जाते हैं। इन व्रतों का प्रतिपालन करते हुए निःशल्य होना चाहिए इस प्रकार से कहते हैं। **जाणीत्यादि**- जो कोई भी माया, मिथ्या, निदान लक्षण वाली ये तीन शल्य हैं। या क्रोध शल्य, मान शल्य, माया शल्य, लोभ शल्य, प्रेम शल्य, पिपासा शल्य, निदान शल्य, मिथ्यादर्शन शल्य ये आठ भी शल्य हैं। ये सब किस प्रकार की हैं ? गर्हा के योग्य अर्थात् निंदा के योग्य हैं। कहाँ पर? जिनशासन में। **तानि सर्वाणि**- उन सभी शल्यों को। **वोसरित्ता**- छोड़कर के। **छंडित्ता**- इस प्रकार का पाठ होने पर भी वही अर्थ आता है। इस प्रकार निःशल्य होता हुआ मुनि। **विहरदि**- व्रत आदि के अनुष्ठान में विहार करता है अर्थात् प्रवर्तित होता

(सया)॥ सदा सर्वकालं॥ **उप्पण्णाणुप्पण्णा** इत्यादि॥ माया योगवक्रतोत्पन्नानुत्पन्ना मुनिभिर्निहंतव्या। कथं निहंतव्यं? **॥ अणुपुव्वसो॥** पूर्वं पूर्वमन्वनुपूर्वं। अनुपूर्वार्थे हसः। अनुपूर्वमनुपूर्वशः। या या माया यदा यदोत्पद्यते सा सा तदा तदा निहंतव्येत्यर्थः। कया कृत्वा सा निहंतव्या? **॥ आलोयणणिंदणगरहणाए॥** कथंभूतया तया? **॥ अब्भुट्ठिदाए॥** अभ्युत्थितया तन्निहनन उद्यतया। कया कृत्वा तन्निहनन उद्यतया, करणतया कर्तुतया वा? **॥ करणदाए॥** करणतया। आत्मनः कर्तुस्तन्निहनने प्रवृत्तस्य साधकतमरूपतयेत्यर्थः॥ **अब्भुट्ठिदो करणदाए ॥** इति पाठेऽभ्युत्थित इत्यात्मनो विशेषणं। अभ्युत्थितस्तन्निहनन उद्यतोऽहं। कया? **॥ करणदाए॥** आलोचनादिरूपकरणपरिणत्या। एवं **॥ भावपडिक्कमणं॥** यदैवोत्पद्यते माया तदैवालोचनादिना निहंतव्येत्येवंरूपं भावप्रतिक्रमणं भणितं, भावस्य मायादिपरिणतेरेव प्रतिक्रमणान्निराकरणात्॥ **सेसा॥** शेषा अन्या। तदैवालोचनादिना तन्निराकरणरहिता पुनर्द्रव्यतः शब्दोच्चारणमात्रेण भणिता। शेषा द्रव्यप्रतिक्रमणा भणितेत्यर्थः। अयं द्विविधोऽपि प्रतिक्रमणाविधिर्न केवलं वर्धमानस्वामिनैवोक्तः, अपि तु सर्वैरपि तीर्थकरदेवैरुक्त, इत्याह–

एसो पडिक्कमणविहि पण्णत्तो जिणवरेहिं सव्वेहिं।
संजमतवट्ठियाणं णिग्गंथाणं महरिसीणं॥1॥

इति सुगमं। इदानीं ग्रंथकार आत्मन औद्धत्यं परिहरन् सरस्वतीं क्षमयति। ततश्चात्मनः फलं याचत इत्याह–

अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं हवे एत्थ।
तं खमउ णाणदेवय देउ समाहिं च मे बोहिं॥

धर्म्यं शुक्लं च ध्यानं समाधिः। बोधिर्विशिष्टरत्नत्रयलाभः॥ **काऊणे**त्यादि॥ **लोयम्हि य॥** लोके च॥ चकारोऽयं साहूणमित्यस्यानंतरं दृष्टव्यः। न केवलमर्हदादीनां लोके नमस्कारं कृत्वा भंते (भगवन्) प्रतिक्रमितुमिच्छामि, अपि तु साधूनां च। कस्यां सत्यामुत्पन्नं दोषमेतेषां नमस्कारं कृत्वा प्रतिक्रमितुमिच्छामि॥

है। **(सया)** सदा सर्वकाल। **उप्पण्णाणुप्पण्णा** इत्यादि- योग की वक्रता से उत्पन्न हुई अथवा अनुत्पन्न हुई जो कुछ भी माया है वह मुनियों के द्वारा नष्ट कर देनी चाहिए। कैसे नष्ट कर देनी चाहिए? **अणुपुव्वसो**- पूर्व-पूर्व की अर्थात् जैसे-जैसे जो-जो माया जब-जब उत्पन्न होती है वह तभी-तभी नाश करने योग्य है, यह अर्थ है। कैसे उसका नाश करना चाहिए? **आलोयणणिंदणगरहणाए**- आलोचना, निंदा और गर्हा के द्वारा। किस प्रकार की वह आलोचना आदि है ? **अब्भुट्ठिदाए**- अर्थात् उस आलोचना आदि के द्वारा उस शल्य का हनन करने के लिए उद्यत होकर के। क्या करके उद्यत होना चाहिए? अथवा उसमें करण क्या है, कर्ता क्या है ? **करणदाए**- करणपना के साथ में। आत्मा ही कर्ता है। उस आत्मा कर्ता को उसके हनन करने में प्रवृत्त होना ही उसका साधकतम रूप करण है। यह अर्थ है। **अब्भुट्ठिदो करणदाए**- इस प्रकार का पाठ होने पर अभ्युत्थित अर्थात् उसके हनन करने के लिए उद्यत हुआ है यह आत्मा का विशेषण बन जाता है। उद्यत हुआ है अर्थात् उनका नाश करने के लिए मैं उद्यत हूँ। किसके द्वारा? **करणदाए**- आलोचना आदि रूप करणों से परिणत होकर के। इस प्रकार **भावपडिक्कमणं**- जब माया उत्पन्न हो जाती है तो उसे उसी समय पर आलोचना आदि के द्वारा नष्ट कर देना चाहिए इस रूप भाव प्रतिक्रमण कहा गया है। माया आदि रूप परिणति रूप भाव का ही प्रतिक्रमण से निराकरण हो जाता है। **सेसा**- अर्थात् अन्य का। उसी प्रकार की आलोचना आदि के द्वारा उसके निराकरण से रहित हुआ पुनः द्रव्य से प्रतिक्रमण शब्द उच्चारण मात्र से कहा गया है। अर्थात् वह आलोचना आदि के द्वारा निराकरण को प्राप्त नहीं होता है तो वह द्रव्य प्रतिक्रमण कहा जाता है, यह अर्थ है। ये दोनों ही प्रकार का भाव और द्रव्य प्रतिक्रमण भी अर्थात् इस प्रतिक्रमण की विधि न केवल वर्धमान स्वामी के द्वारा कही गई है अपितु सभी तीर्थंकर देवों के द्वारा कही गई है। इस प्रकार से कहते हैं-

गाथार्थ-यह प्रतिक्रमण की विधि सभी जिनवरों के द्वारा कही गई है और जो संयम और तप में स्थित हैं, निर्ग्रंथ हैं ऐसे महर्षियों के लिए यह प्रतिक्रमण की विधि कही गई है।

यह सुगम है। यहाँ पर ग्रन्थकार औद्धत्यपने का परिहार करते हुए सरस्वती से क्षमा मांगते हैं और यहाँ पर अपनी आत्मा के फल की याचना करते हैं-

गाथार्थ-जो कुछ भी अक्षर, पद व अर्थ से अथवा मात्रा से हीन हुआ है-हे ज्ञान देवता! उसको क्षमा करो और मुझे बोधि और समाधि को प्रदान करो।

धर्म्य- धर्म ध्यान व शुक्ल ध्यान का नाम समाधि है। बोधि अर्थात् विशिष्ट रूप से रत्नत्रय का लाभ बोधि है। **काऊणेत्यादि**। इस प्रकार से करके वह। **लोयम्हि**- (लोके च) और लोक में। साधू शब्द से इसका सम्बन्ध करना चाहिए। यानि न केवल अर्हंत आदि के लिए लोक में नमस्कार करके (हे भगवन्) किंतु साधुओं के लिए भी नमस्कार करके मैं प्रतिक्रमण की इच्छा करता हूँ -यह अर्थ है। किसके होने पर उत्पन्न हुए दोषों की मैं इस प्रकार से नमस्कार करके प्रतिक्रमण की इच्छा करता हूँ?

सुत्तस्स मूलपदाणमच्चासणदाए॥ सूत्रस्यागमस्य संबंधिनां मूलपदानां प्रधानपदानामत्यासादनता हीनता। तस्यां सत्यां यः कश्चिदुत्पन्नो दोषस्तं प्रतिक्रमितुमिच्छामि। **तं जहे**त्यादिना एतदेव दर्शयति। यत्र यत्र च सूत्रमूलपदेऽत्यासादना संभवति तत्तत् तं जहेत्यादिना दर्शयति॥ **तं जहा॥** तद्यथा॥ **णमोक्कारपदे** णमो अरहंताणमित्यादिलक्षणे पंचनमस्कारपदे याऽत्यासादनता तस्यां। **अरहंतपदे** इत्यादि। अर्हदादीनां वाचके पदे याऽत्यासादनता तस्यां॥ **मंगलपदे॥** चत्तारिमंगलमित्यादिलक्षणे॥ **लोगुत्तमपदे॥** चत्तारिलोगुत्तमा इत्यादिस्वरूपे॥ **सरणपदे॥** चत्तारिसरणं पवज्जामि इत्यादिलक्षणे॥ **सामाइयपदे॥** करेमि भंते सामाइयमित्यादिस्वरूपे॥ **चउवीसं तित्थयरपदे॥** उसहमजियं च वंदे इत्यादिलक्षणे॥ **वंदणपदे॥** सिद्धानुद्भूतेत्यादिस्वरूपे, जयति भगवानित्यादिलक्षणे च॥ **पडिक्कमणपदे॥** पडिक्कमामि भंते इत्यादिलक्षणे॥ **पच्चक्खाणपदे॥** भत्तं पच्चक्खामीत्यादिस्वरूपे॥ **कायोस्सग्गपदे॥** नवसंख्यपंचनमस्कारोच्चारण-लक्षणेऽष्टादशसंख्यसप्तविंशतिसंख्यषड्विंश (षट्त्रिंश) तिसंख्याष्टोत्तरशतसंख्यादिलक्षणे च॥ **असि-(सी)** हियपदे। **निसि (सी) हियपदे॥** एतेषु पदेष्वत्यासादनतायामुत्पन्नं दोषं प्रतिक्रमितुमिच्छामि॥ तथा॥ **अंगंगेसु॥** अंगानि चाचारादीनि। अंगांगानि चांगानामधिकारपदसंख्यादिविशेषाः। एकस्यांगशब्दस्य[1] गम्यमानत्वाल्लोपः, उष्ट्रमुखी कन्येत्यत्र मुखशब्दस्येव। तेषु॥ **पुव्वंगेसु॥** पूर्वाणि चोत्पादपूर्वादीनि। पूर्वांगानि (णि) च पूर्वाणामवयवा वस्तुप्रभृतयः। अत्राप्येकस्य पूर्वशब्दस्य पूर्ववल्लोपः॥ **पइण्णएसु॥** प्रकीर्णकेषु॥ **पाहुडेसु॥** प्राभृतेषु॥ **पाहुडपाहुडेसु॥** प्राभृतकप्राभृतकेषु॥ **कदकम्मेसु वा॥** पूर्वं कृतेषु षडावश्यकादिकर्मसु शुभाशुभकायवाङ्मनोव्यापारेषु तन्निबन्धनपुण्यपापकर्मसु वा॥ **भूदकम्मेसु वा॥** भूतेष्वविद्यमानेषु वर्तमानेपूक्तषडावश्यकादि-कर्मसु। एतेष्वंगांगादिषु भूतकर्मपर्यंतेष्वत्यासादनतायामुत्पन्नं दोषं प्रतिक्रमितुमिच्छामि। तथा पंचाचारस्यातिक्रमणतायामुत्पन्नं दोषं प्रतिक्रमितुमिच्छामीत्याह॥ **णाणस्स॥** इत्यादि। ज्ञानस्य मत्यादिपंचप्रकारस्य॥ **अदिक्कमणदाए॥** अतिक्रमणतायामत्यासादनतायामित्यर्थः। एवं

---

1. ईवुपमानपूर्वपदस्य द्युखं गतार्थत्वादिति द्यु बसे, नान्यत्र। नास्त्यत्र बसः। उष्ट्रमुखीत्यस्य बसत्वात् द्युभूतसुखशब्दस्य खं। 'अंगंगेसु' इत्यत्र बसत्वाभावात्कथमंगशब्दस्य त्लोपः (खे)। आ विषये भवेदस्माकं बुद्धिमान्द्यम्। बुद्धिमद्भिस्तस्य स्पष्टीकरणं विधातव्यम्। मन्मतेन प्रथमपदमवयविवाच्युत्तरपद त्ववयववाचि। प्रथमांगशब्दप्रत्यासत्त्योत्तरांग-शब्दस्यांग शास्त्रावयवा इत्यर्थो ग्राह्यः। अथवा द्वितीयांगशब्दस्यांगमिवांगमित्यर्थो ग्राह्यः 'देवपथदिभ्यः' इत्यनेन।

सुत्तस्स मूलपदाणमच्चासणदाए- सूत्र या आगम से सम्बन्धित जो मूल पद हैं, प्रधान पद हैं, उनकी अत्यासादनता अर्थात् हीनता हो जाने पर जो कुछ भी दोष उत्पन्न हुआ है उसका मैं प्रतिक्रमण करने की इच्छा करता हूँ। **तं जहेत्यादिना**- इत्यादि के द्वारा इसी को दिखाते हैं। जहाँ- जहाँ पर सूत्र के मूल पद में अत्यासादना संभव है वहाँ-वहाँ पर इस प्रकार से दिखाते हैं। **णमोक्कारपदे**- णमो अरिहंताणं इत्यादि लक्षण वाले पंच नमस्कार पद में जो अत्यासादना हुई है उसके हो जाने पर। **अरहंतपदे** इत्यादि- अर्हंत आदि के वाचक पद में जो अत्यासादना हुई उसके हो जाने पर। **मंगलपदे**- चत्तारिमंगलं इत्यादि लक्षण वाले पद में अत्यासादना हो जाने पर। **लोगुत्तमपदे**- चत्तारिलोगुत्तमा इत्यादि स्वरूप वाले पद में अत्यासादना हो जाने पर। **सरणपदे**- चत्तारिसरणं पवज्जामि इत्यादि लक्षण वाले सरण पद की अत्यासादना हो जाने पर। **सामाइयपदे**- हे भंते! मैं सामायिक करता हूँ इस स्वरूप की अत्यासादना हो जाने पर। **चउवीसं तित्थयरपदे**- **उसहमजियं च वंदे** इत्यादि लक्षण वाले जो चौबीस तीर्थंकरों की वंदना है उसके विषय में अत्यासादना हो जाने पर। **वंदणपदे**- ' सिद्धानुद्भूत 'इत्यादि स्वरूप वाले जयति भगवान 'जयति भगवान्' इत्यादि लक्षण वाली जो सिद्ध भक्ति या चैत्य भक्ति के द्वारा वंदना की जाती है उस वंदना पद में अत्यासादना हो जाने पर। **पडिक्कमणपदे**- पडिक्कमामि भंते! - इस प्रकार के लक्षण वाले प्रतिक्रमण के पद में अत्यासादना हो जाने पर। **पच्चक्खाणपदे**- भत्तं पच्चक्खामि इत्यादि स्वरूप वाले पद के प्रत्याख्यान में अत्यासादना हो जाने पर। **कायोस्सग्गपदे**- नौ संख्या वाले पंच नमस्कार मंत्र के उच्चारण में, अट्ठारह संख्या, सत्ताइस संख्या, और छत्तीस संख्या, एक सौ आठ संख्या आदि लक्षण वाले कायोत्सर्ग के पद में अत्यासादना हो जाने पर। **असि-(सी) हियपदे। निसि (सी) हियपदे**- इन पदों में भी अत्यासादना से उत्पन्न दोषों के निराकरण के लिए मैं प्रतिक्रमण की इच्छा करता हूँ। तथा ॥ **अंगंगेसु**- आचार आदि अंग है। अंगों के अधिकार पद, संख्या आदि विशेष अंगांग हैं। यहाँ अंगांग में एक अंग शब्द से ही अंगांग गम्यमान होने से लोप को प्राप्त हुआ है। जैसे उष्ट्रमुखी कन्या है इस प्रकार यहाँ मुख शब्द से ही कन्या की प्रतीति हो जाती है। इन अंग और अंगांगो में। **पुव्वंगेसु**- उत्पाद पूर्व आदि पूर्व हैं और पूर्वों के अवयव वस्तु प्राभृत आदि भी पूर्वांग हैं। यहाँ पर भी एक पूर्व शब्द का पहले के समान ही लोप हुआ है। **पइण्णएसु**- प्रकीर्णकों में। **पाहुडेसु**- प्राभृतों में। **पाहुडपाहुडेसु**- प्राभृतकप्राभृतक में। **कदकम्मेसु वा**- पहले किये हुए छः आवश्यक आदि कर्मों में, शुभ-अशुभ काय, वचन और मन के व्यापारों में अथवा इन व्यापारों के लिए कारण भूत पुण्य और पाप कर्मों में। **भूदकम्मेसु वा**- अविद्यमान भूत में और वर्तमान में कहे हुए छः आवश्यक आदि कर्मों में। इन अंगांग आदि से लेकर भूत कर्म पर्यंत तक अत्यासादना से उत्पन्न हुए दोषों का मैं प्रतिक्रमण करने की इच्छा करता हूँ। तथा पंचाचार की अतिक्रमणता में उत्पन्न हुए दोषों की मैं प्रतिक्रमण की इच्छा करता हूँ ,इस प्रकार अब कहते हैं। **णाणस्स**- इत्यादि- मति आदि पाँच प्रकार के ज्ञान की। **अदिक्कमणदाए**- अतिक्रमणता में अर्थात् अत्यासादना में। इसी प्रकार दर्शन के औपशमिक आदि पाँच प्रकार है उनकी भी अतिक्रमणता में, बारह प्रकार के तप हैं उनकी भी अतिक्रमणता में, वीर्य की अतिक्रमणता में जो दोष उत्पन्न हुए हैं उनका मैं प्रतिक्रमण करने

दर्शनस्यौपशमिकादिपंचप्रकारस्यातिक्रमणतायां, तपसो द्वादशप्रकारस्यातिक्रमणताया, वीर्यस्यातिक्रमणतायां च संजातं दोषं प्रतिक्रमितुमिच्छामि ॥ से ॥ इत्यादि । **से** तस्या अत्यासादनतायाः संबंधिनं दोषं प्रतिक्रमितुमिच्छामि । भ-(ग-) वानित्याह ॥ **अक्खरहीणं वा पदहीणं वा ॥** अक्षरेण ककारादिना, पदेन च सुबन्तेन तिङन्तेन च विकलं ॥ **सरहीणं वा ॥** उच्चनीचादिस्वरविकलं ॥ **अत्थहीणं वा ॥** परिपूर्णार्थरहितं ॥ **गंथहीणं वा ॥** परिपूर्णग्रंथरहितं ॥ क्व क्व तद्विनं (तद्धिनं)? **थएसु वा ॥** स्तवेष्वनेकतीर्थकरदेवगुणव्यावर्णनलक्षणेषु ॥ **थुइसु वा ॥** स्तुतिष्वेकतीर्थकरगुणव्यावर्णन-लक्षणासु ॥ **अट्ठक्खाणेसु वा ॥** चरितपुराणप्रतिबद्ध-कथानकविशेषेषु ॥ **अणिओगेसु वा ॥** करणानुयोगचरणानुयोगद्रव्यानुयोगेषु वा ॥ **अणिओगदारेसु वा ॥** कृतिवेदनादिचतुर्विंशत्यनियोगद्वारेष्वेतेष्वक्षरहीनादिकं दोषं प्रतिक्रमितुमिच्छामि ॥ **जे भावा ॥** इत्यादि । ये भावा जीवादिपदार्था आगमे प्रज्ञप्ताः प्रतिपादिताः । कैः? **अरहंतेहिं ॥** अर्हद्भिः ॥ किंविशिष्टैः? **भयवंतेहिं ॥** भगवद्भिर्ज्ञानातिशयवद्भिरिन्द्रादिपूज्यैर्वा । पुनरपि किंविशिष्टैः? **तित्थयरेहिं ॥** तीर्यते संसारसमुद्रो येन तत्तीर्थमागमः । तत्कुर्वंति ये तीर्थकरत्वनामपुण्यातिशयवशात्ते तीर्थकरास्तैः । पुनरपि कथंभूतैः? **आदियरेहिं ॥** आदिमुच्छिन्नस्य तीर्थस्य प्रथमप्रवृत्तिं ये कुर्वंति त आदिकरास्तैः । पुनरपि किंविशिष्टैः? **तिलोयणाहेहिं ॥** त्रिलोकनाथैस्त्रिभुवनस्वामिभिः ॥ **ते सद्दहामि ॥** तान् श्रद्दधामीत्यादि व्याख्यातार्थं ॥ **ते फासेमि ॥** तान् स्पृशामि । अवगाह्या-(हया-) मीत्यर्थः ॥ **अदिक्कमो ॥** कुतश्चिद्व्यासंगाच्चित्त-संक्लेशाद्वाऽऽगमोक्तानुष्ठान-कालादधिककाल आवश्यकादिक्रियाकरणमतिक्रमः ॥ **वदिक्कमो ॥** विगतोऽतिक्रमो यस्मिन्नसौ व्यतिक्रमो विषयव्यासंगादिनाऽऽगमोक्तकालाद्धीनकाले क्रियाकरणं ॥ **अइचारो ॥** आवश्यकादिक्रिया-करणालस्यादिकमतीचारः ॥ **अणाचारो ॥** व्रतसमित्यादीनामनाचरणं खण्डनं वाऽनाचारः ।

अथवा-

अतिक्रमो मानसशुद्धिहानिर्व्यतिक्रमो यो विषयाभिलाषः ।
तथातिचारः करणालसत्वं भंगो ह्यनाचार इह व्रतानां ॥

आभोगो ॥ कापोतलेश्यावशात्पूजामहत्त्वाभिलाषेणातिप्रकटानुष्ठानकरणमानाभोगः ॥ **अणाभोगो ॥** लज्जादिवशाल्लोकानामप्रकटानुष्ठान-करणमनाभोगः ॥ **अकाले सज्झाओ कओ ॥** आगमोक्तकालोल्लंघने

की इच्छा करता हूँ। **से** ॥ इत्यादि- से अर्थात् उस अत्यासादना से सम्बन्धित दोषों के प्रतिक्रमण की मैं इच्छा करता हूँ। अब इस प्रकार से कहते हैं। **अक्खरहीणं वा पदहीणं वा**- ककार आदि अक्षर हैं। सुबन्त, तिङन्त आदि पद हैं। इन अक्षर और पद से रहित होने पर। **सरहीणं वा**- ऊँच-नीच (छोटी बड़ी मात्रा वाले) आदि स्वरों से रहित होने पर **अत्थहीणं वा**- परिपूर्ण अर्थ से रहित होने पर। **गंथहीणं वा**- परिपूर्ण ग्रंथ से रहित होने पर। वह हीनता कहाँ-कहाँ होती है ? **थएसु वा**- स्तवनों में होती है, अनेक तीर्थंकर देवों के गुणों का वर्णन जिसमें होता है वह स्तवन है। उस स्तवन में यह हीनता होती है। **थुइसु वा**- स्तुतियों में हीनता होती है। एक तीर्थंकर के गुणों का वर्णन करना स्तुति है। उस स्तुति की हीनता में। **अट्ठक्खाणेसु वा**- चरित्र, पुराण में प्रतिबद्ध अर्थात् कहे हुए कथानक विशेषों में हीनता होती है। **अणिओगेसु वा**- अथवा करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग में हीनता होने पर। **अणिओग दारेसु वा**- कृति, वेदना आदि चौबीस अनुयोग द्वारों में। अक्षर की हीनता आदि दोष हुए हों तो उसके प्रतिक्रमण की मैं इच्छा करता हूँ। **जे भावा** ॥ इत्यादि- जो जीव आदि पदार्थ भाव हैं, वे आगम में प्रतिपादित हैं। किनके द्वारा प्रतिपादित हैं ? **अरहंतेहिं**- अर्हंत भगवान के द्वारा। कैसे हैं अरहंत भगवान्? **भयवंतेहिं**- वह भगवान हैं अर्थात् ज्ञान के अतिशय वाले हैं अथवा इन्द्र आदि से पूज्य हैं। पुनः वह किस विशेषता वाले हैं ? **तित्थयरेहिं**- संसार समुद्र जिसके द्वारा तैर लिया जाता है वह तीर्थ है। वह तीर्थ आगम ही है। उस आगम को जो करते हैं वे तीर्थकृत कहलाते हैं। तीर्थकरत्व नाम के पुण्य अतिशय के कारण से तीर्थंकर होते हैं उनके द्वारा यह जीव आदि प्रतिपादित हुए हैं। पुनः वह अरंहंत किस प्रकार के हैं ? **आदियरेहिं**- उच्छिन्न अर्थात् खण्डित हुए व लुप्त हुए तीर्थ की प्रथम प्रवृत्ति करने वाले जो हैं वे आदिकर कहलाते हैं उनके द्वारा। पुनः किस विशेषता वाले हैं ? **तिलोयणाहेहिं**- तीन लोक के नाथ अर्थात् तीन भुवन के स्वामी हैं उनके द्वारा । **ते सद्दहामि**- उनकी मैं श्रद्धा करता हूँ , सद्दहामि इत्यादि का अर्थ कहा जा चुका है। **ते फासेमि**- उनको मैं स्पर्श करता हूँ। अर्थात् उनमें मैं अवगाहित होता हूँ। **अदिक्कमो**- किसी व्यासंग से अथवा चित्त में संक्लेश के कारण से आगम में कहे हुए अनुष्ठान के काल से अधिक काल में आवश्यक आदि क्रियाओं का करना अतिक्रम है। **वदिक्कमो**- जो अतिक्रम से रहित है वह व्यतिक्रम है। विषय व्यासंग आदि के द्वारा आगम में कथित काल से हीन काल में क्रिया का करना व्यतिक्रम है। **अइचारो**- आवश्यक आदि क्रियाओं के करने में आलस्य आदि करना अतिचार है। **अणाचारो**- व्रत, समिति आदि का अनाचरण अर्थात् खण्डन हो जाना अनाचार है।

अथवा **श्लोक का अर्थ**-मानस शुद्धि की हानि अतिक्रम है। जो विषयों की अभिलाषा है वह व्यतिक्रम है। इन्द्रियों में जो आलसपना है वह अतिचार है। तथा इस लोक में जो व्रतों का अनाचार है वह भंग है। अथवा इस श्रमण अवस्था में व्रतों का जो भंग है वह अनाचार है।

आभोगो- कापोत लेश्या के कारण से पूजा महत्त्व की अभिलाषा से अतिप्रकट अनुष्ठान का करना आभोग है। **अणाभोगो**- लज्जा आदि के वश से लोक के लिए अप्रकट अनुष्ठान करना अनाभोग है। **अकाले सज्झाओ कओ**- आगम में कहे हुए काल का उल्लंघन करके

काले स्वाध्यायः कृतः ॥ **काले वा ॥** आगमविहितकाले ॥ **परिहाविदो ॥** परिहापितो न कृतः ॥ **अच्छाकारिदं ॥** सहसा कृतं ॥ अपरिभाव्य झटित्युच्चारितमित्यर्थः ॥ **मिच्छामेलिदं ॥** मिथ्याऽविद्यमानेन मीलितं मिश्रितं। पदच्छेदादिसर्वसंबंधरहितमित्यर्थः ॥ **आमेलिदं ॥** अन्यावयवमन्यावयवेन संयोज्य पठनं। **वामेलिदं ॥** विपर्यासितं उच्चध्वनियुक्तस्य नीचध्वनिना नीचध्वनियुक्तस्योच्चध्वनिना पठनमित्यर्थः ॥ **अण्णहादिण्णं ॥** अन्यथाकथितं ॥ **अण्णहापडिच्छिदं ॥** अन्यथा प्रतिगृहीतं। अन्यथा श्रुतमित्यर्थः। **अह पडिवाए ॥** इत्यादिना कालकृतमतिक्रमादिकं प्रतिक्रमामीति संबंधः ॥ **तिण्णछावट्ठिसयदिवसाणं ॥** षट्षष्ठ्यधिकत्रिशतदिवसानां ॥ **पंचवरिसादो वा परदो वा ॥** युगांतरीयप्रतिक्रमणायां हि पंचवर्षेभ्यो मर्यादीभूतेभ्योऽभ्यंतरे संजातो योऽतिक्रमादिदोषस्तं निराकर्तुं परतो षष्ठादिवर्षे सर्वसंघेन मिलित्वा बृहदाचार्यस्य पार्श्वे प्रतिक्रमणा श्रोतव्या ॥ **अब्भंतरदो वा ॥** पंचवर्षेभ्यो मर्यादीकृतेभ्योऽभ्यंतर एव तन्नि-(तं नि-) राकर्तुं तथा प्रतिक्रमणा श्रोतव्येति।

दोण्हं अट्टरुद्दसंकिलेसपरिणामाणं, तिण्हं अपसत्थसंकिलेसपरिणामाणं, तिण्हं दण्डाणं, तिण्हं लेस्साणं, तिण्हं गुत्तीणं, तिण्हं गारवाणं, तिण्हं सल्लाणं, चउण्हं सण्णाणं, चउण्हं कसायाणं, चउण्हं उवसग्गाणं, पंचण्हं महव्वयाणं, पंचण्हं इंदियाणं, पंचण्हं समिदीणं, पंचण्हं चरित्ताणं, छण्हं आवासयाणं, सत्तण्हं भयाणं, सत्तविहसंसाराणं, अट्ठहं भयाणं, अट्ठण्हं सुद्धीणं, अट्ठण्हं कम्माणं, अट्ठण्हं पवयणमाउआणं, णवण्हं बंभचेरगुत्तीणं, णवण्हं णोकसायाणं, दसविहमुण्डाणं, दसविहसमणधम्माणं, दसविहधम्मज्झाणाणं, बारसण्हं संजमाणं, बारसण्हं तवाणं, बारसण्हं अंगाणं, तेरसण्हं किरियाणं, चउदसण्हं पुव्वाणं, पण्णरसण्हं पमायाणं, सोलसण्हं कसायाणं, पणवीसाए किरियासु, दोण्हं अट्टरु इत्यादिना परिणामकृतमतिक्रमादिदोषं प्रतिक्रमामीति संबंधः ॥ **तिण्हं अपसत्थसंकिलेसपरिणामाणं ॥** त्रयाणां मायामिथ्यानिदानरूपाणामप्रशस्तानां पापोपार्जननिमित्तभूतानां संक्लेशपरिणामानां ॥ **तिण्हं दण्डाणं ॥** त्रयाणां दण्डानां। दण्डा इव दण्डाः पीडाकरत्वात्। जीवं वा दंडयंति कदर्थयंतीति दण्डाः दुष्टा मनोवाक्कायाः ॥ **तिण्हं लेस्साण**मित्यादि व्याख्यातार्थं ॥ **चउण्हं पच्चयाणं ॥** चतुर्णां प्रत्ययानां कर्मबंधकारणानां मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगलक्षणानां। ननु प्रमादस्य कर्मकारणस्य पंचमस्य सद्भावात्कथं चतुर्णामित्युपपद्यत इत्यपि नाशंकनीयं, तस्याविरतावंतर्भावात् ॥ **पंचण्हं समिदीणं ॥** इत्याद्युक्तार्थं ॥ **सत्तविहसंसाराणं ॥** सप्तविधः संसारश्चतुर्गतिपरिभ्रमणं येषां जीवानां ते सप्तविधसंसारास्तेषां। सप्तविधो

उस काल में स्वाध्याय किया गया हो। **काले वा**- आगम में कहे हुए काल में। **परिहाविदो**- स्वाध्याय को नहीं किया गया हो। **अच्छाकारिदं**- सहसा कर दिया गया हो। अर्थात् बिना किसी भावना से शीघ्र से उच्चारित कर दिया हो। **मिच्छामेलिदं**- मिथ्या अर्थात् जो विद्यमान नहीं है उस अविद्यमान के साथ मिलाकर के मिश्रित करके कहा हो। पदच्छेद आदि सभी संबंध से रहित हो करके कहा हो यह मिथ्यामेलीत है। **आमेलिदं**- अन्य अवयवों का अन्य अवयवों के साथ संयोजना करके पढ़ना आमेलित दोष है। **वामेलिदं**- विपर्ययास के साथ पढ़ना वामेलित दोष है अर्थात् उच्च ध्वनि से युक्त शब्दों को नीची ध्वनि के साथ, नीची ध्वनि से युक्त शब्दों को उच्च ध्वनि के साथ पढ़ना वामेलित दोष है। **अण्णहादिण्णं**- अन्यथा रूप से कहा गया हो तो वह अन्यथाकथित दोष है। **अण्णहापडिच्छिदं**- अन्यथा ग्रहण किया हो तो वह अन्यथा प्रतिगृहीत दोष है अथवा उसको अन्यथा सुन लिया हो। **अह पडिवाए**- इत्यादि के द्वारा काल कृत अतिक्रम आदि का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ यह संबंध किया गया है। **तिण्णछावट्ठिसयदिवसाणं**- तीन सो छ्यासठ दिनों में। **पंचवरिसादो वा परदो वा**- युगांतरीय प्रतिक्रमण में। पाँच वर्षों की मर्यादा के भीतर-भीतर जो अतिक्रम आदि दोष हुए हैं उनके निराकरण करने के लिए और उसके बाद छठवें आदि वर्ष में सभी संघ के साथ मिल करके बड़े आचार्य के पास में प्रतिक्रमण सुनना चाहिए। **अब्भंतरदो वा**- पाँच वर्षों की मर्यादा करके उसके भीतर ही इन दोषों का निराकरण करने के लिए पूर्वोक्त प्रकार से प्रतिक्रमण सुनना चाहिए।

दोण्हं अट्टरुद्दसंकिलेसपरिणामाणं- दो प्रकार के आर्त्त रौद्र संक्लेशपरिणाम ध्यान हैं। इत्यादि परिणामकृत अतिक्रम आदि दोषों का प्रतिक्रमण करता हूँ यह संबंध है। **तिण्हं अपसत्थसंकिलेसपरिणामाणं**- माया, मिथ्या और निदान रूप तीन अप्रशस्त परिणाम हैं जो पाप के उपार्जन के निमित्तभूत हैं इन्हीं को संक्लेश परिणाम कहते हैं। **तिण्हं दंडाणं**- तीन दंड हैं। ये दण्ड के समान हैं इसलिए इन्हें दण्ड कहते हैं। क्योंकि ये पीड़ा करने वाले हैं। जो जीव को पीड़ित करते हैं, दण्डित करते हैं, ऐसे मन वचन काय के व्यापार को दण्ड कहते हैं। **तिण्हं लेस्साणं**- इत्यादि तीन लेश्या का अर्थ कहा गया है। **चउण्हं पच्चयाणं**- चार प्रत्यय है जो कर्म बंध के कारण हैं। मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग कर्म के लिए कारणभूत प्रमाद नाम के पाँचवे प्रत्यय का भी सद्भाव होता है, फिर यहाँ चार ही प्रत्यय कैसे कहे हैं ? इस प्रकार की आशंका नहीं करना चाहिए क्योंकि उस प्रमाद प्रत्यय का अविरति में ही अन्तर्भाव हो जाता है। **पंचण्हं समिदीणं**- पाँच प्रकार की समितियाँ हैं इनका भी अर्थ कहा गया है। **सत्तविहसंसाराणं**- सात प्रकार का संसार है। जिन जीवों का चतुर्गति में परिभ्रमण रूप संसार है वे जीव भी सात प्रकार के हैं। उन जीवों का सात प्रकार का संसार है। 1- सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव, 2- बादर एकेन्द्रिय जीव ये एकेन्द्रिय के दो भेद हैं। विकलेन्द्रियों के तीन भेद हैं।, 3- दो इन्द्रिय, 4- तीन इन्द्रिय, 5- चार इन्द्रिय जीव, पंचेन्द्रिय के दो भेद हैं। 6- असंज्ञी पंचेन्द्रिय, 7- संज्ञी पंचेन्द्रिय। इस प्रकार से सात भेद कहे हैं।

इन जीवों में उत्पत्ति के लिए कारणभूत कर्म और उनको पीड़ा आदि पहुँचाना प्रतिदिन नहीं करना चाहिए। प्रमाद से यदि वैसा किया हो तो आलोचना करना चाहिए।

हि संसारः -एकेंद्रियाणां सूक्ष्मबादरलक्षणौ द्वौ भेदौ, विकलेंद्रियाणां द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियस्वरूपास्त्रयो भेदाः, पंचेद्रियाणां संज्ञ्यसंज्ञिलक्षणौ द्वौ भेदाविति॥ **अट्ठण्हं सुद्धीणं॥** अष्टानां शुद्धीनां ''मनोवाक्कायभैक्ष्येर्यासूत्सर्गे शयनासने। विनये च यतेः शुद्धिः शुद्ध्यष्टकमुदाहृतं॥'' इत्येवंरूपाणां---- ॥ **णवण्हं बंभचेरगुत्तीणं॥** नवप्रकाराणां ब्रह्मचर्यगुप्तीनां। अब्रह्मचर्यं हि नवप्रकारं। अतस्तत्प्रतिपक्षभूतं ब्रह्मचर्यमपि नवप्रकारं भवति। उक्तं च-

इत्थिविसयाहिलासो अंगविमोक्खो य पणिदरससेवा।
संसत्तदव्वसेवा तहिंदियालोयणं चेव॥
सक्कारपुरक्कारो अदीदसुमरणमणागदहिलासो।
इट्ठविसयसेवा वि य णवभेदमणं अबंभं तु॥

एवंविधं नवप्रकारमब्रह्मचर्यं चिंतयतो ब्रह्मचर्यस्य नवप्रकारस्य रक्षा भवतीति नवप्रकारा ब्रह्मचर्यगुप्तयः॥ **अंगविमोक्खो य॥** लिंगविक्रोशनं॥ **पणिदरस॥** वृष्याहारः॥ **संसत्तदव्व॥** स्त्रीपशुषंढसंसक्तवसत्यादिः॥ **इंदियालोयणं॥** स्त्रीमनोहरागंनिरीक्षणं॥ **सक्कारपुरक्कारो॥** पूजाप्रशंसारूपः॥ **इट्ठविसयसेवा वि य॥** विलेपनगीतनृत्यादि॥ **णवण्हं णोकसायाणं॥** नवानां नोकषायाणां हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सा-स्त्रीपुंनपुंसकवेदलक्षणानां। कषाया इव कषायाः। कया (? यथा) कषाया नैयग्रोधादयो वस्त्रादीनां रागसंश्लेषहेतवः, तथा क्रोधमानमायालोभा अपि जीवस्य कर्मसंश्लेषहेतुत्वात्कषाया इत्युच्यंते। कषायेभ्योऽन्ये ईषत्कषायाः नोकषायाः हास्यादयो नव॥ **दसविहमुंडाणं॥** दशप्रकारमुंडानां। मुंडनं निरोधनं। मुंडः दशप्रकारः।

गाथा -

पंच वि इंदियमुंडा वचिमुंडा हत्थपायतणुमुंडा।
मणमुंडेण य सहिया दसमुंडा वण्णिदा समए॥

इत्यभिधानात्। **दसविहसमणधम्माणं॥** दशप्रकारश्रमणधर्माणामुत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्य-शौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यलक्षणानां **दसविहधम्मज्झाणाणं॥**दशप्रकारधर्म्यध्यानानामपाय-

अट्ठण्हं सुद्धीणं- आठ शुद्धियाँ- आठ ही शुद्धियाँ होती है। कहा भी है- 'मनः शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि, भैक्ष्य शुद्धि, ईर्यापथशुद्धि, उत्सर्गशुद्धि, शयन- आसन शुद्धि और विनय शुद्धि, ये यति की शुद्धि हैं जो शुद्ध्यष्टक कही जाती हैं।'

इन शुद्धियों का प्रतिदिन मुनियों को अनुष्ठान करना चाहिए। अनुष्ठान नहीं करने पर आलोचना करना चाहिए। **णवण्हं बंभचेरगुत्तीणं**- नौ प्रकार की ब्रह्मचर्य की गुप्तियाँ हैं। अब्रह्मचर्य भी नौ प्रकार का होता है। इसलिए उसके प्रतिपक्षभूत ब्रह्मचर्य भी नौ प्रकार का होता है, जैसा कि कहा गया है।

गाथार्थ-1. स्त्री विषयक अभिलाषा 2. लिंग खुलना ? 3. गरिष्ठ रस सेवन 4. स्त्री संसक्त द्रव्य का सेवन 5. स्त्री के मनोहर अंगों को देखना 6.स्त्री का सत्कार पुरस्कार 7. अतीत (भोगों का)स्मरण 8. अनागत की अभिलाषा 9. इष्ट विषय का सेवन। यह नौ प्रकार का अब्रह्म है।

इस प्रकार नौ प्रकार के अब्रह्मचर्य का चिंतन करने वाले जीव के नौ प्रकार से ब्रह्मचर्य की रक्षा होती है। इसलिए यहाँ पर नौ प्रकार के ब्रह्मचर्य की गुप्ति कही हैं। **अंगविमोक्खो य**-लिंग का विक्रोशन होना। **पणिदरस**- कामोद्दीपक अर्थात् गरिष्ठ आहार। **संसत्तदव्व**- स्त्री, पशु ,नपुसंक से सेवित वसति आदि को संसक्त द्रव्य कहते हैं, उसका सेवन अर्थात् प्रयोग करना। **इंदियालोयणं**- स्त्री के मनोहर अंगों का निरीक्षण करना इन्द्रियालोचन कहलाता है। **सक्कारपुरक्कारो**- पूजा, प्रशंसा आदि रूप सत्कार पुरस्कार है। **इट्ठविसयसेवा विषय**- विलेपन करना, गीत, नृत्य आदि ये सब इष्ट विषयों का सेवन करना है। **णवण्हं णोकसायाणं**- नौ प्रकार की नोकषायें हैं। हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुसंकवेद- लक्षण वाली हैं कषायों के समान ही कषाय हैं। कैसे? जैसे- न्यग्रोध आदि वृक्ष लाल आदि रंगों से वस्त्र आदि को रंगने के लिए कारण होते हैं उसी प्रकार क्रोध, मान, माया, लोभ भी जीव को कर्मों से बंध कराने के लिए कारण होते हैं इसलिए इन्हें कषाय कहा जाता है। कषायों से जो अन्य हैं वे ईषत् कषाय नोकषायें हैं। जो हास्य आदि के भेद से नौ प्रकार की हैं। **दसविहमुंडाणं**- दश प्रकार के मुंडन- चेष्टा रोकने का नाम मुंडन है।

वह दश प्रकार का होता है। मूलाचार में कहा भी है- 'पाँच इन्द्रियों का मुंडन, वचनों का मुंडन, हाथ, पैर और शरीर का मुंडन और मन मुंडन से सहित होना, आगम में ये दश प्रकार के मुंडन वर्णित हैं।'

दसविहसमणधम्माणं- दश प्रकार के श्रमण धर्म- उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिञ्चन्य और ब्रह्मचर्य ये श्रमणों के दशधर्मों के लक्षण हैं।

दश प्रकार के धर्म ध्यान- अपाय विचय, उपाय विचय, विपाक विचय, विराग विचय, त्रिलोक विचय, भव विचय, जीव विचय, आज्ञा विचय, संस्थान विचय और संसार विचय ये दश धर्मध्यान के लक्षण हैं। परीक्षा को विचय कहते हैं।

विचयोपायविचयविपाकविचयविरागविचयत्रिलोकविचयभवविचयजीवविचयाज्ञा-विचयसंस्थानविचय-संसारविचयलक्षणानां। तत्र विचयः परीक्षा। सन्मार्गान्मिथ्यादृष्टयो दूरमेवापेता इति चिंतनमपायविचयः। मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो वा जीवस्य कथमपायः स्यादिति चिंतनमपायविचयः ॥1॥ उपायविचयो दर्शनमोहोदयादिकारणवशाज्जीवाः सम्यग्दर्शनादिभ्यः पराङ्मुखा इति चिंतनं ॥2॥ कर्मणां ज्ञानावरणादीनां द्रव्यक्षेत्रकालभवभावप्रत्ययं फलानुभवनं प्रति प्रणिधानं विपाकविचयः ॥3॥ संसारदेहविषयेषु दुःखहेतुत्वानित्यत्वचिंतनं विरागविचयः ॥4॥ ऊर्ध्वाधोमध्यलोकविभागेनानाद्यनिधनादिस्वरूपेण वा लोकस्वरूपचिंतनं लोकविचयः ॥5॥ चतुर्गतिपरिभ्रमणचिंतनं भवविचयः ॥6॥ संति जीवा उपयोगस्वभावा अनाद्यनिधनामुक्तेतररूपा इत्यादि जीवस्वरूपचिंतनं जीवविचयः ॥7॥ सर्वज्ञागमं प्रमाणीकृत्यात्यंतपरोक्षार्थावधारणमाज्ञाविचयः, सर्वज्ञज्ञातार्थसमर्थनं वा हेतुसामर्थ्यात् ॥8॥ अधोमध्योर्ध्वलोकस्य शरावव्रजमृदंगाद्याकारचिंतनं संस्थानविचयः ॥9॥ स्वोपात्तकर्मविपाकवशादात्मनो भवांतरावाप्तिः संसारः। तत्र परिभ्रमज्जीवः पिताभूत्वा भ्राता पुत्रः पौत्रश्च भवति, माता भूत्वा भगिनी भार्या दुहिता च भवति, स्वामी भूत्वा दासो भवति, दासो भूत्वा स्वाम्यपि भवतीति चिंतनं संसारविचयः ॥10॥

पणवीसाए किरियासु॥ पंचविंशतिसंख्यासु क्रियासु। क्रियंत इति क्रियाः शुभाशुभकर्मादानहेतवो व्यापाराः पंचविंशतिः। तथा हि-चैत्यगुरुप्रवचनपूजादिलक्षणसम्यक्त्ववर्द्धनी क्रिया सम्यक्त्वक्रिया। अन्यदेवतास्तवनादिरूपा मिथ्यात्वहेतुका कर्मप्रवृत्तिर्मिथ्यात्वक्रिया। गमनागमनादिप्रवर्तनं कायादिभिः प्रयोगक्रिया (प्रायोगिकी क्रिया)। संयतस्य सतोऽविरतिं प्रत्याभिमुख्यं समादानक्रिया।

1. सन्मार्ग से मिथ्यादृष्टि जीव दूर ही हैं इस प्रकार चिन्तन करना अपायविचय धर्मध्यान हैं। अथवा मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र से जीव को कैसे बचाया जाय, इस प्रकार चिन्तन करना अपायविचय धर्मध्यान है।

2. दर्शनमोह के उदय आदि के कारण से जीव सम्यग्दर्शन आदि से विमुख हैं, इस प्रकार चिन्तन करना उपाय विचय धर्मध्यान है।

3. द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव के कारण ज्ञानावरण आदि कर्मों के फलानुभव में उपयोग लगना विपाक विचय धर्मध्यान है।

4. संसार, देह और पंचेन्द्रिय के विषयों में ये दु:खों के हेतु हैं और अनित्य हैं, ऐसा चिन्तन करना विराग विचय धर्मध्यान है।

5. ऊर्ध्व, अध: और मध्यलोक के विभाग से अनादि अनिधन आदि स्वरूप से लोक के स्वरूप का चिन्तन करना लोक विचय धर्मध्यान है।

6. नरक आदि चारों गति के भव भ्रमण का चिन्तन करना भवविचय है।

7. जीव हैं, उपयोग स्वभाव वाले हैं, अनादिनिधन हैं, मुक्त और संसारी रूप हैं, इत्यादि रूप से जीव के स्वरूप का चिन्तन करना जीवविचय धर्मध्यान है।

8. सर्वज्ञ भगवान के आगम को प्रमाण मानकर अत्यन्त परोक्ष अर्थ का अवधारण (निश्चय) करना आज्ञाविचय धर्मध्यान है। अथवा हेतुओं की सामर्थ्य से सर्वज्ञ द्वारा ज्ञात अर्थ का समर्थन करना आज्ञाविचय धर्मध्यान है।

9. अधोलोक, मध्यलोक, और ऊर्ध्वलोक का आकार शराव (कटोरा), वज्र और मृदंग आदि के समान आकार वाला है, ऐसा चिन्तन करना संस्थानविचय है।

10. अपने ही अर्जित कर्म फल के कारण आत्मा को जो भवान्तर की प्राप्ति होती है वह संसार है। इस संसार में परिभ्रमण करता हुआ जीव पिता होकर भ्राता, पुत्र और पौत्र हो जाता है, माता होकर बहिन, पत्नी और बेटी हो जाती है, स्वामी होकर दास हो जाता है और दास होकर स्वामी भी हो जाता है, इस प्रकार चिन्तन करना संसारविचय धर्मध्यान है।

पणवीसाए किरियासु- पच्चीस क्रियाओं में- क्रियाएँ पच्चीस हैं। जो की जाती हैं वह क्रियाएँ हैं। शुभ-अशुभ कर्मों के ग्रहण में कारणभूत व्यापार ही क्रिया है, जो पच्चीस हैं। वह इस प्रकार है-

1. चैत्य, गुरु, प्रवचन अर्थात् जिनवाणी की पूजा आदि लक्षण वाली सम्यक्त्व बढ़ाने वाली क्रिया सम्यक्त्व क्रिया है।

2. अन्यदेवताओं के स्तवन आदि करने रूप मिथ्यात्व हेतुभूत कर्म की प्रवृत्ति मिथ्यात्व क्रिया है।

3. काया आदि के द्वारा गमनागमन आदि में प्रवर्तन होना प्रायोगिकी या प्रयोग क्रिया है।

4. संयत जन का अविरति के प्रति अभिमुख होना समादान क्रिया है।

ईर्यापथनिमित्तेर्यापथक्रिया। एताः पंच क्रियाः॥ क्रोधावेशात्प्रादोषिकी क्रिया। प्रदुष्टस्य सतोऽभ्युद्यमः कायिकी क्रिया। हिंसोपकरणाधानादाधिकरणिकी क्रिया। दुःखोत्पत्तितंत्रत्वात्पारितापिकी क्रिया। आयुरिंद्रियबलप्राणानां वियोगकरणात्प्राणातिपातिकी क्रिया। एताः पंच क्रियाः॥ रागार्दीकृतत्वात्प्रमादिनो रमणीयरूपालोकनाभिप्रायो दर्शनक्रिया। प्रमादवशात्स्पृष्टव्यसचेतनानुबन्धः स्पर्शनक्रिया। अपूर्वाधिकरणोत्पादनात्प्रात्ययिकी क्रिया। स्त्रीषंढपशुसंपातिदेशेंऽतर्मलोत्सर्गकरणं समंतानुपातक्रिया। अप्रमृष्टादृष्टभूमौ कायादिनिक्षेपोऽनाभोगक्रिया। एताः पंच क्रिया॥ यां परेण निर्वर्त्यां क्रियां स्वयं करोति सा स्वहस्तादानक्रिया। पापादानादिप्रवृत्तिविशेषाभ्यनुज्ञानं निसर्गक्रिया। पराचरितसावद्यादिप्रकाशनं विदारणक्रिया। यथोक्त-(क्ता) माज्ञामावश्यकादिषु चारित्रमोहोदयात्कर्तुमशक्नुवतोऽन्यथा प्ररूपणादाज्ञाव्यापादिकी-(की) क्रिया। शाठ्यालस्याभ्यां प्रवचनोपदिष्टविधि-कर्तव्यतानादरोऽनाकांक्षा क्रिया। एताः पंच क्रियाः॥ छेदनभेदनविशसनादिक्रिया-दिपरत्वमन्येन चारंभे क्रियमाणे प्रहर्षः प्रारंभक्रिया। परिग्रहाविनाशार्था पारिग्राह-(हि) की क्रिया। ज्ञानदर्शनादिषु निकृतिर्वचनं मायाक्रिया। अन्यं मिथ्यादर्शनक्रियाकरणकारणाविष्टं प्रशंसादिभिर्दृढयति यथा 'साधु करोषीति' सा मिथ्यादर्शनक्रिया। संयमघातिकर्मोदयवशादनिवृत्तिरप्रत्याख्यानक्रिया। एताः पंचक्रिया॥ इति पंचविंशतिक्रियाः॥

5. ईर्यापथ के निमित्त होने वाली ईर्यापथ क्रिया है। ये पाँच क्रियाएँ हैं।

6. क्रोध के आवेश से होने वाली प्रादोषिकी क्रिया है।

7. अत्यधिक दुष्ट होते हुए उद्यम करना कायिकी क्रिया है।

8. हिंसा के उपकरण रखने से आधिकरणिकी क्रिया है।

9. दुःखों की उत्पत्ति का कारण होने से पारितापिकी क्रिया है।

10. आयु, इन्द्रिय, बल-इन प्राणों का वियोग करने से प्राणातिपातिकी क्रिया है। ये पाँच क्रियाएँ हैं।

11. राग से गीला होकर प्रमादी बनकर रमणीयरूप को देखने का अभिप्राय दर्शन क्रिया है।

12. प्रमाद के वश से स्पर्शन योग्य संवेदना का अनुबन्ध स्पर्शन क्रिया है।

13. अपूर्व अधिकरणों को उत्पन्न करने से प्रात्ययिकी क्रिया है।

14. स्त्री, पुरुष और नपुंसकों के रहने के स्थान में अन्तर्मल का त्याग करना समन्तानुपात क्रिया है।

15. अप्रमृष्ट (बिना साफ की गयी)और अदृष्ट भूमि पर काय आदि का रखना अनाभोग क्रिया है। ये पाँच क्रियाएँ हैं।

16. जो क्रियाएँ दूसरों के द्वारा करने योग्य हैं ऐसी क्रिया को स्वयं करना स्वहस्तादान क्रिया है।

17. पाप को ग्रहण करने वाली प्रवृत्ति आदि का विशेष ज्ञान करना निसर्ग क्रिया है।

18. दूसरे के द्वारा आचरित सावद्य (पाप) आदि का प्रकाशन करना / दूसरों को बताना विदारण क्रिया है।

19. आवश्यक आदि करने के विषय में जो जिनाज्ञा है उसे चारित्रमोह कर्म के कारण करने में समर्थ नहीं होने से अन्यथा प्ररूपण करना आज्ञाव्यापादिकी क्रिया है।

20. शठता (मूर्खता) और आलस्य के द्वारा प्रवचन (जिनागम) में कही गई विधि के अनुसार कर्तव्यता में अनादर होना अनाकांक्षा क्रिया है। ये पाँच क्रियाएँ हैं।

21. छेदन, भेदन, हिंसन आदि क्रिया में तत्परता होना तथा अन्य के द्वारा आरम्भ करने पर अत्यन्त हर्ष होना प्रारम्भ क्रिया है।

22. परिग्रह का विनाश न हो इसके लिए की जाने वाली पारिग्राहिकी क्रिया है।

23. ज्ञान, दर्शन आदि के विषय में निकृति, वंचन अथवा मायाचार होना माया क्रिया है।

24. मिथ्यादर्शन क्रिया करने के कारणों से सहित अन्य किसी को प्रशंसा आदि से दृढ़ करना जैसे कि-

'तुम अच्छा कर रहे हो' वह मिथ्यादर्शन क्रिया है।

पणवीसाए भावणासु॥ पंचविंशतिसंख्यासु भावनासु। व्रतानां स्थैर्यार्थं भाव्यंत इति भावनाः पंचविंशतिः। तथा हि–

हिंसाविरतिव्रतस्थैर्यार्थं तावद् वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पंच। अनृतविरतिव्रतस्थैर्यार्थं क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पंच। स्तेयविरतिव्रतस्थैर्यार्थं शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिसधर्माविसंवादाः पंच। अब्रह्मचर्यविरतिव्रतस्थैर्यार्थं स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहरांगनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः पंच। परिग्रहविरतिव्रतस्थैर्यार्थं मनोज्ञामनोज्ञेंद्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पंच। **बावीसाए परीसहेसु॥** द्वाविंशतिसंख्येषु परीषहेषु। कर्मनिर्जरार्थं हि ये परिषह्यंते ते परीषहाः। (तेषु) क्षुत्पिपासा-शीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्याशय्याक्रोशवधयाचनालाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कार-पुरस्कारप्रज्ञाज्ञानादर्शनलक्षणेसु॥ मूलगुणेसु॥ पंच व्रतानि, पंच समितयः, पंचेंद्रियनिरोधाः, षडावश्यकाः (कानि), आचेलक्यं, लोचोऽदन्तधावनमस्नानं क्षितिशयनं स्थितिभोजनमेकभुक्तं चेत्यष्टाविंशतिर्मूलगुणाः। तेषु॥ **उत्तरगुणेसु॥** वृक्षमूलादयोऽनेकप्रकारास्तपोविशेषा उत्तरगुणाः। तेषु॥ **अइक्कमो॥** इत्यादि व्याख्यातार्थं॥ **जाव अरहंताण**मित्यादि। यावत्कालमर्हतां देशतः साकल्यतश्च कर्मारातिघातिनां पंचपरमेष्ठिनां॥ **भयवंताणं॥**

25. संयमघाति कर्मोदय के कारण निवृत्ति नहीं होना (विषय का परित्याग नहीं करना) यह अप्रत्याख्यान क्रिया है। ये पाँच क्रियाएँ हैं।

इन पच्चीस क्रियाओं में सम्यक्त्व क्रिया अनुष्ठान योग्य है, अन्य चौबीस क्रियाएँ नहीं। उन क्रियाओं के अनुष्ठान होने पर आलोचना करना चाहिए।

पणवीसाए भावणासु- पच्चीस भावनाओं में- व्रतों की स्थिरता करने के लिए जो भावना की गयी हैं वे पच्चीस भावनायें हैं। जो इस प्रकार हैं-

1. हिंसा से विरति रूप व्रत की स्थिरता के लिए - वचन गुप्ति, मनोगुप्ति, ईर्या समिति, आदान निक्षेपण समिति, आलोकितपान भोजन ये पाँच भावनायें हैं।

2. झूठ से विरति रूप व्रत की स्थिरता के लिए- क्रोध का त्याग, लोभ का त्याग, भीरुत्व का त्याग, हास्य का त्याग और अनुवीचिभाषण ये पाँच भावनायें हैं।

3. चोरी से विरति रूप व्रत की स्थिरता के लिए- शून्यागार में रहना, विमोचित आवास में रहना, दूसरे को उपरोध (रोकना) नहीं करना, भिक्षाशुद्धि और सधर्मी से विसंवाद (विवाद) नहीं होना, ये पाँच भावनायें हैं।

4. अब्रह्मचर्य से विरति रूप व्रत की स्थिरता के लिए- स्त्री सम्बन्धी राग कथा श्रवण नहीं करना, स्त्रियों के मनोहर अंगों का निरीक्षण नहीं करना, गरिष्ठ रसों का सेवन नहीं करना,पूर्व रति का स्मरण नहीं करना और स्व शरीर के संस्कार का त्याग, ये पाँच भावनायें हैं।

5. परिग्रह विरति रूप व्रत की स्थिरता के लिए- मनोज्ञ और अमनोज्ञ इन्द्रिय के विषयों में राग और द्वेष का त्याग होना ये पाँच भावनायें हैं।

इस प्रकार कहे हुए बाईस परीषहों के विषय में और भावना के विषय में जो कोई दैवसिक दोष क्रोध आदि से उत्पन्न हुआ हो उसकी आलोचना करने की मैं इच्छा करता हूँ।

बावीसाए परीसहेसु- बाईस परीषहों में- कर्म निर्जरा के लिए जो पूर्ण रूप से सहन किए जाते हैं वे परीषह हैं। क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंशमशक, नागन्य, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या, शय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कार पुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान और अदर्शन ये बाईस परीषह हैं।

मूलगुणेसु- पाँच व्रत, पाँच समिति, पंचेंद्रियनिरोध, छः आवश्यक, आचेलक्य, लोच, अदन्तधवन, अस्नान, भूमि शयन, स्थिति भोजन, एक भुक्ति इस प्रकार अट्ठाईस मूलगुण हैं, उन मूलगुणों में। **उत्तरगुणेसु**- वृक्ष मूल आदि अनेक प्रकार के तप विशेष उत्तर गुण हैं। उन उत्तर गुणों में। **अइक्कमो**- अतिक्रम इत्यादि का अर्थ पहले कहा गया है। **जाव अरहंताणमित्यादि**- जितने काल तक अर्हंतों का, एक

सातिशयज्ञानवतां पूज्यानां वा॥ **पज्जुवासं करेमि॥** एकाग्रेण हि विशुद्धेन मनसा चतुर्विंशत्युत्तरशतत्रयाद्युच्छ्वासैरष्टोत्तरशतादिवारान्पंचनमस्कारोच्चारणमर्हतां पर्युपासनकरणं। तद्यावत्कालं करोमि॥ **ताव कायं (वोसिरामि)॥** तावत्कालं कायं व्युत्सृजामि त्यजामि तत्रोदासीनो भवामि। कथंभूतं कायं ? **पावकम्मं॥** पापकर्म यस्मात् पापाय वा कर्म व्यापारो यस्य॥ **दुच्चरियं॥** दुष्टं दुर्गतिप्रापकं चरितं यस्य।

यत्पापं प्रचुरं प्रदुष्टमनसा जीवैः पुरोपार्जितं।
तत्सद्यः प्रलयं प्रयाति निखिलं तेषां प्रतिक्रामतां॥
मत्वेदं गणभृत्प्रतिक्रमणया तन्नाशमासूक्तवान्।
व्याख्याता तदियं प्रभेंदुमुनिना सद्धीधनैर्भाव्यतां॥

इति-श्रीगौतमस्वामि-विरचित-बृहत्प्रतिक्रमणाया-ष्टीकाश्रीमत्प्रभाचंद्र-पंडितेनकृतेति।

देश अथवा पूर्णरूप से कर्म रूपी शत्रुओं का घात करने वाले जो पंचपरमेष्ठी हैं वह सब यहाँ पर पंचपरमेष्ठी रूप से कहे हैं। **भयवंताणं**- सातिशय ज्ञानवान अथवा पूज्य हैं इसलिए वह भगवान हैं। **पज्जुवासं करेमि**- एकाग्रता के साथ विशुद्ध मन से तीन सौ चौबीस आदि उच्छ्वासों के द्वारा एक सौ आठ बार पंच नमस्कार मंत्रों का उच्चारण अरहंतों की परिउपासना करना है। उतने काल तक मैं ये करता हूँ। **ताव कायं (वोसिरामि)**- उतने काल पर्यंत काय को मैं छोड़ता हूँ अर्थात् उस काय के विषय से मैं उदासीन होता हूँ। वह काय कैसी है ? **पावकम्मं**- वह पाप कर्म है जिससे पाप कर्म हो अथवा जिससे पाप का व्यापार हो वो पाप कर्म कहलाता है। **दुच्चरियं**- दुष्ट अर्थात् दुर्गति के प्रापक चरित्र है उसके लिए मैं प्रतिक्रमण करता हूँ।

जो पाप प्रदुष्ट मन के द्वारा जीवों ने पहले प्रचुर मात्रा में उपार्जित किया है वह समस्त पाप शीघ्र ही प्रलय को प्राप्त हो जाता है। उन पापों का प्रतिक्रमण होने पर वह पाप ही शीघ्र प्रलय को प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार से मान करके गणधर भगवान ने प्रतिक्रमण के द्वारा उन पापों का नाश कहा है। उन्हीं गणधर भगवान के इस प्रतिक्रमण की टीका व्याख्यान अर्थात् मुझ प्रभाचन्द्र मुनि ने की है समीचीन बुद्धि रूपी धन को भाने वाले इस व्याख्या को निरन्तर करें।

इस प्रकार श्री गौतम स्वामी विरचित बृहत्प्रतिक्रमण की संस्कृत-टीका श्रीमत् प्रभाचन्द्र पंडित (आचार्य) द्वारा पूर्ण की गयी।

इस प्रकार इस प्रतिक्रमण ग्रन्थत्रयी के द्वितीय ग्रन्थ 'बृहत्प्रतिक्रमण' की हिन्दी-टीका आचार्य श्री विद्यासागर जी के शिष्य मुनि प्रणम्यसागर द्वारा पूर्ण की गयी।

आलोचना

पंचाचारविशोधनार्थममलामालोचनामुक्त्वा-
नष्टम्यादिदिनावधिर्गणनया श्रीगौतमो मादृशं।
स्पष्टार्थैः प्रवरैः प्रसन्नवचनैः सर्वप्रबोधप्रदै-
स्तां व्याख्यातुमशेषतोऽमलवपुः प्रारभ्यते प्रक्रमः ॥1॥

श्रीगौतमस्वामी मुनीनां दुष्परिणामादिभिः प्रतिदिनमुपार्जितस्य पंचाचारगोचरस्यातिचारस्य दिनगणनया विशुद्ध्यर्थमालोचनालक्षण-मुपायमुपदर्शयन्नाह **इच्छामी**त्यादि॥ **भंते॥** भगवन् इच्छामि। किं कर्तुं ? **आलोचेदुं॥** आलोचयितुं। आलोचनां विशुद्धिं कर्तुं। क्व ? **अट्ठमियम्हि॥** आष्टमिके। अष्टम्यामष्टसंख्यावच्छिन्नदिनगणनायां भवो ज्ञानाचाराद्यतीचार आष्टमिकः। तस्मिन्॥ **अट्ठमियमालोचेदु**मिति॥ पाठे त्वष्टसंख्यावच्छिन्नदिनगणनाप्रभवं तदतीचारमालोचयितुमिच्छामीत्यर्थः। तत्प्रभवत्वमेवास्य समर्थयमानः प्राह-**अट्ठण्ह**मित्यादि। अष्टानां दिवसानामष्टनां रात्रीणां॥ **अभंतरादो॥** अभ्यंतरतः समुत्पन्ने तद्गोचरेऽतीचारे समुत्पन्नं वा तद्गोचरमतीचारमालोचयितुमिच्छामीत्यर्थः।

यस्याचारस्यातीचार आलोच्यते स कतिप्रकारो भवतीत्याह-**आयारो** इत्यादि। आचर्यतेऽनुष्ठीयते कर्मक्षयार्थं मोक्षार्थिभिरित्याचारः॥ **पंचविहो॥** पंच विधाः प्रकारा यस्यासौ पंचविधः। तानेव पंचप्रकारान्व्याचष्टे-ज्ञानाचारो दर्शनाचारस्तपआचारो वीर्याचारश्चारित्राचारश्चेति। चशब्द उक्तसमुच्चये। इतिशब्द एवमर्थे। अग्रेऽपि चशब्देतिशब्दयोरित्थमर्थो बोद्धव्यः। ज्ञानाचारोदीनां व्याख्यानं स्वयमेव ग्रन्थकारो 'ज्ञानाचारोऽष्टविधः' इत्यादिना करिष्यति।

इच्छामि भंते इत्यादि॥ **पक्खियम्हि॥** पक्षे भवः पाक्षिकः। तस्मिन्पाक्षिके ज्ञानादिगोचरेऽतीचार आलोचयितुमालोचनां कर्तुमिच्छामि। **पक्खियमालोचेदु**मितिपाठे तु पंचदशसंख्यावच्छिन्नदिनगणनाप्रभवं तदतीचारमालोचयितुमिच्छामीत्यर्थः। तदेव तत्प्रभवत्वमस्य समर्थयमानः प्राह-**पण्णारसण्ह**मित्यादि। पंचदशानां दिवसानां पंचदशानां रात्रीणामभ्यन्तरतः समुत्पन्ने तद्गोचरेऽतीचारे समुत्पन्नं वा तद्गोचरमतीचारमालोचयितुमिच्छामि। स चाचारः पंचविध इत्यादि व्याख्यातार्थं।

आलोचना

काव्यार्थ-श्री गौतम गणधर स्वामी ने मुझ जैसे लोगों के लिए अष्टमी आदि दिनों की अवधि की गणना से पंचाचार की शुद्धि के लिए निर्मल आलोचना कही है। जिसका कि शिक्षाप्रद, स्पष्ट अर्थ से युक्त, उत्तम व सुन्दर वचनों से पूर्णतया व्याख्या करने का प्रक्रम, निर्मल शरीर वाले मुझ जैसे (प्रभाचन्द्र) के द्वारा सभी के लिए प्रारंभ किया जाता है।।1।।

श्री गौतम स्वामी मुनियों के लिए इस (दुष्षमकाल में) दुष्परिणाम आदि के द्वारा प्रतिदिन उपार्जित पंचाचार के गोचर अतिचारों को दिन की गणना से विशुद्ध करने के लिए आलोचना के लक्षण के उपाय को दिखाते हुए कहते हैं- इच्छामि इत्यादि। भंते! हे भगवन्! मैं इच्छा करता हूँ। क्या करने के लिए? **आलोचेदुं**-आलोचना करने के लिए। आलोचना की विशुद्धि करने के लिए। कब? **अट्ठमियम्हि**-अष्टमी में। आठ संख्या से परिमित दिनों की गणना से उत्पन्न उन अतीचारों की आलोचना करने की इच्छा करता हूँ , यह अर्थ है। आठ संख्या की गणना से युक्त दिनों में होने वाले ज्ञानाचार आदि के अतीचार अष्टमी से सम्बन्धित हैं। **अट्ठमियमालोचेदुं**-यह पाठ मानने पर तो आठ संख्या से सहित दिनों की गणना से उत्पन्न। उन आठ दिनों की गणना से उत्पन्नता ही है, इसका समर्थन करते हुए कहते हैं-

विशेषार्थ-यहाँ दो पाठ भेद हैं। पहला पाठ '**आलोचेदुं अट्ठमियम्हि**' है, इसका अर्थ अष्टमी तक के आठ दिन ऐसा किया है और दूसरा पाठ '**अट्ठमियमालोचेदुं**' इसका अर्थ आठ दिन की गणना से लिया है। इस अर्थ में आठ दिन से प्रयोजन है अष्टमी से नहीं।

उन आठ दिनों में ये दोष उत्पन्न होते हैं, इसका समर्थन करते हुए कहते हैं- **अट्ठण्हं** इत्यादि। आठ दिन और आठ रात्रि के। **अभंतरादो** - भीतर उत्पन्न होने वाले अथवा आठ दिन के विषयभूत अतीचारों में उत्पन्न या उन आठ दिन के गोचर अतीचारों की आलोचना करने की मैं इच्छा करता हूँ।

जिस आचार के अतीचार की आलोचना की जा रही है वह कितने प्रकार का है? यह कहते हैं- **आयारो** इत्यादि। मोक्षार्थियों के द्वारा कर्म का क्षय करने के लिए जिसका आचरण किया जाता है अर्थात् जिसका अनुष्ठान किया जाता है, वह आचार है (आचर्यते आचार:)। **पंचविहो** -उसके पांच प्रकार हैं। उन्हीं पांच प्रकारों को कहते हैं- ज्ञानाचार, दर्शनाचार, तप आचार, वीर्याचार और चारित्राचार। च शब्द सभी के समुच्चय के लिए है। इति शब्द एवं (इस प्रकार) अर्थ में है। आगे भी 'च' और 'इति' शब्द का यही अर्थ जानना। ज्ञानाचार आदि का व्याख्यान स्वयं ही ग्रन्थकार 'ज्ञानाचार आठ प्रकार का है' इत्यादि रूप से करेंगे।

इच्छामि भंते इत्यादि। **पक्खियम्हि**- पक्ष में होने वाला पाक्षिक है। ज्ञानादि के विषयभूत उस पाक्षिक अतिचार की आलोचना करने की मैं इच्छा करता हूँ। '**पक्खियमालोचेदुं**'-यह पाठ होने पर तो पन्द्रह संख्या से परिमित दिनों की गणना में उत्पन्न उन अतिचारों की आलोचना करने की मैं इच्छा करता हूँ। यह अर्थ है। उसी का समर्थन करते हुए कहते हैं- '**पण्णारसण्हं**' इत्यादि। पन्द्रह दिन और पन्द्रह रात

इच्छामि भंते इत्यादि। **चाउम्मासियम्हि॥** चातुर्मासिके। चतुर्षु मासेषु भवश्चातुर्मासिकः पंचाचारगोचरोऽतीचारः। तस्मिन्नालोचयितुमालोचनां कर्तुमिच्छामि। **चाउम्मासियमालोचेदु**मिति पाठे तु विंशत्युत्तरशतसंख्यावच्छिन्नदिनगणनाप्रभवं तदतीचारमालोचयितुमिच्छामीत्यर्थः। एतदेव तत्प्रभवत्वमस्य समर्थयमानः प्राह-**चउण्हं मासाण**मित्यादि। चतुर्णां मासानामष्टानां पक्षाणां बिंशत्युत्तरशतदिवसानां विंशत्युत्तरशतरात्रीणामभ्यंतरतः समुत्पन्नं तमालोचयितुमिच्छामीत्यर्थः। स चाचारः पंचविध इत्यादि व्याख्यातार्थं।

इच्छामि भंते इत्यादि॥ **सांवच्छरियम्हि॥** सांवत्सरिके। संवत्सरे भवः सांवत्सरिकः पंचाचारगोचरोऽतीचारः। तस्मिन्नालोचयितुमालोचनां कर्तुमिच्छामि। **सांवच्छरियमालोचेदु**मिति पाठे तु षट्षष्ट्यधिकशतत्रयसंख्यावच्छिन्नदिनगणनाप्रभवं तदतीचारमालोचयितुमिच्छामीत्यर्थः। तदेव तत्प्रभवत्वमस्य समर्थयमानः प्राह-**बारसण्ह**मित्यादि। द्वादशानां मासानां चतुर्विंशतिसंख्यावच्छिन्नपक्षाणां॥ **तिण्हं छावट्ठिसयदिवसाणं॥** षट्षष्ट्यधिकशतत्रयदिवसानां तथा षट्षष्ट्यधिकशतत्रयरात्रीणामभ्यंतूरतः संजातं तद्गोचरं तमालोचयितुमिच्छामि। स चाचारःपञ्चविध इत्यादि व्याख्यातार्थं। पूर्वमुद्दिष्टान् ज्ञानाचारादीन्व्याचिख्यासु**स्तत्त्थे**त्याह॥ **तत्थ॥** तेषुपञ्चप्रकारेष्वाचारेषु मध्ये ज्ञानाचारो ज्ञानस्याचरणमनुष्ठानं। मत्यादिभेदेन ज्ञानस्य पञ्चप्रकारतासंभवेऽपीह श्रुतज्ञानमेव गृह्यते, तस्यैव वक्ष्यमाणकालाद्यष्ट-प्रकारैराचरणसंभवात्। तत्र काले संध्यादिपरिहारेण पठनपाठनश्रवणश्रावणचिन्तनव्याख्यानादिकं कर्तव्यं॥ **विणये॥** विनयेन पर्यंकादिनिषण्णेन प्रचुरोच्छ्वासविप्रुष्निरोधेन करमुकुलीकरणेन प्रश्नादिकं कर्तव्यम्। 'अन्यार्थेऽन्या' इति विनयादिचतुष्पदेषु तृतीयार्थे सप्तमी॥ **उवहाणे॥** उपधानेनाऽवग्रहविशेषेण॥ **बहुमाणे॥** मानो द्रव्यभावपूजा। बहुश्चासौ मानश्च तेन गंधपुष्पादिप्रचुरद्रव्यपूजायुक्तेन सिद्धश्रुतगुरुभक्तिरूपप्रचुर-भावपूजायुक्तेन च पठनादिकं कर्तव्यमित्यर्थः॥ **तहेव॥** तथैव॥ **अणिण्हवणे॥** निह्नवनमपलापः। तत्प्रतिषेधोऽनिह्नवनं। तेनोपाध्यायग्रन्थादीनामनिह्नवेन तत्कर्तव्यमित्यर्थः। एते कालादयः पञ्च, व्यञ्जनमर्थस्तदुभयं चेति त्रय इत्यष्टौ। व्यञ्जनमित्युपलक्षणमक्षरस्वरपदादीनां। तेनाक्षरादिशुद्धमविकलं पठनपाठनादि कर्तव्यं। अर्थशुद्धमर्थाविकलं, तदुभयं चार्थव्यञ्जनशुद्धं। तदुभयाविकलं तत्कर्तव्यं। इत्येवं-

के भीतर उत्पन्न होने पर अथवा उन ज्ञानादि के गोचर (विषयभूत) उन अतिचारों की आलोचना करने की मैं इच्छा करता हूँ। वह आचार पांच प्रकार का है। इसकी व्याख्या कर दी है।

इच्छामि भंते इत्यादि- **चाउम्मासियम्हि**।। चातुर्मास में। चार मास में होने वाला चातुर्मासिक है। चातुर्मासिक पंचाचार सम्बन्धी जो अतिचार हैं उनकी आलोचना करने की मैं इच्छा करता हूँ। ''**चाउम्मासियमालोचेदुं**'' यह पाठ होने पर एक सौ बीस (120) संख्या से परिमित दिनों की गणना में होने वाले उन अतिचारों की आलोचना की मैं इच्छा करता हूँ। यह अर्थ है। इसी का समर्थन करते हुए कहते हैं- **चउण्हं मासाणं** इत्यादि। चार मास के आठ पक्षों में या एक सौ बीस दिन तथा एक सौ बीस रात्रियों में जो दोष उत्पन्न हुए हों उनकी आलोचना करने की मैं इच्छा करता हूँ। वह आचार पाँच प्रकार का है। इत्यादि का अर्थ पहले कह चुके हैं।

इच्छामि भंते इत्यादि। **सांवच्छरियम्हि**-संवत्सर सम्बन्धी सांवत्सरिक है। वर्ष सम्बन्धी पांच आचारों सम्बन्धी अतिचार की आलोचना करने की मैं इच्छा करता हूँ। '**सांवच्छरियमालोचेदुं**' यह पाठ होने पर तीन सौ छ्यासठ दिनों की गणना में होने वाले अतिचारों की आलोचना की मैं इच्छा करता हूँ। वह अतिचार, उन दिनों में हुए हैं इसका समर्थन करते हुए कहते हैं- '**बारसण्हं**' इत्यादि। बारह महीने के चौबीस पक्षों में या तीन सौ छ्यासठ दिन तथा तीन सौ छ्यासठ रातों में जो अतिचार उत्पन्न हुआ है उसकी आलोचना की मैं इच्छा करता हूँ। वह आचार पाँच प्रकार का है। यह पहले कह दिया है। पहले कहे हुए ज्ञानाचार आदि को कहने की इच्छा से कहते हैं- **तत्थ**-उन पाँच प्रकार के आचारों में जो ज्ञानाचार है वह ज्ञान का आचरण या अनुष्ठान है। मतिज्ञान आदि के भेद से ज्ञान के पाँच भेद संभव होने पर भी यहाँ श्रुतज्ञान का ही ग्रहण है क्योंकि उसी श्रुतज्ञान का आगे कहे जाने वाले काल आदि आठ भेदों से आचरण संभव है। **काले** उस काल में संध्या आदि का परिहार (छोड़) करके पढ़ना, पढ़ाना, सुनना, सुनाना, चिंतन, व्याख्यान आदि करना चाहिए। **विणये**-विनय से अर्थात् पर्यंक आसन आदि से बैठ करके प्रचुर उच्छ्वास आदि के कणों को रोक कर के तथा हाथ जोड़कर के प्रश्न आदि करना चाहिए। 'अन्यार्थेऽन्या इस व्याकरण के नियम से विनय आदि चारों पदों में तृतीया के अर्थ में सप्तमी विभक्ति हुई है अतः विणये शब्द बना है। **उवहाणे**-उपधान अर्थात् अवग्रह (नियम) विशेष से। **बहुमाणे**-बहुमान से-द्रव्य पूजा और भावपूजा मान है। बहुत द्रव्य-भाव पूजा के साथ बहुमान से ज्ञानाचार का पालन किया जाता है। इसलिए गंध, पुष्प आदि प्रचुर द्रव्य पूजा के साथ तथा सिद्ध, श्रुत, गुरूभक्ति रूप प्रचुर भाव-पूजा के साथ पठन आदि करना चाहिए। **तहेव**-उसी प्रकार।

अणिण्हवणे-निह्नवन अपलाप है। इसका निषेध अनिह्नवन है। इसलिए उपाध्याय, ग्रन्थ आदि का अपलाप नहीं करना चाहिए। यह अर्थ है। यह काल आदि पांच हैं। व्यंजन, अर्थ और उभय (व्यंजन-अर्थ) यह तीन। इस तरह आठ भेद हैं। व्यंजन- यह तो उपलक्षण है इसलिए अक्षर, स्वर, पद आदि का भी ग्रहण करना। अक्षर आदि से शुद्ध, दोष रहित पठन, पाठन आदि करना चाहिए। अर्थ शुद्धि अर्थात् अर्थ

अट्ठविहो णाणायारो॥ अष्टप्रकारो ज्ञानाचारो यः प्रतिपादितः सः॥ **परिहाविदो॥** परिहापितोऽविकलरूपतयाऽननुष्ठितः। एतदेवास्याविकलरूपतयाऽननुष्ठानं दर्शयन्नाह- से इत्यादि। से तस्य ज्ञानाचारस्य। किं ?॥ **(परिहावणं॥)** परिहापनं। अक्षरादिहीनं पठनादिकं। अक्षरमञ्झलसंघातः। तेन हीनं विकलं। न केवलं तेनैव हीनं, अपि तु पदहीनं वा। पद्यते गम्यते येनार्थस्तत्पदं सुबंतं च तिङन्तं च। तेन हीनं। सर्वत्र वाशब्दः परस्परसमुच्चये। व्यंजनं ककारादिहल्मात्रं। तेन हीनं। स्वरो दीर्घह्रस्वाद्यकारादिमात्राभेदः। तेन हीनं। अर्थहीनमुत्सूत्रार्थकथनं। ग्रंथहीनं नष्टवाक्याधिकारादिपठनं विपरीतवाक्याधिकारादिपठनं वा। क्व क्व ? तद्धीनतालक्षणं परिहापनं स्यात् ? **थएसु वा॥** स्तवेष्वनेकतीर्थकरदेवगुणव्यावर्णनलक्षणेषु॥ **थुइसु वा॥** स्तुतिष्वेकतीर्थकरदेवगुणव्यावर्णनलक्षणासु॥ **अत्थक्खाणेसु वा॥** अर्थाख्यानेषु चरित्रपुराणप्रतिबद्धकथानकविशेषलक्षणेषु॥ **अणिउग्गेसु वा (अणुओगेसु वा)॥** प्रथमानुयोगकरणानुयोगचरणानुयोग-द्रव्यानुयोगलक्षणेषु॥ **अणियोगदारेसु वा॥** कृतिवेदनादिचतुर्विंशत्यनुयोगद्वारेषु॥ तथा-**अकाले सज्झाओ कदो वा॥** शोभनो लाभपूजाख्यात्यनपेक्षः कर्मक्षयार्थमाध्यायः पाठः स्वाध्यायः। सोऽकाल आगमोक्तकालोल्लंघिते काले **कदो वा** स्वयं स्वातंत्र्येण कृतः॥ **कारिदो वा॥** अन्येन वा नरेण कारितः॥ **कीरंतो वा॥** अन्येन क्रियमाणो॥ **समणुमण्णिदो वा (?)॥** स्वयं समनुमतः॥ **काले वा॥** आगमविहितकाले॥ **परिहाविदो॥** परिहापितोऽननुष्ठितः॥ **अच्छाकारिदं॥** सहसा कृतं। अपरिभाव्य झटित्युच्चारितं॥ **मिच्छामेलिदं॥** मिथ्याऽविद्यमानेनमीलितं मिश्रितं। पदच्छेदादिसंबंधरहितमित्यर्थः॥ **आमेलिदं॥** अन्यावयवमन्यावयवेन संयोज्य पठनं॥ **वामेलिदं॥** विपर्यासितं। उच्चध्वनिसहितस्य नीचध्वनिना नीचध्वनिसहितस्य वोच्चध्वनिना पठनमित्यर्थः॥ **अण्णहादिण्णं॥** अन्यथा कथितं॥ **अण्णहापडिच्छिदं॥** अन्यथा प्रतिगृहीतं। अन्यथा श्रुतमित्यर्थः॥ **आवासएसु परिहीणदाए॥** कर्मक्षयार्थं मोक्षार्थिभिरवश्यं क्रियंत इत्यावश्यकानि षट्। मनोज्ञादित्वात्कर्मणि वुञ्।

समदा थवो य वंदण पाडिक्कमणं तहेव णायव्वं।
पच्चक्खाण विसग्गो करणीयावासया छप्पि॥

---

1. णिस्संकिय णिक्कंखियं णिव्विदिगिछा अमूददिट्ठीय।
   उवगूहणठिदिकरणं बच्छल्लं वा पहावणा चेदि।। -इत्यषा गाथेति भाति।

दोष से रहित। अर्थ-व्यंजन में शुद्ध अर्थात् अर्थ-व्यंजन दोष से रहित ज्ञानाचार का पालन करना चाहिए। इस प्रकार अट्ठविहो **णाणायारो**- जो आठ प्रकार का ज्ञानाचार है उसका कथन किया जा चुका है।

परिहाविदो-इस ज्ञानाचार की परिहानि की हो, शुद्ध रूप से अनुष्ठान नहीं किया हो। इसी ज्ञानाचार के इस अविकल रूप से नहीं किए गए अनुष्ठान को दिखाते हुए कहते हैं- उस ज्ञानाचार का- क्या? **परिहावणं**-परिहापन अर्थात् अक्षर आदि से हीन, पढना आदि करना। अक्षर अर्थात् स्वर-व्यंजनों (अच्-हल्) का समूह। उस अक्षर से हीन होकर पढ़ना आदि किया हो। न केवल उससे ही हीन अपितु पद से हीन भी। जिससे अर्थ कहा जाय, जाना जाय वह सुबंत और तिङन्त पद है। इन पदों से हीन पढ़ना आदि किया हो। सर्वत्र वा शब्द परस्पर के समुच्चय के लिए है। ककार आदि हल् मात्र व्यंजन है। उस व्यंजन से हीन पढ़ना आदि किया हो। दीर्घ, ह्रस्व आदि अकार आदि मात्रा का भेद स्वर है। उस स्वर से हीन सूत्र विरुद्ध अर्थ को कहना अर्थहीन है। जिसके पढ़ने में वाक्य, अधिकार आदि ही नष्ट हो गए हों वह ग्रन्थहीन है अथवा विपरीत वाक्य, अधिकार आदि का पढ़ना भी ग्रन्थ हीन है। कहाँ-कहाँ यह हीनता लक्षणवाला परिहापन होता है? **थऐसु वा**-स्तवों में- अनेक तीर्थंकर देव के गुणों का वर्णन करना स्तव है। **थुइसु वा**-स्तुतियों में- एक तीर्थंकर देव के गुणों का कथन करना स्तुति है। **अत्थक्खाणेसु वा** -अर्थाख्यानों में-चरित्र, पुराणों में प्रतिबद्ध कथानक विशेष में अर्थाख्यान है। **अणिउग्गेसु वा**-अनुयोगों में- प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग में। **अणियोगदारेसु वा**-अनुयोगद्वारों में- कृति, वेदना आदि चौबीस अनुयोगद्वारों में। **अकाले सज्झाओ कदो वा**-अकाल में स्वाध्याय किया हो- लाभ-पूजा-ख्याति से निरपेक्ष कर्म क्षय के लिए आध्याय (पाठ) स्वाध्याय है। वह स्वाध्याय आगम में कहे काल का उल्लंघन करके किया हो तब अकाल है। **कदो वा**-स्वयं स्वतन्त्रता से किया हो। **कारिदो वा**-कराया हो- अन्य मनुष्य से कराया हो। **कीरंतो वा**-अन्य के द्वारा किया गया हो **समणुमण्णिदो वा**- अनुमोदन किया हो-अन्य करते हुए की स्वयं अनुमोदना की हो। **काले वा**-काल का परिहापन किया हो-आगम में कहे काल में अनुष्ठान नही किया हो। **परिहाविदो**-परिहापन, अनुष्ठान न किया हो अच्छाकारिदं- सहसा किया हो। बिना विचारे शीघ्र उच्चारण किया हो। मिच्छामेलिदं- अविद्यमान पदादि से मिलाकर पढ़ा हो। पद विच्छेद आदि के संबंध से रहित बोला हो। **आमेलिदं**- अन्य अवयव को अन्य अवयव के साथ जोड़कर पढ़ना आमेलित दोष है। **वामेलिदं**- विपर्यास (विपरीत) हुआ हो। उच्च ध्वनि से सहित (स्वर-अक्षरादि) को नीच ध्वनि के द्वारा या नीच ध्वनि के सहित को उच्च ध्वनि के द्वारा पढ़ना वामेलित दोष है। **अण्णहादिण्णं**-अन्यथा कहा हो। **अण्णहापडिच्छिदं**- अन्यथा ग्रहण किया हो अर्थात अन्य प्रकार से सुना हो। **आवासएसु परिहीणदाए**- आवश्यकों की परिहानि में। कर्म क्षय के लिए मोक्षार्थी के द्वारा जो अवश्य किए जाते हैं वह छह आवश्यक है। 'मनोज्ञादित्वात्कर्मणि वुभ्'-सूत्र से कर्म में वुभ् प्रत्यय जोड़ा गया है। जैसा कि कहा है-

श्लोकार्थ-''समता, स्तव, वंदन, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, व्युत्सर्ग ये छह करने योग्य आवश्यक हैं।''

इत्यभिधानात्। तेषां परिहीनतया यथाकालमननुष्ठानेन। इत्थमष्टविधस्य ज्ञानाचारस्य परिहापनं परित्यागः कृतो भवति। तद्दोषविशुद्ध्यर्थमाह-**तस्से**त्यादि॥ तस्य ज्ञानाचारपरिहापनस्य संबंधिनि॥ **दुक्कडे॥** दुष्कृते॥ **(मिच्छा॥)** मिथ्या विफलता मे भवतु॥ **दंसणायारो अट्ठविहो॥** दर्शनाचारोऽष्टप्रकारः। तद्यथा-**णिस्संकिय॥** जिनोक्ततत्त्वे इत्थमिदं स्यादन्यथा वेति शंकितं शंका। तस्मान्निष्क्रान्तो निःशंकितः॥ **णिक्कंखिय॥** इहलोके परलोके च भोगाद्याकांक्षणं कांक्षितं। तस्मान्निष्क्रांतो निःकांक्षितः॥ **णिव्विदिगिंछो॥** विचिकित्सां मुनीनामंगमलादौ विचिकित्साभावः। तस्या निष्क्रान्तो निर्विचिकित्सः॥ **अमूढदिट्ठी य॥** अमूढदृष्टिश्चतुर्थः प्रकारः। मूढो हि त्रिविधो भवति-लोकमूढः समयमूढो देवतामूढश्चेति। त्रयाणां मूढानां परित्यागो यस्यां सा अमूढा। सा दृष्टिर्दर्शनं यस्य सोऽमूढदृष्टिः॥ **उवगूहण॥** सम्यग्दृष्टिजीवानां कुतश्चिदुत्पन्नस्य दोषस्य प्रच्छादनमुपगूहनं॥ **ठिदिकरणं॥** सम्यग्दर्शनादिभ्यश्चलितचित्तस्य हेतुनयदृष्टान्तैः पुनस्तत्रैव स्थिरताकरणं स्थितिकरणं॥ **वच्छल्लं**॥ वात्सल्यं सधर्मणि स्नेहः॥ **पहावणा च[1]॥** विशिष्टस्नपनदानपूजातपःप्रभृतिभिर्जिनाशासनस्योद्योतकरणं। इत्येवं निःशंकिताद्युक्तप्रकारेण दर्शनाचारोऽष्टविधः॥ **परिहाविदो॥** परिहापितः परित्यक्तः। कयेत्याह-**संकाए** इत्यादि। जिनोक्तं जीवादितत्त्वमित्थं स्याद्वा न वेति शंकया दर्शनाचारः परिहापितः। तथा-**कंखाए॥** एतस्य व्रतधर्मादेर्माहात्म्यान्मेदं फलं संपद्यतामिति भाविभोगाद्याकांक्षया॥ **विदिगिंछाए॥** विचिकित्सया। सा हि द्विविधा द्रव्यभावभेदात्। तत्र मुनीनामंगमलादौ जुगुप्सा विलिप्साभावो द्रव्यविचिकित्सा॥ **अण्णदिट्ठिपसंसणाए॥** अन्येषां मिथ्यादृष्टीनां दृष्टयो मतानि। तेषां प्रशंसनया॥ **परपासंडपसंसणाए॥** परेषां मिथ्यादृष्टीनां पाषंडानि लिंगानि, तेषां प्रशंसनया॥ **अणायदणसेवणाए॥** अनायतनानि षट्। मिथ्यादर्शनादीनि त्रीणि, त्रयश्च तद्वंतः पुरुषाः। तेषां सेवनयाऽऽराधनया॥ **अवच्छल्लदाए॥** अवात्सल्यतया सधर्मणि स्नेहाकरणेन॥ **अप्पहावणदाए॥** अप्रभावनतया स्नपनादिभिर्जिनशासनानुद्योतनेन॥ **तस्स मिच्छा मे दुक्कडे॥** तस्य दर्शनाचारपरिहापनस्य संबंधिनि॥ **दुक्कडे॥** दुष्कृते॥ **(मिच्छा)॥** मिथ्या विफलता मे भवतु॥ **तवायारो** इत्यादि। तपसामाचरणं तपआचारो द्वादशविधो द्वादशप्रकारः। तानेव द्वादश प्रकारान्॥ **अभंतरो** इत्यादिना दर्शयति॥ **(अभंतरो)॥** अभ्यंतरोऽन्तरंगः, परेषामप्रत्यक्षत्वात्॥ **छव्विहो॥** षट्प्रकारः॥ **बाहिरो॥** बहिर्भवो बाह्यः, सकलजनप्रत्यक्षत्वात्॥ **छव्विहो॥** षट्प्रकारः। तत्र बाह्यं तावत् **तत्थे**त्यादिना व्याचष्टे॥ **तत्थ॥** तत्र

उन आवश्यकों की परिहीनता से अर्थात् यथा समय अनुष्ठान नहीं करने से। इस प्रकार आठ प्रकार के ज्ञानाचार का परिहापन, परित्याग किया हुआ हो। उन दोषों की विशुद्धि के लिए कहते हैं- **तस्से**त्यादि-उस ज्ञानाचार के परिहापन सम्बन्धि-**दुक्कडे**-दुष्कृत-**मिच्छा**-मेरा मिथ्या या विफल होवे। **दंसणायारो अट्ठविहो**-दर्शनाचार आठ प्रकार का है। वह इस प्रकार का है- **णिस्संकिय**-निःशंकित-जिन भगवान के कहे हुए तत्व में यह इस प्रकार है अथवा अन्यथा है, इस प्रकार शंकित रहना शंका है। उस शंका से जो रहित हुआ है वह निःशंकित है। **णिक्कंखिय-निष्कांक्षित**- इहलोक और परलोक में भोग आदि की आकांक्षा कांक्षित है। उस कांक्षित से जो रहित हुआ वह निष्कांक्षित है। **णिव्विदिगछो**-निर्विचिकित्सा-मुनियों के शरीर के मल आदि में घृणा का भाव विचिकित्सा है। उससे जो रहित है वह निर्विचिकत्स है। **अमूढदिठ्टी य**- अमूढ़दृष्टि चौथा प्रकार है। मूढ़ तीन प्रकार के हैं- लोक मूढ़, समय मूढ़ और देवता मूढ़। जिसमें तीनों मूढ़ताओं का परित्याग होता है वह अमूढ़ है। वही अमूढ़ दृष्टि जिसकी है वह अमूढ़दृष्टि है। **उवगूहण**-उपगूहन-सम्यग्दृष्टिजीवों के किसी प्रकार से उत्पन्न दोष का प्रच्छादन करना उपगूहन है। **ठिदिकरणं**-स्थितिकरण-सम्यग्दर्शन आदि से चलितचित्त की हेतु, नय और दृष्टान्तों के द्वारा पुनः उसी भाव में ही स्थिरता करना स्थितिकरण है। **वच्छल्लं**-सधर्मी में स्नेह वात्सल्य है। **पहावणा च**- विशिष्ट अभिषेक, दान, पूजा, तप आदि के द्वारा जिन शासन का उद्योत करना या चमकाना प्रभावना है। इस प्रकार निःशंकित आदि के कहे प्रकार से दर्शनाचार आठ प्रकार का है। **परिहाविदो**-परिहापित, छोड़ा हुआ हो। किसके द्वारा यह कहते हैं- **संकाए** इत्यादि। जिन भगवान के द्वारा कहे हुए जीव आदि तत्त्व इस प्रकार हैं अथवा नहीं हैं, इस प्रकार की शंका से दर्शनाचार छोड़ा हुआ हो। तथा **कंखाए**-कांक्षा से। इन व्रत, धर्म आदि के माहात्म्य से मुझको यह फल प्राप्त हो, इस प्रकार भविष्यकालीन भोग आदि की आकांक्षा से छोड़ा हो। **विदिगिंछाए**- विचिकित्सा से। वह विचिकित्सा द्रव्य व भाव के भेद से दो प्रकार की हैं। उसमें मुनियों के अंग, मल आदि में घृणा द्रव्य विचिकित्सा है। **अण्णदिट्ठिपसंसणाए**- अन्य मिथ्यादृष्टियों की दृष्टि, या मत है उनकी प्रशंसा से परिहापना की हो। **परपासंडपसंसणाए**-दूसरे मिथ्यादृष्टि, पाखंडी लिंगों की प्रशंसा से परिहापना की हो। **अणायदणसेवणाए**-अनायतन छह हैं। जो कि मिथ्यादर्शन आदि तीन और उन गुण वाले तीन पुरूष इस तरह छह हैं। उनके सेवन या आराधना से परिहापना की हो **अवच्छलदाए**-अवात्सल्यता से- सधर्मी में स्नेह नहीं करने से परिहापना की हो। **अप्पहावणदाए**-अप्रभावनता से-स्नपन (अभिषेक) आदि के द्वारा जिन शासन का उद्योत नहीं करने से परिहापना की हो। तस्स मिच्छा मे दुक्कडे। उन दर्शनाचार के परिहापन सम्बन्धी। दुक्कडे-दुष्कृत में। **मिच्छा**-मेरी विफलता हो। तवायारो इत्यादि। तपों का आचरण तप आचार है जो बारह प्रकार का है। **अभंतरो**-उन बारह प्रकारों को दिखाते है-**अभंतरो**-अभ्यन्तर, अन्तरंग तप है क्योंकि दूसरों को प्रत्यक्ष नहीं है। **छव्विहो**-छह प्रकार का है। **बाहिरो**-बाहर होने वाला बाह्य है क्योंकि वह सकलजनों को प्रत्यक्ष है। **छव्विहो**-वह छह प्रकार का है। उनमें बाह्यतप को पहले कहते हैं। **तत्थ**-उन दोनों में **बाहिरो**-बाह्य तप आचार है। **अणसणं**-अशन भोजन है। उस भोजन का अभाव अनशन या उपवास है। **ओमोदरियं**-

तयोर्द्वयोर्मध्ये ॥ **बाहिरो ॥** बाह्यस्तपआचारः ॥ **अणसणं ॥** अशनं भोजनं। तदभावोऽनशनमुपवासः ॥ **ओमोदरियं ॥** अवमोदर्यमर्धभुक्त्यादि ॥ **वित्तिपरिसंखा ॥** वृत्तिपरिसंख्यानं गृहग्रासादिकं परिगण्य वृत्तिः ॥ **रसपरिच्चाओ ॥** रसपरित्यागो घृतादिरसपरित्यागः ॥ **सरीरपरिच्चाओ ॥** आतपनादिकायक्लेशः ॥ **विवित्तसयणासणं च ॥** विविक्ते स्त्रीपशुषंढवर्जिते प्रदेशे शय्यासनमिति। एवमुक्तषट्प्रकारो बाह्यस्तपआचारः। अथ 'अभ्यंतर' इत्याह तत्थेत्यादि। तत्र तयोर्द्वयोर्मध्येऽभ्यन्तरस्तपआचारः **पायच्छित्तं ॥** आगमोक्तविधिना दोषनिर्हरणं प्रायश्चित्तं ॥ तन्नवविधमालोचनप्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्गतपश्छेदपरिहारोपस्थापनाभेदात् ॥ **विणओ ॥** विनयो ॥ गुणाधिकेषु नीचैवृत्तिः। स चतुर्विधो ज्ञानदर्शनचारित्रोपचारभेदात् ॥ **वेज्जा-(आ) वच्चं ॥** वैयावृत्त्यं गुणवत्सु दुःखोपनिपाते निरवद्येन विधिना कायचेष्टया द्रव्यांतरेण वा तदपनयनं। तद्शविधमाचार्योपाध्यायतपस्विशैक्षग्लानगणकुलसंघसाधुमनोज्ञविषयभेदात्। **सज्झाओ ॥** शोभन आध्यायः पाठः स्वाध्यायः स पञ्चविधो, वाचनानुपृच्छनानुप्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशभेदात् **झाणं ॥** ध्यानं चिन्तानिरोधलक्षणं। तच्चतुर्विधमार्तरौद्रधर्म्यशुक्लभेदात्। तत्र धर्म्यशुक्लरूपं ध्यानमिह गृह्यते, नार्तरौद्ररूपं, तस्य दुर्गतिहेतुत्वेन तपोरूपतानुपपत्तेः ॥ **विउसग्गो चेदि ॥** व्युत्सर्जनं। व्युत्सर्गश्च बाह्याभ्यंतरपरिग्रहत्याग इति। एवमुक्तप्रकारेणाभ्यंतरबाह्यं समुदितं ॥ **बारहविहं ॥** द्वादशप्रकारं ॥ **तवोकम्मं ॥** तपआचारः ॥ **ण कदं ॥** न कृतं नानुष्ठितं। मया किंविशिष्टेन ? **णिसण्णेण ॥** परिषहादिभिः पीडितेन। किंतु ॥ **पडिक्कतं ॥** निषण्णेन मया प्रतिक्रांतं परित्यक्तं ॥ **तस्स मिच्छा मे दुक्कडे ॥** तस्य द्वादशविधतप-आचारपरिहापनस्य संबंधिनि दुष्कृते मिथ्या विफलता मे भवतु ॥ **वीरियाचारो** इत्यादि। वीर्याचारः पंचविधः परिहापितः। वीर्यस्य ह्याचारस्तपः-करणे सामर्थ्यप्रकाशनं। स पंचप्रकारो भवति। तानेव पंचप्रकारान्दर्शयन्नाह-**वीरेत्यादि**। वीर्यस्य पराक्रम उत्साहो वीर्यपराक्रमः। वरचासौ वीर्यपराक्रमश्च वरवीर्यपराक्रमः। तेन तपः कर्तव्यं। तथा ॥ **जहुत्तमाणेण ॥** यथोक्तमानेनागमोक्तमानानतिक्रमेण। आगमे हि सिक्थग्रासचांद्रायणादि-विधिर्येनैव मानेन कथितः कायोत्सर्गादिविधिश्च दोषानुरूपतो येनैव नव षट्त्रिंशदादिवारपंचनमस्कारजाप्यप्रकारेण प्रतिपादितस्तथैव तद्रूपं तपः कर्तव्यं। **तथा बलेन** कालक्षेत्राहारलक्षणेन वीर्येण सहजनिजसामर्थ्येन ॥ **परक्कमेण ॥** पर उत्कृष्टो य आगमे प्रतिपादितः क्रमोऽनुपरिपाटी 'मूलगुणाननुतिष्ठतोत्तरगुणा अनुष्ठातव्या' इति। उक्तपंचप्रकारं वीर्याचारं प्रकटयता यदा तपः क्रियते तदा वीर्याचारः पंचप्रकारोऽनुष्ठितो भवति। यदा

आधा भोजन आदि करना अवमोदर्य है। **वित्तिपरिसंखा**-वृत्तिपरिसंख्यान-घर, ग्रास आदि की परिगणना करके चर्या करना वृत्तिपरिसंख्यान तप है। **रसपरिच्चाओ**-घी आदि रस का परित्याग करना रसपरित्याग है। **सरीरपरिच्चाओ**- आतापन आदि से काय क्लेश करना शरीर परित्याग है। **विवित्तसयणासणं च**- स्त्री, पशु , नपुंसक से रहित एकान्त स्थान में शयन-आसन विविक्त शय्यासन है। यह कहा गया छह प्रकार का बाह्य तप आचार है। तत्थ इत्यादि अब अभ्यन्तर तप आचार कहते हैं। **पायच्छित्तं**-आगमोक्त विधि से दोष को दूर करना प्रायश्चित है। वह नौ प्रकार का है। आलोचना, प्रतिक्रमण, तदुभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, परिहार और उपस्थापना ये नौ भेद है। **विणओ**-गुणाधिकों में निम्नवृत्ति विनय है। वह **विनय**-ज्ञान, दर्शन, चारित्र और उपचार के भेद चार प्रकार की है। **वेज्जावच्चं**-गुणवानों पर दुःख आ जाने पर निर्दोष (अहिंसक) विधि से काय की चेष्टा से या अन्य द्रव्य के माध्यम से उस दुःख को दूर करना वैयावृत्य है। आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष, ग्लान, गण, कुल, संघ, साधु, मनोज्ञ के विषय भेद से वह वैयावृत्य दश प्रकार का है। **सज्झाओ**-शोभन आध्याय या पाठ ही स्वाध्याय है। वह पांच प्रकार का है- वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और धर्मोपदेश। **झाणं**- ध्यान-जो चिंता के निरोध लक्षण वाला है। वह ध्यान आर्त, रौद्र, धर्म्य और शुक्ल ध्यान के भेद से चार प्रकार का है। उसमें धर्म्य रूप और शुक्ल रूप ध्यान यहां ग्रहण किया है। आर्त, रौद्र रूप नहीं क्योंकि वह दुर्गति का हेतु है। उन आर्त, रौद्र ध्यान में तप रूपता की सिद्धि नहीं है। **विउसग्गो चेदि**- व्युत्सर्जन-बाह्य और अभ्यन्तर परिग्रह का त्याग व्युत्सर्ग है। इस प्रकार उक्त प्रकार से अभ्यन्तर और बाह्य तप को कहा है। **बारसविहं**-बारह प्रकार का तवोकम्मं-तप आचार है। **ण कदं**-न किया हो, अनुष्ठान नहीं किया हो। मैं किस कारण से नहीं किया? **णिसण्णेण**-परीषह आदि से पीड़ित होने से। किन्तु **पडिक्कतं**-मैंने उस तपआचार को छोड़ दिया हो। **तस्स मिच्छा मे दुक्कडे**-उस बारह प्रकार के तप आचार के परिहापन संबंधी दुष्कृत में मेरी विफलता होवे। **वीरियाचारो** इत्यादि। वीर्याचार पांच प्रकार का है उसमें हानि की हो। तप करने में अपनी सामर्थ्य को दिखाना ही वीर्य का आचार है। वह पांच प्रकार का है। उन्हीं पांच प्रकारों को दिखाते हुए कहते हैं। **वीरे** इत्यादि-1-वीर्य का पराक्रम या उत्साह वीर्य पराक्रम है। जो श्रेष्ठ वीर्य पराक्रम है वह वरवीर्य पराक्रम है। इस पराक्रम से तप करना चाहिए। तथा **जहुत्तमाणेण**- 2-यथोक्त मान से अर्थात् आगम में कहे मान (प्रमाण) का नहीं अतिक्रम करने से। आगम में सिक्थग्रास, चांद्रायण आदि की विधि जिस प्रमाण से कही है तथा दोष के अनुरूप कायोत्सर्ग आदि की विधि जिस रूप से कही है उसी प्रकार से उस रूप तप करना चाहिए। जैसे कि नौ बार, छत्तीस बार, पंच नमस्कार का जाप अनेक प्रकार से कहा है तथा 3-**बलेण**-बल से। 4-वीर्येण-वीये से काल, क्षेत्र, आहार लक्षण वाले वीर्य से अर्थात् सहजनिज सामर्थ्य से।

परक्कमेण-5-पराक्रम से-पर, उत्कृष्ट आगम में जो क्रम या परिपाटी कही है उससे। 'मूल गुणों का अनुष्ठान करने वाले को उत्तर

तु॥ **तवोकम्मं ण कदं**॥ तेन प्रकारेण तपोनुष्ठानं न कृतं। किंविशिष्टेन ?॥ **(णिसण्णेण)॥** निषण्णेन परीषहादिभिः पीडितेन। किंतु॥ **पडिक्कंतं॥** तथाभूतेन तपः-कर्म प्रतिक्रांतं त्यक्तं। तदा॥ **णिगूहियं॥** तपः करणे सदपि वीर्यं निगूहितमप्रकटितमिति पंचविधोऽपि वीर्याचारः परिहापितो भवति। अतः॥ **तस्स मिच्छा मे दुक्कडे॥** तस्य तत्परिहापनस्य संबंधिनि दुष्कृते मिथ्या विफलता मे भवतु॥

चरित्तायारो इत्यादि॥ **तेरसविहो॥** त्रयोदशप्रकारो यश्चारित्राचारः स परिहापितोऽननुष्ठितः। कथमस्य त्रयोदशप्रकारतेत्याह-**पंचे**त्यादि॥ पंच महाव्रतानि, पंच समितयः, तिस्रो गुप्तयश्चेति। एतत् त्रितयं समुदितं त्रयोदशविधं चारित्रमित्युच्यते। तत्र पंचमहाव्रतानि तावद्व्याचिख्यासु**स्तत्थे**त्याद्याह॥ **तत्थ॥** तत्र तेषु पंचमहाव्रतेषु मध्ये॥ **पढमं महव्वदं॥** प्रथमं महाव्रतं॥ **पाणादिवादादो वेरमणं॥** प्राणानां दशप्रकाराणां।

पंच वि इंदियपाणा मणवचिकायेण तिण्णि बलपाणा।
आणप्पाणप्पाणा आउगपाणेण होंति दस पाणा॥

इत्येतल्लक्षणलक्षितानामतिपातो वियोगकरणं हिंसनं। तस्मात्॥ **वेरमणं॥** विरमणं व्यावृत्तिः। विरमणमेव वैरमणं। प्रज्ञादित्वात्स्वार्थिकोऽण्। प्रथमं महाव्रतमुच्यते। तत्र येषां जीवानां ते दशप्रकाराः प्राणा भवंति ते एकेंद्रियादिभेदात्पंचप्रकारा भवन्ति। तत्रैकेंद्रियजीवप्रकारं तावत्प्ररूपयन्नाह- **पुढवीकाइया** इत्यादि। द्रव्यभावरूपैर्दशभिः प्राणैर्जीवंति जीविष्यन्ति जीवितवंतो वा जीवाः। त एकेंद्रियाः पृथिव्यादिकायिका भवंति। पृथ्वी कायो येषामस्ति ते पृथ्वीकायिकाः, पृथ्वी कायत्वेन गृहीतवन्तः। त असंख्यातासंख्याता असंख्यातासंख्यातमानावच्छिन्नाः। एवमप्कायिका जीवा असंख्यातासंख्याताः। तेजःकायिका जीवा असंख्यातासंख्याताः। वायुकायिका जीवा असंख्यातासंख्याताः। वनस्पतिकायिकास्तु जीवा अनंतानंताः। ते च हरिताः बीजा अंकुराश्च भवंति। हरितादिभेदभिन्नास्ते भवंतीत्यर्थः। ते च छिन्नाः खण्डितशरीराः, भिन्ना विदारितशरीराः॥ **तेसिं उद्दावणं॥** तेषां पृथ्वीकायिकादिजीवाना**मुद्दावणं** प्राणवियोजनं मारणं॥ **परिदावणं॥** संतापकरणं॥ **विराहणं॥** पीडनमनेकप्रकारं कदर्थनं॥ **उवघादो॥** देशतः साकल्येन वा प्राणिनां प्राणवियोगकरणमुपघातः॥ **कदो वा॥** स स्वयं साक्षात्कृतः॥ **कारिदो वा॥** अन्यैः कृत्वा कारितः॥ **कीरंतो वा॥** क्रियमाणो वा स्वयमन्यैरुपघातो मया॥ **समणुमण्णिदो॥** समनुमतस्तत्र मनोवचनकायैरनुमतिः कृता॥ **तस्स मिच्छा मे दुक्कडे॥** तस्य पृथ्वीकायिकाद्येकेंद्रियजीवोपघातस्य संबंधिनि दुष्कृते मिथ्या विफलता मे भवतु॥

गुणों का अनुष्ठान करना चाहिए।' कहे हुए पांच प्रकार के वीर्याचार को प्रकट करने वाला जब तप करता है तब वीर्याचार का पांच प्रकार का अनुष्ठान होता है। किन्तु जब तवोकम्मं ण कदं उसी प्रकार से तप अनुष्ठान नहीं किया हो। किस विशेषता से? (**णिसण्णेण पडिक्कंतं**) परीषह आदि से पीडित होने से पडिक्कंतं उस प्रकार के तप कर्म को छोड़ा हो। तब

णिगूहियं-तप करने में वीर्य होते हुए भी छिपाया हो, प्रकट नहीं किया हो, इस प्रकार पांच प्रकार के वीर्याचार में हानि की हो। अतः **तस्स मिच्छा मे दुक्कड़े**-उस परिहापन सम्बन्धी दुष्कृत में मेरी विफलता होवे।

चरित्तायारो इत्यादि- **तेरसविहो**-तेरह प्रकार का जो चारित्राचार है उसका अनुष्ठान नहीं किया हो। चारित्र के तेरह भेद कैसे हैं ? यह कहते हैं- **पंचेत्यादि**-पाँच महाव्रत हैं, पाँच समितियाँ हैं, तीन गुप्तियाँ हैं। यह तीनों मिलकर तेरह प्रकार का चारित्र कहा जाता है। उसमें सर्व प्रथम पाँच महाव्रतों की कहने की इच्छा करते हैं- **तत्थ**-उन पाँच महाव्रतों में **पढमं महव्वदं**-प्रथम महाव्रत **पाणादिवादादो वेरमणं**- दस प्रकार के प्राणों का विरमण है। ''पांच इन्द्रियप्राण, मन, वचन, काय के भेद से तीन बल प्राण, आनापान प्राण, आयु प्राण इस प्रकार दस प्राण हैं।' इन दस प्राणों का अतिपात करना, वियोग करना हिंसा है। उस हिंसा से **वेरमणं**-दूर होना (विरक्त होना) प्रथम महाव्रत कहा जाता है। उसमें जिन जीवों के वे दस प्रकार के प्राण होते हैं वे एकेन्द्रिय आदि के भेद से पांच प्रकार के हैं। उनमें एकेन्द्रिय जीव के भेदों की प्ररूपणा करते हुए कहते हैं- **पुढवीकाइया**-द्रव्य, भाव रूप दस प्राणों से जो जीते हैं, जिएंगे या जीए हैं वे एकेन्द्रिय आदि जीव पृथ्वी कायिक आदि होते हैं। पृथ्वी जिनकी काय है वे पृथ्वीकायिक हैं। पृथ्वी को कायपने से वे ग्रहण कर लेते हैं। वे जीव असंख्यातासंख्यात होते हैं। इसी प्रकार जलकायिक जीव भी असंख्यातासंख्यात हैं। अग्निकायिक जीव भी असंख्यातासंख्यात हैं। वायुकायिक जीव भी असंख्यातासंख्यात हैं। वनस्पतिकायिक जीव अनंतानंत होते हैं। वे हरित, बीज और अंकुर होते हैं। हरित आदि के भेद वाले वनस्पतिकायिक जीव हैं, यह अर्थ है। वे छिन्न हुए हों अर्थात् उनका शरीर खंडित हुआ हो, वे भिन्न हुए हों अर्थात् उनका शरीर अलग हो गया हो। **तेसिं उद्दावणं**-उन पृथ्वीकायिक आदि जीवों के प्राणों का वियोग हुआ हो, मारा हो। **परिदावणं**-संताप किया हो **विराहणं**-अनेक प्रकार से उन्हें पीड़ा दी हो। **उवघादो**-एक देश या पूर्ण रूप से प्राणियों का वियोग करना उपघात है। वह उत्तापन आदि। **कदो वा**-स्वयं साक्षात् किया हो **कारिदो वा**-अन्य के द्वारा करवाया हो **कीरंतो वा**-अथवा किसी दूसरे के द्वारा स्वयं किए उपघात की मेरे द्वारा **समणुमण्णिदो**-मन, वचन, काय से अनुमति की गई हो। **तस्स मिच्छा मे दुक्कडे**-उन पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रिय जीवों के उपघात सम्बन्धी दुष्कृत मेरे लिए मिथ्या हो, विफल होवे।

इदानीं द्वींद्रियजीवप्रकारं प्ररूप्य तदुपघाताद्व्यावृत्तिं प्ररूपयन्नाह-**वेइंदिया** इत्यादि। द्वे स्पर्शनरसनलक्षणे इंद्रिये येषां ते द्वींद्रिया जीवा असंख्यातासंख्याताः। किं प्रकारास्त इति तत्प्रकारान्प्ररूपयन्नाह-**कुक्खिकिमीत्यादि** कुक्षौ कृमयः सिंविंपकाः[1] (?)। उपलक्षणं चैतद्व्रणादिकृमीणां। शंखः प्रसिद्धः॥ **खुल्लय॥** क्षुल्लकाः प्रसिद्धा एव बाला यैः कपर्दकैरिव क्रीडंते॥ **वराडय॥** वराटकाः कपर्दकाः॥ **अक्खमहांतो[2]॥** कपर्दकाः॥ **रिट्ठय॥** बालशरीरसमुद्भवास्तंतुसमाना जीवविशेषाः॥ **गंडवालय[3]॥** सुप्रसिद्धं॥ **संबूय॥** लघुशंखः॥ **सिप्पि॥** सुप्रसिद्धा॥ **पुलवि॥** जलौकाः॥ **आइया॥** आदिशब्देनैवमादिका अन्येपि ग्राह्याः॥ **तेसिं॥** तेषां कुक्षिकृमिप्रभृतीनां॥ **उद्दावण**मित्यादि व्याख्यातार्थं॥

अधुना त्रींद्रियजीवप्रकारं प्रतिपाद्य तदुपघाताद्व्यावृतिं प्रतिपादयन्नाह-**तेइंदिया** इत्यादि। त्रीणि स्पर्शनरसनघ्राणलक्षणानींद्रियाणि येषां ते त्रींद्रिया जीवा असंख्यातासंख्याताः। किंप्रकारास्त इत्याह-**कुंथु** इत्यादि। कुंथुः सूक्ष्मो जंतुः, पिपीलिका कीटिका मत्कुणाः यूकाः उद्देहिकाः वृश्चिकाः गोंभिकाः इन्द्रगोपकाश्च प्रसिद्धा एव। आदिशब्दादेवंप्रकारा अन्ये पि ग्राह्याः। **तेसि**मित्यादि व्याख्यातार्थं।

इदानीं चतुरिंद्रियजीवप्रकारं प्रदर्श्य तदुपघाताद् व्यावृत्तिं प्रदर्शयन्नाह-**चउरिंदिया॥** इत्यादि। चत्वारि स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुर्लक्षणानिन्द्रियाणि येषां ते चतुरिंद्रिया जीवा असंख्यातासंख्याताः। किंप्रकारास्त इत्याह-**दंसी**त्याह (**दंस** इत्यादि)॥ दंशाः मशकाः मक्षिकाः पतंगाश्च सुप्रसिद्धाः। कीटशब्देन गोमयकीटरक्तकीटार्ककीटादयश्चतुरिंद्रियविशेषा गृह्यंते॥ **महुयर॥** मधुमक्षिका भ्रमराः। गोमक्षिकाश्च सुप्रसिद्धा एव। आदिशब्देनैवंप्रकारा अन्ये पि ग्राह्याः॥ **तेसि**मित्यादि व्याख्यातार्थं।

अधुना पंचेंद्रियजीवप्रकारं प्ररूप्य तदुपघाताद्विरतिं प्ररूपयन्नाह-**पंचें-(चिं) दिया** इत्यादि। पंच स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रलक्षणानींद्रियाणि येषां ते पंचेंद्रिया जीवा असंख्यातासंख्याताः। किंप्रकारास्त इत्याह-**अंडाइया** इत्यादि। नखत्वक्सदृशमुपात्तकाठिन्यं शुक्रशोणितपरिवरणं परिमंडलमंडं। तत्र कर्मवशादुत्पत्त्यर्थमाय आगमनं। स येषामस्ति त अंडायिकाः॥ **पोदाइया॥** पोतो मार्जारादिगर्भविशेषः। तत्र कर्मवशादुत्पत्त्यर्थमायः। स येषामस्ति ते पोतायिकाः॥ **जराइया॥** जालवत्प्राणिपरिवरणं विततमांसशोणितं जरायुः। तत्र

---

1. 'संविपाका' -इति झा-प्रतौ पाठः।
2. 'महात्त' -इति झा-प्रतौ पाठः।
3. 'गंडू' -इति झा-प्रतौ पाठः।

अब दो इन्द्रिय जीवों के भेद की प्ररूपणा करके उसके उपघात से दूर होने की प्ररूपणा करते हुए कहते हैं- **बेइंदिया** आदि। स्पर्शन, रसना लक्षण वाली दो इन्द्रियां जिनकी हैं वे दो इन्द्रिय जीव असंख्यातासंख्यात हैं। उनके भेदों की प्ररूपणा करते हुए कहते हैं- **कुक्खिकिमीत्यादि**- उदर में जो कृमि, **सिंविपक** है उनको उपलक्षण बनाकर व्रण आदि के कृमियों को भी ग्रहण करना। शंख प्रसिद्ध है। **खुल्लय**-क्षुल्लक प्रसिद्ध ही हैं। जिनसे बालक कर्पदक (कौड़ी) की तरह खेलते हैं। **वराडय**-वराटक कर्पदक हैं। **अक्खमहांतो**-कर्पदक। **रिठ्टय**-छोटे शरीर से उत्पन्न होने वाले तंतु समान जीव विशेष रिष्टक हैं। **गंडवालय**-गंडवाल सुप्रसिद्ध है। **संबूय**-छोटे शंख हैं। **सिप्पि**- सीप सुप्रसिद्ध हैं। **पुलवि**-जलौका है। **आइया**-आदि शब्द से इसी प्रकार के अन्य जीवों का भी ग्रहण करना है। **तेसिं**-उन कुक्षि, कृमि आदि। **जीवों का उद्दावणं**- उत्तापन आदि किया हो। उत्तापन आदि का अर्थ कह चुके हैं।

अब तीन इन्द्रिय जीव के भेदों को कहकर उनके उपघात से दूर होने के लिए कहते हैं। **तेइंदिया**-इत्यादि। स्पर्शन, रसन, घ्राण लक्षण वाली तीन इन्द्रियां जिनकी हैं वे तीन इन्द्रिय जीव हैं जो असंख्यातासंख्यात हैं। वे किस प्रकार के हैं? कुंथु इत्यादि-कुंथु सूक्ष्मजन्तु हैं। पिपीलिका (चीटी), कीड़ी, खटमल, जूँ, उद्देही, बिच्छू, गोंभिका, इन्द्रगोप प्रसिद्ध ही हैं। आदि शब्द से इसी प्रकार के अन्य जीवों का भी ग्रहण करना। उनका उत्तापन आदि किया हो। उत्तापन आदि का अर्थ कह दिया है।

अब चार इन्द्रिय जीवों के भेद दिखाकर उनके उपघात से दूर होने के लिए कहते हैं- **चउरिंदिया**-इत्यादि। स्पर्शन, रसन, घ्राण और चक्षु लक्षण वाली चार इन्द्रियां जिनकी हैं वे चार इन्द्रिय जीव असंख्यातासंख्यात हैं। वे किस प्रकार के हैं ? यह कहते हैं-**दंसी**-दंस इत्यादि- दंश (डांस), मशक (मच्छर), मक्खी, पतंगे, चार इन्द्रिय जीव हैं जो प्रसिद्ध हैं। कीट शब्द से गोबर के कीड़े, लाल कीड़े, अर्क-कीट आदि चार इन्द्रिय विशेषों का ग्रहण किया जाता है। **महुयर**-मधुमक्खी, भौंरा। गोमक्खी सुप्रसिद्ध हैं। आदि शब्द से इसी प्रकार के अन्य जीवों का भी ग्रहण करना है। उनका उत्तापन आदि किया हो। उत्तापन आदि का व्याख्यान कर चुके हैं।

अब पंचेन्द्रिय जीव के भेदों की प्ररूपणा करके उनके उपघात से विरति का प्ररूपण करते हुए कहते हैं- **पंचेंदिया** इत्यादि। स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र लक्षण वाली पाँच इन्द्रियाँ जिनके होती हैं वे पंचेन्द्रिय जीव असंख्यातासंख्यात हैं। वे किस प्रकार के हैं- **अंडाइया**- नाखून की त्वचा के सदृश जिसने कठोरता प्राप्त की है तथा जो शुक्र और शोषित(रक्त) का आवरण है वह गोलाकार अंड है। इस अंडे में कर्म के कारण उत्पन्न होने के लिए आना आगमन है। वह आगमन जिनके होता है वे अंडायिक हैं। **पोदाइया**-मार्जार आदि गर्भ विशेष पोत है। उसमें कर्म के कारण उत्पन्न होने के लिए आना जिनका होता है वे पोतायिक हैं। **जराइया**-जाल के समान प्राणियों पर आवरण तथा मांस-

कर्मवशादुत्पत्त्यर्थमायः। स येषामस्ति ते जरायिकाः। ठस्येकादेशेकृते पृषोदरादीनि यथोपदिष्ट -मिति युशब्दस्यश्वे निपात्यते॥ **रसाइया॥** रसो घृतादिः सप्तधातूनां प्रथमो धातुविशेषो वा। तत्रोत्पत्त्यर्थं कर्मवशादायः। स येषामस्ति ते रसायिकाः॥ **संसेदिमा॥** संस्वेदः प्रस्वेदः। तत्र भवाः संस्वेदिमाः। 'ह्रत' इति बहुवचननिर्देशादिमः प्रत्ययो भवति॥ **सम्मुच्छिमा॥** समंततः पुद्गलानां मूर्च्छनं संघातीभवनं सम्मूर्च्छः। तत्र भवाः सम्मूर्च्छिमाः॥ **उब्भेदिमा॥** उद्भेदिमाः। उद्भेदनमुद्भेदो भूकाष्ठपाषाणादिकं भित्त्वोर्ध्व निःसरणं। स येषामस्ति त उद्भेदिमाः। **उववादिमा॥** उपेत्य गत्वोपपद्यते जायतेऽस्मिन्नत्युपपादो देवनारकाणां जन्मस्थानं। तत्र भवा उपपादिमाः। ननूपपादिमा देवनारकाः। तेषां चानपवर्त्यायुष्कत्वात्कथं हिंसा ? सत्यमेवमेतत्, किंतु यद्यपि तेषां प्राणव्यपरोपणं न संभवति, तथापि तेषामुपरि कुतश्चित्कारणात्प्रमत्तयोगस्य दुष्परिणामे सति हिंसोपपद्यत एव 'मरदु व जियदु व जीवो अयदाचारस्स णिच्चिदा हिंसा' इत्यभिधानात्। कथमन्यथा शालिसिक्थादेः सप्तमनरकगमनं? **चउरासीजोणिपमुहसदससहस्सेसु॥** चतुरशीतियोनयः प्रमुखा येषां (तानि)। तानि च तानि शतसहस्राणि च लक्षाः। तेष्वपि ये पंचेंद्रिया जीवा आगमे प्रसिद्धाः॥ **एदेसिं॥** एतेषामंडायिकादिजीवानां॥ **उवघादो** इत्यादि व्याख्यातार्थं। यदि मे प्रथमे महाव्रते प्राणातिपाताद्विरमणं कर्तव्यं तर्हि द्वितीये महाव्रते किं कर्तव्यमित्याह- **दोच्चे** इत्यादि। द्वितीयमहाव्रते॥ **मुसावादादो (वेरमणं)॥** मृषावादाद्विरमणं कर्तव्यं, तल्लक्षणात्वात्तस्य। तत्र च कुतोऽतिचारो भवतीत्याह- **से** इत्यादि॥ **से॥** तस्य मृषावादविरतिव्रतस्य संबंधी मृषावादलक्षणोऽतीचारः स्यात्॥ **कोहेण वा॥** क्रोधेन रोषेण। वाशब्दः सर्वत्र परस्परसमुच्चये॥ **माणेण॥** गर्वेण॥ **मायेण॥** मायया॥ **लोहेण॥** लोभेन परिग्रहाकांक्षया॥ **रागेण॥** प्रीत्यनुबंधेन॥ **दोसेण॥** द्वेषेणामर्षेण॥ **मोहेण॥** अज्ञानेन हिताहितविवेकविकलतया॥ **हस्सेण॥** हास्येन वर्करेण॥ **भएण॥** राजभयादिना॥ **पदोसेण॥** प्रद्वेषेणातीवामर्षवशात्प्रचुरोत्पन्नोत्कटरोपेण॥ **पमादेण॥** प्रमादोऽप्रयत्नपरत्वं, विकथादिर्वा। तेन॥ **पेम्मेण॥** स्नेहेन॥ **पिवासेण॥** पिपासया विषयातिगृद्ध्या॥ **लज्जेण॥** लज्जया॥ **गारवेण॥** गुरुत्वेन महत्त्वाभिनिवेशेन॥ **सव्वो॥ मुसावादो भासिओ** इत्यादि सुगमं॥ **तच्चे॥ महव्वदे** इत्यादि। तृतीये महाव्रते॥ **अदिण्णादाणादो वेरमणं॥** अदिण्णमदत्तं तत्स्वामिनाऽन्येन वा केनचित्। तस्यादानं ग्रहणं। तस्माद्विरमणं कर्तव्यं, तल्लक्षणत्वात्तस्य। एतस्य चातीचाराः क्व क्व भवंतीत्याह- **से** इत्यादि॥ **से**॥ तस्य तद्विरतिलक्षणतृतीयमहाव्रतस्यादत्तादानलक्षणोऽतीचारः॥ **गामे वा णयरे वा खेडे वा कव्वडे वा मडंबे वा**

रक्त से भरा हुआ जरायु है। उसमें कर्म के कारण उत्पत्ति के लिए आना जिनका होता है वे जरायिक है। 'जरायु' शब्द से जरायिक बनता है। **रसाइया**-धृत आदि रस हैं। अथवा सात धातुओं में प्रथम धातु विशेष रस है। उस रस में उत्पत्ति के लिए कर्म के कारण से आगमन जिन जीवों का होता है वे रसायिक हैं। **संसेदिमा**-संस्वेद प्रस्वेद है। उसमें उत्पन्न होने वाले जीव संस्वेदिम हैं। **सम्मुच्छिमा**-चारों ओर से पुद्गलों का इकट्ठा होना सम्मूर्च्छ है। उसमें उत्पन्न होने वाले जीव सम्मूर्च्छन जीव हैं। **उब्भेदिमा**-पृथ्वी, काठ, पत्थर आदि को भेदकर ऊपर निकल कर आना उद्भेदिम है। ऐसा जिन जीवों के होता है वे उद्भेदिम हैं। **उववादिमा**-निकट जाकर इसमें उत्पन्न होता है वह उपपाद है। जो देव, नारकियों का जन्म-स्थान है। उसमें उत्पन्न होने वाले उपपादिम हैं। **प्रश्न**-देव नारकी उपपादिम जन्म वाले हैं। उनकी अनपवर्त्य आयु होती है फिर उनकी हिंसा कैसे हो ? **उत्तर**-सत्य ही है, किन्तु यद्यपि उनका प्राण घात नहीं होता है फिर भी उनके ऊपर किसी भी कारण से प्रमत्तयोग का दुष्परिणाम होने पर हिंसा उत्पन्न हो जाती है। 'जीव चाहे जिए या मरण को प्राप्त हो अयत्नाचार के साथ हिंसा निश्चित है।' ऐसा (प्रवचनसार में) कहा है। अगर ऐसा न हो तो शालिसिक्थ आदि मत्स्य का सप्तम नरक में जाना कैसे हो ? **चउरासीजोणिपमुहसदससहस्सेसु**-चौरासी लाख योनियों में जो जीव हैं उनमें जो पंचेन्द्रिय जीव आगम में प्रसिद्ध है उन **एदेसिं**-अंडायिक आदि जीवों का उपधात इत्यादि किया हो। उपघात आदि का अर्थ पहले कहा है। यदि मुझे प्रथम महाव्रत में प्राणातिपात से विरमण (दूर रहना) करना चाहिए तो **दोच्चे**-द्वितीय महाव्रत में क्या करना चाहिए? यह कहते हैं- **मुसावादादो वेरमणं**-मृषावाद से विरति करना चाहिए क्योंकि उसका लक्षण यही है। उसमें अतिचार कैसे होता है, यह कहते हैं- से- उस मृषावाद विरति व्रत से सम्बन्धी मृषावाद लक्षण वाला अतीचार होता है। **कोहेण वा**-क्रोध से, रोष से। वा शब्द सर्वत्र परस्पर समुच्चय में है। **माणेण**- गर्व से। **मायेण**- माया से। **लोहेण**-परिग्रह की आकांक्षा रूप लोभ से। **रागेण**- प्रीति के अनुबंध से। दोसेण- द्वेष से, आमर्ष से। **मोहेण**- हित-अहित के विवेक से रहित अज्ञान के द्वारा। **हस्सेण**- हास्य से, वर्कर से। **भएण**- राजभय आदि के द्वारा। **पदोसेण**-प्रद्वेष से, अत्यधिक आमर्ष के द्वारा प्रचुरता से उत्पन्न उत्कट रोष से। **पमादेण**- अप्रयत्न परता प्रमाद है अथवा विकथा आदि प्रमाद हैं। उस प्रमाद से पेम्मेण-स्नेह से। **पिवासेण**- विषयों की अतिगृद्धि रूप पिपासा के द्वारा। **लज्जेण**-लज्जा से। **गारवेण**-महत्व के अभिनिवेश (अभिप्राय) रूप गारव से। **सव्वो मुसावादो भासिओ**- इत्यादि सुगम है। **तच्चे महव्वदे**- तृतीय महाव्रत- **अदिण्णादाणादो वेरमणं**-द्रव्य के स्वामी से अथवा अन्य किसी से नही दिया गया अदत्त है। उसका ग्रहण अदत्तादान है। उससे विरमण करना चाहिए क्योंकि उसका वही लक्षण है। इस व्रत के अतीचार कहाँ-कहाँ होते हैं ? **से**- उस अदत्तादान से विरति लक्षण वाले तृतीय महाव्रत के अदत्तादान लक्षण वाला अतीचार-**गामे वा णयरे वा खेडे वा कव्वडे वा मडंबे वा पट्टणे वा**-ग्राम आदि का लक्षण इस प्रकार है- ''ग्राम वृत्ति से घिरा होता है, बड़े-बड़े चार गोपुरों से सुशोभित शाल वाला नगर है, नदी और पर्वत से घिरा खेट है। चारों ओर पर्वत से

पट्टणे वा ॥ ग्रामादीनां चैवं लक्षणं-''ग्रामो वृत्यावृतः स्यान्नगरमुरुचतुर्गोपुरोद्भासिशालं। खेटं नद्यद्रिवेष्ट्यं (ष्टं) परिवृतमभितः कर्वटं पर्वतेन॥ ग्रामैर्युक्तं मटंबं दलितदशशतैः पत्तनं रत्नयोनि- र्द्रोणाख्यं सिंधुवेलावलयवलयितं वाहनं चाद्रिरूढं॥'' **दोणामुहे ॥** द्रोणामुखे। द्रोणाख्य इत्यर्थः॥ **घोसे ॥** गोकुले॥ **आसमे ॥** आश्रमे॥ आश्रमे तापसपल्ल्यां॥ **सहाए ॥** सभायां॥ **संवाहे** इति पाठे संवाहः संवाहनमद्रिमारूढं॥ **सण्णिवेसे**॥ राजधान्यां गोष्ठी प्रदेशे वा जनसमूहाश्रयभूते। एतेषु स्थानेषु॥ **(तणं वा)॥** तृणं वा॥ **(कट्ठं वा)॥** काष्ठं वा ॥ **वियडिं वा ॥** विकृतिं॥ **मणिं वा ॥ एवमाइयं ॥** एवमादिकमल्पमूल्यं महामूल्यं वा वस्त्वदत्तं॥ **गेण्हियं ॥** गृहीतं स्वयं॥ **गेण्हावियं ॥** अन्यहस्तेन ग्राहितं॥ **गेण्हिज्जंतं वा ॥** अन्येन गृह्यमाणं वा॥ **समणुमण्णियं ॥** स्वयं समनुमतं॥ **तस्से**त्यादि सुगमं॥ **चउत्थे महव्वदे** इत्यादि। चतुर्थे महाव्रते मैथुनाद्वैरमणं कर्तव्यं। मिथुनं युगलं। तस्य भावः कर्म वा मैथुनं। नन्वेवमतिप्रसंगः, सर्वस्य युगलकर्मणो भावस्य वा मैथुनत्वप्रसंगात्। तदयुक्तं, यतः स्त्रीपुरुषयोश्चारित्रमोहोदये सति मिथुनस्य भावः कर्म वा मैथुनमित्युच्यते। कामोद्रेकात्परस्परं रागपूर्वकोऽभिलाष इत्यर्थः। अतो नातिप्रसंगः। तस्य च मैथुनाद् व्यावृत्तिलक्षणस्य चतुर्थमहाव्रतस्य से इत्यादिनातिचारमाह-**से**॥ तस्य चतुर्थमहाव्रतस्य संबंधी किंरूपोऽतिचारः? **णवविहं बंभचरियं ण रक्खिय**मित्यादिरूपः। कथंभूतेन मया तन्न रक्षितं? **अगुत्तेण ॥** अगुप्तेनासंवृत्तमनोवाक्कायेनेत्यर्थः। पुनरपि किंविशिष्टेन? **अगुत्तिंदियेण ॥** अगुप्तेंद्रियेण। अगुप्तान्यरक्षितान्यनियंत्रितानींद्रियाणि येन तेन। कस्मिन्सत्यगुप्तेन तन्न रक्षितं? देवीप्रभृतिषु मनोज्ञामनोज्ञरूपादौ चक्षुरिंद्रियादिपरिणामे सति। तथाहि-**देविएसु वा ॥** देवीषु। वाशब्दः सर्वत्र परस्परसमुच्चये। **माणुसिएसु वा**[1]**।** मानुषीसु॥ **तिरिक्खिएसु वा**[2] **॥** तिरश्चीषु॥ **अचेदणिएसु वा**[3] **॥** अचेतनासु काष्ठस्त्रीप्रतिमासु। एतासु विषये॥ **मणुण्णामणुण्णेसु रूवेसु ॥** मनोज्ञामनोज्ञेषु रूपेषु, मनोज्ञामनोज्ञेषु शब्देषु, मनोज्ञामनोज्ञेषु गंधेषु, मनोज्ञामनोज्ञेषु रसेषु, मनोज्ञामनोज्ञेषु स्पर्शेषु। एतेषु स्त्रीरूपादिषु विषयेषु॥ **चक्खिंदियपरिणामे ॥** तद्रूपदर्शनाभिलाषश्चक्षुरिंद्रियपरिणामः। तस्मिन्॥ **सोदिंदियपरिणामे ॥** तच्छब्दश्रवणाभिलाषः

---

1. 'माणुसिसीसु' -इत्यनेन पाटेन भव्यम् ।
2. 'मिरिक्खीसु' -इत्यनेन पाटेन भव्यम् ।
3. 'अचेदणासु' -इत्यनेन पाटेन भव्यम् ।

घिरा कर्वट है। ग्रामों से सहित मटंब है। 1000 ग्रामों से युक्त पत्तन है जो रत्नों की खान है। समुद्र की वेला से घिरा हुआ द्रोण है। पर्वत पर आरूढ है वह वाहन है।'' **दोणामुहे**-द्रोणामुखे-नदी के तट पर बसे नगरों में, **घोसे**- गोकुल में, **आसमे**- आश्रम में, तापस की पल्ली में। **सहाए**-सभा में, **संवाहे**- पर्वत पर आरूढ संवाहन ही संवाह है, उसमें **सण्णिवेसे**-सन्निवेश में, राजधानी में अथवा गोष्ठी प्रदेश में जो कि जनसमूह के आश्रयभूत हैं। इन स्थानों में। **तणं वा**-तृण, **कट्ठं वा**-अथवा काष्ठ **वियडिं वा**-विकृति **मणिं वा**-मणी **एवमाइयं**-इनको आदि लेकर अल्पमूल्य अथवा महामूल्य की वस्तु बिना दी हुई **गेण्हियं**-स्वयं ग्रहण की हो **गेण्हावियं**-दूसरे के हाथ से ग्रहण कराई हो। **गेण्हज्जंतं वा**-अथवा अन्य के द्वारा ग्रहण करते हुए की **समणुमण्णियं**-स्वयं अनुमोदना की हो। **तस्से**त्यादि सुगमं-**चउत्थे महव्वदे** इत्यादि-चतुर्थ महाव्रत में मैथुन से विरति करना चाहिए। मिथुन का अर्थ युगल है। उन दो का भाव अथवा कर्म मैथुन है। **प्रश्न**- ऐसा कहने में तो अतिप्रसंग दोष आएगा क्योंकि फिर तो कोई भी जो युगल है उनका कर्म अथवा भाव मैथुन कहलाएगा। **उत्तर**- यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा मानने पर सभी युगल के कर्म या भाव ही मिथुन हो जाएंगे। स्त्री और पुरुष के बीच चारित्र मोह का उदय होने पर मिथुन का भाव अथवा कर्म मैथुन कहलाता है। काम के उद्रेक से परस्पर में रागपूर्वक जो अभिलाषा है वही मैथुन है। इसलिए कोई अतिप्रसंग नहीं है।

विशेष- यहाँ चारित्र मोहनीय कर्म का उदय मुख्य है उसके होने पर विषमवेद के साथ, समवेद के साथ या स्वयं के साथ जो चेष्टाएँ काम उद्रेक से की जाती हैं उन सभी का यहाँ ग्रहण हो जाता है। मैथुन से व्यावृत्ति (दूर होने) लक्षण वाले उस चतुर्थ महाव्रत के अतीचार को कहते हैं- उस चतुर्थ महाव्रत सम्बन्धी अतीचार किस रूप है? **णवविहं बंभचरियं ण रक्खियं**-नौ प्रकार के ब्रह्मचर्य की रक्षा न की हो, इत्यादि रूप है। मैंने कैसा होकर उसकी रक्षा न की हो? **अगुत्तेण**- गुप्ति न रखकर अर्थात् मन, वचन, काय से संवृत्त (संकुचित) न होकर। पुनः किस विशेषता से- **अगुत्तिंदियेण**-इन्द्रियों को गुप्त नहीं रखने से। जिसने इन्द्रियां गुप्त नहीं की, रक्षित नहीं की, नियंत्रण में नहीं ली उसके द्वारा। मुझ अगुप्त ने किनमें उसकी रक्षा नहीं की ? देवी आदि के विषय में मनोज्ञ और अमनोज्ञ रूप आदि में चक्षु इन्द्रिय आदि का परिणाम होने पर। जो इस प्रकार है- **देविएसु वा**-देवियों में। वा शब्द सर्वत्र परस्पर समुच्चय अर्थ में है। **माणुसिएसु वा**-मानुषियों में। **तिरिक्खएसु वा**-तिर्यंच स्त्रियों में। **अचेदणिएसु वा**-अचेतन काठ, स्त्री की प्रतिमाओं में। इनके विषय में **मणुण्णामणुण्णेसु रूवेसु**-मनोज्ञ-अमनोज्ञ रूपों में, मनोज्ञ-अमनोज्ञ शब्दों में, मनोज्ञ-अमनोज्ञ गंधो में, मनोज्ञ-अमनोज्ञ रसों में, मनोज्ञ-अमनोज्ञ स्पर्शों में। इन स्त्री रूप आदि के विषयों में। **चक्खिंखदियपरिणामे**-उन स्त्री के रूप दर्शन की अभिलाषा चक्षुइन्द्रिय का परिणाम है, उसमें, **सोदिंदियपरिणामे**-उन स्त्रियों के शब्द सुनने की अभिलाषा श्रोत्र इन्द्रिय का परिणाम है, उसमें **घाणिंदियपरिणामे**-स्त्री की गंध को सूंघने की अभिलाषा घ्राणइन्द्रिय

श्रोत्रेंद्रियपरिणामः। तस्मिन्। एवं-**घाणिंदियपरिणामे॥** स्त्रीगंधघ्राणाभिलाषो घ्राणेंद्रियपरिणामः। तस्मिन्। **जिभिंदियपरिणामे॥** स्त्रीवदनरसास्वादनाभिलाषो जिह्वेंद्रियपरिणामः। तस्मिन्॥ **फासिंदियपरिणामे॥** स्त्रीस्पर्शनाभिलाषः स्पर्शनेंद्रियपरिणामः। तस्मिन्। स्पर्शशब्देन चात्र स्पर्शनेंद्रियं गृह्यते,न पुनस्तद्विषयः। स्पृश्यतेऽनेनेति स्पर्श इति, करणे घञो विधानात्। एवं प्रतिनियतचक्षुरादींद्रियपरिणाम आत्मनो नवविधब्रह्मचर्यरक्षणाभावं प्रतिपाद्य समस्तरूपादिगोचरे नोइंद्रियपरिणामे तत्प्रतिपादयन्नाह-**णोइंदियपरिणामे॥** ईषदिंद्रियं नोइंद्रियं। यथैव हि स्पर्शनादींद्रियाणि प्रतिनियतस्पर्शनादिविषयाणि, न तथा मनः, तस्यानियतार्थगोचरचारितया विषयं प्रति नियमाभावात्। अतोऽगुप्तादिविशेषणविशिष्टेन मया चक्षुरादींद्रिय-परिणामे नोइंद्रियपरिणामे च सति स्वयं नवविधं ब्रह्मचर्यं न रक्षितं। वचनमनःप्रभृतिभिरब्रह्मसेवाऽ पि कृता॥ **ण रक्खावियं॥** अन्येन वा नरेण तद्रक्षा न कारिता॥ **ण रक्खिज्जंतं॥** अन्येनारक्ष्यमाणं॥ **समणुमण्णियं॥** स्वयं समनुमतं। तत्रानुमतिः कृता॥ **तस्से**त्यादि॥ तस्य नवविधब्रह्मचर्यारक्षणस्य संबंधिनि दुष्कृते मे मिथ्या विफलता भवतु॥ **अहावरे** इत्यादि॥ अथ चतुःप्रकारप्रतिपादितमहाव्रतेभ्यः॥ **अवरे॥** अपरस्मिन्पंचमे महाव्रते परिग्रहाद्विरमणं कर्तव्यं। स च परिग्रहो द्विप्रकारो भवतीत्याह-**सो वी**त्यादि। यतः परिग्रहाद्विरमणं कर्तव्यं, सोऽपि परिग्रहो॥ **दुविहो॥** द्विविधोऽभ्यंतरो बाह्यश्चेति॥ **तत्थ॥** तत्र तयोर्द्वयोः परिग्रहयोर्मध्येऽभ्यंतरपरिग्रहो ज्ञानावरणाद्यष्टकर्मणीत्याह-**णाणावरणीय**मित्यादि सुगमं। **अट्ठविहो॥** मूलप्रकृत्यपेक्षयाऽष्टप्रकारः, उत्तरोत्तरप्रकृत्यपेक्षया तु तस्यानेकप्रकारत्वस्याऽपि संभवात्। नन्वागमे मिथ्यात्वादयोऽभ्यंतरपरिग्रहत्वेन प्रसिद्धः-

मिच्छत्तवेदरागा हासादिमया य होंति छद्दोसा।
चत्तारि तह कसाया चोद्दस अभंतरा गंथा॥

इत्यभिधानात्। अतो ज्ञानावरणादीनामभ्यंतरपरिग्रहत्वनिरूपणे तेषामसंग्रहः स्यात्, तदयुक्तं, तेषां भावकर्मरूपतया ज्ञानावरणादिग्रहणेनैव ग्रहणात्। एवमभ्यंतरं परिग्रहं प्रतिपाद्येदानीं बाह्यं तं प्रतिपादयन्नाह-**तत्थे**त्यादि॥ **तत्थ॥** तत्र तयोर्द्वयोः परिग्रहयोर्मध्ये॥ **बाहिरो॥** बहिर्भवो बाह्यः परिग्रहः॥ **उवयरणं॥** उपकरणं द्विविधं-ज्ञानोपकरणं संयमोपकरणं च। तत्र ज्ञानोपकरणं पुस्तकादि, संयमोपकरणं च पिच्छिकादि॥ **भंडं॥** औषधतैलादिद्रव्यभाजनं॥ **फलह॥** फलकं पादविहीनं शयनादिकाष्टं॥ **पीढ॥** पीठमुपवेशनादिविष्टरं॥ **कमंडलु॥** द्वयोरप्योलकोदोर्द्धं बद्धः(?) **कमंडलुः**। कमंडलुः प्रसिद्धः॥ **संथार॥** संस्तरः काष्ठतृणादिमयः॥

का परिणाम है उसमें। **जिभिंदियपरिणामे**- स्त्री के मुख के रसास्वादन की अभिलाषा जिह्वा इन्द्रिय का परिणाम है उसमें। **फासिंदियपरिणामे**- स्त्री के स्पर्शन की अभिलाषा स्पर्शन इन्द्रिय का परिणाम है उसमें। स्पर्श शब्द से यहां स्पर्शन इन्द्रिय ग्रहण की गई है, न कि उस स्पर्शन इन्द्रिय का विषय। जिससे स्पर्श किया जाए वह स्पर्श है, करण में घञ् प्रत्यय लगाकर इस तरह स्पर्शन शब्द बनता है। इसी प्रकार प्रतिनियत चक्षु आदि इन्द्रियों के परिणाम में आत्मा के नौ प्रकार के ब्रह्मचर्य की रक्षा के अभाव को कहकर समस्तरूप आदि के गोचर जो नो इन्द्रिय के परिणाम हैं उनमें प्रतिपादन करते हुए कहते हैं-**णोइंदियपरिणामे**-ईषत् इन्द्रिय नोइन्द्रिय है। जिस प्रकार से स्पर्शन आदि इन्द्रियाँ प्रतिनियत स्पर्शन आदि विषय वाली हैं उस प्रकार मन नहीं है ? क्योंकि मन अनियत पदार्थ के गोचर होकर भ्रमण करता है जिससे उसका किसी एक विषय के प्रति नियम का अभाव है। अतः अगुप्त आदि विशेषण से विशिष्ट मेरे द्वारा चक्षु आदि इन्द्रिय के परिणाम और नो इन्द्रिय के परिणाम होने पर स्वयं नौ प्रकार के ब्रह्मचर्य की रक्षा नहीं की हो। वचन, मन आदि के द्वारा अब्रह्म सेवा भी की हो। **ण रक्खाविय**-अथवा अन्य मनुष्य के द्वारा रक्षा न कराई गई हो। **ण रक्खिज्जंतं**- अन्य के रक्षा नहीं की जाने की **समणुमण्णियं**- स्वयं अनुमत/स्वीकृति की हो। उसमें अनुमोदना की हो। **तस्से**-उस नौ प्रकार के ब्रह्मचर्य की रक्षा नहीं करने सम्बन्धी दुष्कृत मेरा मिथ्या हो, विफल हो। **अहावरे**-इत्यादि। अब चार प्रकार के कहे हुए महाव्रतों से **अवरे**-अन्य पांचवें महाव्रत में परिग्रह से विरति करना चाहिए। वह परिग्रह दो प्रकार का है, यह कहते हैं। **सो वा**- जिस परिग्रह से विरति करनी चाहिए वह परिग्रह भी दो प्रकार का है। **दुविहो**- अभ्यन्तर और बाह्य के भेद से। **तत्थ**- उसमें दोनों परिग्रह में से अभ्यन्तर परिग्रह ज्ञानावरण आदि आठ कर्म हैं, यह कहते है। **णाणावरणीयमि**- इत्यादि सुगम है।

अट्ठविहो- मूल प्रकृति की अपेक्षा आठ प्रकार का है किन्तु उत्तरोत्तर प्रकृतियों की अपेक्षा उसके अनेक भेद भी संभव है।

प्रश्न- आगम में मिथ्यात्व आदि अभ्यन्तर परिग्रह रूप से प्रसिद्ध है। जैसा कि कहा है-**श्लोकार्थ**- मिथ्यात्व, वेद (तीन), राग, हास्यादि ये छह दोष होते हैं तथा चार कषायें ये चौदह अभ्यन्तर परिग्रह हैं।' इसलिए ज्ञानावरण आदि को अभ्यन्तर परिग्रह रूप कहने पर उन मिथ्यात्व आदि का संग्रह नहीं होता है ?

उत्तर- यह अयुक्त है। ज्ञानावरण आदि के ग्रहण करने से ही उन मिथ्यात्व आदि का भावकर्म रूप से ग्रहण हो जाता है।

इस प्रकार अभ्यन्तर परिग्रह का प्रतिपादन करके अब जो बाह्य परिग्रह है उसका प्रतिपादन करते हुए कहते हैं तत्थ...। **तत्थ**-उसमें उन दोनों परिग्रहों के मध्य **बाहिरो**-बाहर होने वाला बाह्य परिग्रह है। **उवयरणं**-उपकरण दो प्रकार के हैं- ज्ञानोपकरण और संयम उपकरण। उसमें ज्ञान के उपकरण पुस्तक आदि हैं। संयम का उपकरण पिच्छिका आदि हैं। **भंडं**-औषध, तैल आदि द्रव्य रखने का पात्र भांड है। **फलह**-पाएं। पैर से रहित जो सोने आदि का काठ है वह फलक है। **पीढं**- बैठने आदि का आसन पीठ है। **कमंडलु**-दोनों ही जल रखने के गोलक

सेज्ज उवसेज्ज ॥ शय्या वसतिः, उपशय्या पट्टशाला देवकुलिकादि ॥ **भत्त ॥** भक्तमोदनादि ॥ **पान (ण) ॥** पानं दुग्धतक्रादि ॥ **आइभेदेण** । इत्यादिभेदेनानेकविधः परिग्रहः ॥ **एदेण ॥** एतेनोक्तप्रकारेण परिग्रहेण ॥ **अट्ठविहं कम्मरयं ॥** अष्टविधानि कर्माण्येव रजः, शुद्धात्मस्वरूपमलिनताहेतुत्वात् ॥ **(बद्धं) ॥** तत्प्रकृतिप्रदेशादिबंधेन स्वयं बद्धं ॥ **बद्धा**-(बंधा) **वियं ॥** अन्यद्वारेण बंधितं ॥ **बज्झंतं पि ॥** अन्येन स्वयमप्रयुक्तेन बद्ध्यमानं ॥ **(समणुमण्णियं) ॥** स्वयं समनुमतं । तस्य बाह्याभ्यंतरपरिग्रहस्य संबंधिनि दुष्कृते मिथ्या (विफलता) मे भवतु ॥ **अहावरे छट्ठे** इत्यादि । उक्तप्रकाराणि पंचमहाव्रतान्यनुतिष्ठता यथा प्राणातिपातादिभ्यो विरमणं क्रियते, अथ तथाऽपरस्मिन्षष्ठेऽणुव्रते रात्रिभोजनाद्विरमणं कर्तव्यं । कथं पुनरस्याणुव्रतत्वमिति चेत् , प्राणातिपातादिवदत्र साकल्येन विरतेरभावात् ।अत्र हि व्रते रात्रावेव भोजननिवृत्तिः, न पुनर्दिवसे, तत्र यथाकालं भोजने प्रवृत्तिसंभवात् । यस्य चाहारस्य रात्रौ भोजननिवृत्तिः क्रियते स चतुर्विधो भवतीत्याह- असणमित्यादि ॥ **(असणं) ॥** अशनं भक्तमुद्गादि ॥ **(पाणं) ॥** पानं दुग्धतक्रजलादि ॥ **खादि**-(इ) मं ॥ खाद्यं मोदकादि ॥ **सादि-(इ) मं ॥** स्वाद्यं रुच्युत्पादकं व्यंजनादि । चशब्द उक्तसमुच्चये, इतिशब्द एवमर्थे । एवमुक्तप्रकारेण चतुर्विध आहारो भवति ॥ **स** इत्यादिना रात्रिभोजनविरतिव्रतस्यातीचारमाह- स उक्तप्रकारचतुर्विध आहारः ॥ **(तित्तो वा) ॥** तिक्तो वा **(कडुओ वा) ॥** कटुको वा ॥ **(कसाओ वा) ॥ कषायो वा ॥ (अंबिलो वा) ॥** आम्लो वा ॥ **(महुरो वा) ॥** मधुरो वा ॥ **(लवणो वा) ॥** लवनो वा ॥ एतद्विशेषणविशिष्टः ॥ **दुच्चिंतिओ ॥** दुष्टोऽयोग्यचिंततः खादितुं संकल्पितः ॥ **दुब्भासिओ ॥** दुर्भाषितोऽयोग्यो प्याहारः खाद्यतामिति प्रतिपादितः ॥ **दुप्परिणामिओ** ॥ दुष्परिणामितः । अयोग्यस्याप्यर्थस्य खादनार्थं कायेन स्वीकारो ग्रहणपरिणतिरस्य संजातेति 'तारकादिभ्य इतः' इतीतः प्रत्ययः ॥ **दुस्सिमिणिओ ॥** दुःस्वप्नितं । दुःस्वप्नोऽस्य संजातः । स्वप्ने भुक्त इत्यर्थः ॥ **रत्तीए भुत्तो** इत्यादि सुगमं ॥

पंचसमिदीओ इत्यादि ॥ व्रतानां रक्षार्थं सम्यगयनादियत्नपराः प्रवृत्तयः समितयः पंच भवंति । किंनामानस्ता इत्याह-**ईरियासमिदि** इत्यादि । ईर्यासमितिः, भाषासमितिः, एषणासमितिः, आदाननिक्षेपणसमितिः, उच्चारप्रस्रवणखेलसिंघानक-(क्ष्वेलशिंघाणक) विकृतिप्रतिष्ठापनसमितिश्चेति ॥ **तत्थे**त्यादिना तासां स्वरूपं ग्रंथकारः स्वयमेव व्याचष्टे ॥ **तत्थ ॥** तासूक्तपंचसमितिषु मध्ये ॥ **ईर्यासमिदि ॥** ईर्यासमितिः । ईरणमीर्या गमनं । तत्र समितिः प्राणिपीडापरिहारेण प्रवृत्तिः । तस्यां वर्तमानेन मुनिना पूर्वोत्तरदक्षिणपश्चिमलक्षणासु

जिसके बंधे हो। कमंडलु प्रसिद्ध है। **संथार**- काष्ठ, तृण आदि का बना हुआ संस्तर है। **सेज्ज-उवसेज्ज**-शय्या वसति है। पट्टशाला, देवकुलिका आदि उपशय्या है। भत्त-ओदन (भात) आदि भक्त है। **पाण**-दूध, छाछ आदि पान है। **आइभेदेण**-इत्यादि अनेक प्रकार का परिग्रह है। **एदेण**-इस कहे हुए परिग्रह से **अट्ठविहं कम्मरयं**-आठ प्रकार के कर्म ही रज हैं जो कि शुद्धात्म स्वरूप की मलिनता के हेतु हैं। **बद्धं**-वह कर्मरज प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध आदि के भेद से स्वयं बंधा हो **बद्धावियं**-अन्य के द्वारा बंधाया हो **बज्झंतं पि**-स्वयं जिसको मैंने प्रयुक्त नहीं किया है ऐसे किसी अन्य से बांधी जाने वाली रज की **समणुमण्णियं**-स्वयं अनुमोदना की हो। वह बाह्य अभ्यन्तर परिग्रह सम्बन्धी दुष्कृत मेरा मिथ्या हो, विफल होवे। **अहावरे छट्ठे**- इत्यादि-उक्त प्रकार के पाँच महाव्रतों का अनुष्ठान करते हुए जैसे प्राणातिपात आदि से विरमण किया गया है अब उसी प्रकार छठे रात्रिभोजन से विरमण रूप अणुव्रत में करना चाहिए। **प्रश्न**- इस रात्रि भोजन विरति व्रत को अणुव्रतपना क्यों है ? **उत्तर**- प्राणातिपात आदि की तरह इस रात्रि भोजन विरति व्रत में साकल्य (पूर्ण रूप) से विरति का अभाव है। इस व्रत में रात्रि में ही भोजन से निवृत्ति होती है, दिन में नहीं। दिन में तो उचित समय पर भोजन में प्रवृति संभव है। जिस आहार की रात्रि में भोजन से निवृत्ति की जाती है वह आहार चार प्रकार का होता है, यह कहते हैं- **असणं**-भात, मूंग दाल आदि अशन है। **पाणं**- दूध, छाछ, जल आदि पान है। **खादिइ (मं)**-लड्डूआदि खाद्य हैं। **सादिइ (मं)**-रूचि उत्पन्न करने वाले व्यंजन आदि स्वाद्य हैं। च शब्द समुच्चय अर्थ में है। इति शब्द इसी प्रकार के अर्थ में है। इस प्रकार उक्त आहार से चार प्रकार का आहार है। **स** इत्यादिना-रात्रि भोजन विरति व्रत के अतीचार को कहते है। **स**-उक्त प्रकार का चार प्रकार का आहार। **तित्तो वा**-तिक्त (चरपरा)। **कडुओ वा**-कड़वा। **कसाओ वा**-कषायला, **अम्बिलो वा**-आम्ल (खट्टा)। **महुरो वा**-मधुर **लवणो वा**-लवण, नमक। इन विशेषणों से विशिष्ट। **दुच्चिंतिओ**-दुष्ट, अयोग्य चिंतन किया हो, खाने का संकल्प किया हो। **दुब्भासिओ**-दुष्ट, अयोग्य आहार भी खा लेना चाहिए, ऐसा कहा गया हो। **दुप्परिणामिओ**- दुष्परिणाम किया हो। अयोग्य भी पदार्थ को खाने के लिए काया से स्वीकारा हो या ग्रहण करने की परिणति उत्पन्न हुई हो, यही दुष्परिणाम है। **दुस्सिमिणिओ**-दुःस्वप्न आया हो। स्वप्न में भोजन किया हो। **रत्तीए भुत्तो**-(रात में खाया हो) इत्यादि सुगम है।

पंचसमिदीओ-इत्यादि। व्रतों की रक्षा के लिए समीचीन रूप से गमन/अयन आदि यत्नपरक प्रवृत्तियाँ समिति हैं। जो पाँच हैं। **ईरियासमिदि**- ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, **आदान**-निक्षेपण समिति, उच्चार-प्रस्त्रवण-खेल-सिंघानक-विकृतिप्रतिष्ठापन समिति। **तत्थ** इत्यादि के द्वारा इन समितियों का स्वरूप ग्रन्थकार स्वयमेव कहते हैं-**तत्थ** उन कही हुई पाँच समितियों में **ईर्यासमिदि**-ईर्या समिति। ईरण, ईया, गमन है। उस गमन में प्राणिपीड़ा के परिहार से प्रवृति करना ईर्या समिति है। उस समिति में प्रवृति करने वाले मुनि के द्वारा पूर्व-उत्तर-दक्षिण-पश्चिम लक्षण वाली चार दिशाओं में उनके अन्तराल की चार विदिशाओं में विहार करके चलते हुए। कैसे चलते

चतसृषु दिक्षु, तदंतराललक्षणासु च चतसृषु विदिक्षु विहरमाणेन गच्छता। कथंभूतेन? **जुगंतरदिट्ठिणा॥** चतुर्हस्तप्रमाणं युगं। तदंतर्गतदृष्टिना मुनिना दृष्टव्याभन्वत्येकेंद्रियादयो जीवाः। प्राणिपीडापरिहारेण तत्र विहर्तव्यमित्यर्थः। तत्र॥ **पमाददोसेण डवडवचरियाए॥** अतिरभसादूर्ध्वमुखस्येतस्ततो गमनं डवडवचर्या॥ तया॥ **पाणभूदजीवसत्ताणं॥** तत्र विकलेंद्रियाः प्राणाः वनस्पतिकायिकाः भूताः, पंचेंद्रियाः जीवाः, पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकाः सत्त्वाः। तदुक्तं-''द्वित्रिचतुरिंद्रियाः प्राणा भूतास्ते तरवः स्मृताः॥ जीवाः पंचेंद्रियाः ज्ञेयाः शेषाः सत्त्वाः प्रकीर्तिताः॥1॥ '' इति। तेषां॥ **उवघादो कदो वा** इत्यादि सुगमं॥ **भासासमिदि** इत्यादि। भाषासमितिर्दशविधेति मत्वा संबंधः कर्तव्यः। तानेव दशप्रकारान् **कक्कसेत्यादिना** दर्शयति॥ **कक्कसा॥** कर्कशा संतापजननी मूर्खस्त्वं न किंचिज्ज्ञानासी त्यादिका॥1॥ **कडुआ॥** कटुकोद्वेगजननी, 'जातिहीनस्त्वं, निर्धर्मस्त्वमि' -ति॥2॥ **परुसा॥** परुषा मर्मचालनी 'त्वमनेकदोषदुष्टोऽसी'-त्ति॥3॥ **णिट्ठुरा॥** निष्ठुरा 'त्वां मारयिष्यामि, शिरस्ते कर्तयिष्यामी'-ति॥4॥ **परकोविणी॥** परेषां रोषोत्पादिका 'किं ते तपः, प्रहसनशीलो, निर्लज्जस्त्वमि'-ति॥5॥ **मज्झकिसा॥** मध्यकृशा। ईदृशी निष्ठुरा वाचा हड्डानां मध्यमपि कृन्तति॥6॥ **अइमाणिणी॥** अतिमानिन्यात्मनो महत्त्वख्यापनपराऽन्येषां निंदापरा च॥7॥ **अणयंकरा॥** अनयंकरा शीलानां खंडनकरी, अन्योन्यं संगतानां वा विद्वेषकारिणी॥8॥ **छेयंकरी** वीर्यशीलगुणानां निर्मूलविनाशकरी, अथवाऽसद्भूतदोषोद्भाविनी॥9॥ **भूयाण वहंकरी चेदि॥** प्राणिनां प्राणवियोगकरी। चशब्द उक्तसमुच्चये। इति शब्द एवमर्थे। एवंप्रकारा दशविधा भाषा॥ **भासिदा** इत्यादि सुगमं॥ **एसणासमिदि॥** एषणासमितिरुद्गमादिदोषपरिहारेण योग्यनिरवद्यचतुर्विधाहारग्रहणं।

यस्तु तद्विपरीतोऽशुद्ध आहारः स मुनिभिर्न गृहीतव्यः। कथं पुनराहारस्याशुद्धितेत्याह-**आहाकम्मेण वा** इत्यादि। अधःकर्म नीचं स्वयं षड्जीवनिकायविराधनां कृत्वा पाकादिकर्म॥ **पच्छाकम्मेण वा॥** भुक्त्वा गते मुनौ पुनः पाकप्रारंभः पश्चात् कर्म॥ **पुराकम्मेण वा॥** पुरा प्रथममभुंजाने मुनौ पाकादिप्रारंभः पुराकर्म॥ **उद्दिट्ठयडेण वा॥** मुनिमेवोद्दिश्य संकल्प्य यत्पाकादि कृतं देवतापाषंड्यादिकं वोद्दिश्य यत्कृतं। तेन॥ **णिद्दिट्ठयडेण वा॥** निर्दिष्टकृतेन। निर्दिष्टं हि तव कृतमिदमिति कथनं॥ **कीदयडेण वा॥** क्रीतकृतेन। तच्च क्रीतकृतं द्विविधं-द्रव्यक्रीतकृतं भावक्रीतकृतं च। द्रव्यक्रीतकृतमपि द्विविधं-चेतनद्रव्यक्रीतकृतम-चेतनद्रव्यक्रीतकृतं- च। तत्र चेतनद्रव्यं विक्रीय यदाहारदानं तच्चेतनद्रव्यक्रीतकृतं। अचेतनद्रव्यक्रीतकृतं तु

हुए-**जुगंतरदिट्ठिणा**-चार हाथ प्रमाण युग भूमि के भीतर देखने वाले मुनि के द्वारा एकेन्द्रिय आदि जीव देखने योग्य है। प्राणिपीडा का परिहार करके उस युग प्रमाण भूमि में विहार करना चाहिए। उस विहार में। **पमाददोसेण डवडवचरियाए** अति वेग से ऊपर मुख करके इधर-उधर गमन करना डवडवचर्या है। उस चर्या से **पाणभूदजीवसत्ताणं** उसमें विकलेन्द्रिय प्राण हैं, वनस्पतिकायिक भूत हैं, पंचेन्द्रिय जीव है, पृथ्वी-जल-अग्नि-वायु कायिक सत्व हैं। कहा भी है- ''दो, तीन और चार इन्द्रिय प्राण हैं, वे वृक्ष भूत कहे हैं, पंचेन्द्रिय जीव जानना चाहिए, शेष सभी सत्व कहे गए है।'' इस प्रकार उन जीवों का **उवघादो कदो वा**- इत्यादि सुगम है। **भासासमिदि** इत्यादि। भाषा समिति दस प्रकार की है, ऐसा मानकर सम्बन्ध करना चाहिए। उन्हीं दश प्रकारों को **कक्कस**-इत्यादि के द्वारा दिखाते है। **कक्कसा**-संताप उत्पन्न करने वाली भाषा कर्कश है। जैसे तुम मूर्ख हो, कुछ नहीं जानते हो। 2-**कडुआ**-उद्वेग उत्पन्न करने वाली भाषा कटुक है। जैसे कि तुम जाति हीन हो, तुम धर्म रहित हो। 3-**परुसा**-मर्म को चलायमान (भेदने) करने वाली भाषा परूष है। जैसे तुम अनेक दोषों से दूषित हो। 4-**णिट्ठुरा**- तुम्हें मार दूँगा, तुम्हारा सिर काट दूँगा, ऐसी भाषा निष्ठुर है। 5-**परकोवणी**-दूसरों को रोष उत्पन्न करने वाली भाषा परकोपनी है। जैसे कि-तेरे तप से क्या होगा? हमेशा हँसता रहता है। तू निर्लज्ज है, इत्यादि। 6-**मज्झकिसा**-मध्यकृशा-ऐसी निष्ठुर भाषा जो हड्डियों के मध्यभाग को काट देती है। 7-**अइमाणिणी**-अतिमानिनी-जो भाषा अपने महत्त्व को कहने वाली हो और अन्यों की निंदा परक हो। 8-**अणयंकरा**-शीलों का खंडन करने वाली अनयंकरा भाषा है। अथवा जो आपस में साथ रहने वाले हैं उनको विद्वेष उत्पन्न करने वाली भाषा अनयंकरा है। 9-**छेयंकरी**-वीर्य-शील गुणों का निर्मूल विनाश करने वाली भाषा छेदंकरी है। अथवा असदूभूत दोषों (जो दोष नहीं है) को कहने वाली भाषा भी छेदंकरी है। 10-**भूयाण वहंकरी चेदि**-प्राणियों के प्राणों का वियोग करने वाली भूत वधंकरा भाषा है। च शब्द कहे हुए का समुच्चय करने वाला है। इति शब्द 'एव' अर्थात् ही अर्थ में है। इस प्रकार दश प्रकार की भाषा है। **भासिदा**-इत्यादि सुगम है। **एसणासमिदि**-उद्गम-आदि दोषों को दूर करके योग्य निर्दोष चार प्रकार के आहार का ग्रहण करना एषणा समिति है।

जो उस एषणा समिति के विपरीत अशुद्ध आहार है वह मुनियों के लिए ग्रहण करने योग्य नही है। आहार की अशुद्धता कैसे है, यह कहते हैं- **आहाकम्मेण वा**-इत्यादि। अधः कर्म नीच कर्म है। स्वयं छह काय के जीवों की विराधना करके पाक आदि कर्म होना अधःकर्म है। **पच्छाकम्मेण वा**- भोजन करके मुनि के चले जाने पर पुनः पाक क्रिया प्रारंभ करना पश्चात् कर्म है। **पुराकम्मेण वा**। पहले मुनि के भोजन नहीं होने पर पाकादि क्रिया प्रारम्भ कर देना पुराकर्म है। **उद्दिट्ठियडेण वा**-मुनि को ही उद्देश्य करके और संकल्प करके जो पाक आदि क्रिया की जाती है अथवा जो देवता, पाखंडी आदि को उद्देश्य करके की गई हो वह उद्दिष्ट दोष है। उस **णिद्दिट्ठियडेण वा**-निर्दिष्ट किया हो-'आपके लिए किया है' इस प्रकार निर्दिष्ट करके कहना निर्दिष्ट दोष है। **कीदयडेण वा**-खरीद कर लाया हुआ-वह क्रीतकृत दो

स्थिते मुनौ गृहांतरान्मूल्येनानीयाहारदानं। भावक्रीतकृतं तु मंत्रतंत्राद्युपार्जनयाऽऽहार-दानमिति। एतैः प्रकारैर्या भिक्षा गृहीता सा कीदृशीत्याह-**साइया** इत्यादि। स्वदते इति, स्वादिका सुस्वादा॥ **रसाइया॥** रसादिका[1]॥ यत एव रसादिका[2], अत एव स्वादिका॥ **सइंगाला॥** अत्यासक्त्या गृहीता॥ **सधूमिया॥** दातृप्रभृतीनां निंदां कुर्वता गृहीतां। उक्तं च-

तं होदि सइंगालं जं आहारेदि मुच्छिदो संतो।
तं पुण होदि सधूमं जं आहारेदि णिंदंतो॥1॥

कस्मादसौ तेषां निंदां कुर्वन् भिक्षां गृह्णातीत्याह-**अइगिद्धीए॥** यस्मादसावाहारेऽतिगृद्धिमान्, अतोऽतिगृद्ध्याऽऽहारस्योपरि अत्याकांक्षयाऽतिगृद्धिपूर्वकविशिष्टाहाराप्राप्तौ तेषां निंदां कुर्वन्नाहारं गृह्णतीति। अत एव च कारणात्॥ **आधाकम्मेण** वेत्यादिप्रकारेण॥ **अग्गीव॥** अग्निरिव॥ **छण्ह**मित्यादि॥ षण्णां पंचस्थावरत्रसलक्षणानां जीवनिकायानां। जीवानां निकायाः संघाता जीवनिकायाः। तेषां॥ **विराहणं॥** विराधनां पीडां॥ **काऊण॥** कृत्वा॥ **अपरिसुद्धा॥** अयोग्या। 'अप्पडिसुद्धा' इति पाठेऽप्यप्रतिशुद्धा। अयोग्यैवेत्यर्थः। किंरूपा सा भिक्षा ? **अण्णं पाणं॥** अन्नपानरूपा। तदन्नपानं॥ **आहारियं॥** आहारीकृतं भुक्तं॥ **आहाराविय॥** आहारीकारितं, अन्यद्वारेण भोजितं॥ **आहारिज्जंतं पि॥** स्वयमन्येनाहारी-क्रियमाणमपि॥ **समणुमण्णियं॥** इत्यादि सुगमं॥

आदाणणिक्खेवणसमिदी इत्यादि। आदानं ग्रहणं। निक्षेपणं स्थापनं। तत्र समितिः संयमाविरोधेन सम्यक्प्रवृत्तिः। तस्यां वर्तमानेन प्रवृत्तिः। **चक्कल**मित्यादि। **चक्कलं वा फलहं वा पोत्थयं वा कमंडलुं वा वियडिं वा मणिं वा।** चक्कलकं वा फलकं वा पुस्तकं वा कमंडलुं वा विकृतिं वा मणिं वा। एवमादिकमुपकरणं॥ **अप्पडिलेहिऊण॥** अप्रतिलेख्य॥ **गेण्हंतेण ठवंतेण॥** गृह्णता स्थापयता च॥ **पाणे**त्यादि व्याख्यातार्थं।

उच्चारपस्सवणेत्यादि॥ उच्चार॥ उच्चारः पुरीषः॥ **पस्सवण॥** प्रस्रवणं मूत्रं॥ **खेल॥** क्ष्वेलो निष्ठीवनं॥ **सिंहाणय॥** शिंघाणकं नासिकानिर्गतः श्लेष्मा॥ **वियडि॥** विकृतिः। एतेषां प्रतिष्ठापनिकायां मोचने समितिः प्राणिपीडापरिहारे यत्नपरता। तत्र प्रवर्तमानेन प्रमादवशात्॥ **रत्तीए॥** रात्रौ॥ **वियाले वा॥**

---

1. भाषितेतदीति मूलप्रतौ पाठः।
2. रसाचितेति पाठेन भाव्यम्।

प्रकार का है-द्रव्य-क्रीतकृत और **भाव**-क्रीतकृत। उसमें द्रव्य क्रीतकृत दो प्रकार का है-चेतनद्रव्य-क्रीतकृत और अचेतनद्रव्य-क्रीतकृत। उसमें चेतन द्रव्य को बेचकर जो आहार दान दिया जाता है वह **चेतनद्रव्य**-क्रीतकृत दोष है। मुनि के लिए भोजन को खड़े हो जाने पर अन्य घर से मूल्य देकर आहार लाकर जो आहारदान दिया जाता है वह **अचेतनद्रव्य**-क्रीतकृत दोष है। मन्त्र, तन्त्र आदि के उपार्जन से आहार दान देना भावक्रीत दोष है। इस प्रकार की जो भिक्षा ग्रहण की गई है वो भिक्षा किस प्रकार की है-**साइय**ा इत्यादि। जिसका स्वाद लिया जाता है वह स्वादिका सुस्वादा है। **रसाइया**-रसादिका। चूंकि रसादिक हैं इसलिए स्वादिका ही हैं। **सइंगाला**-अति आसक्ति से ग्रहण किया हो वह सइंगाल दोष है। **सधूमिया**-दाता आदि की निंदा करके ग्रहण की गई भिक्षा सधूमिका दोष है। कहा भी है-

श्लोकार्थ-जो आहार मूर्च्छित होते हुए अर्थात् आहार के प्रति अतिगृद्धता से लिया जाता है वह सइंगाल दोष युक्त है। जो निन्दा करते हुए आहार लेता है वह सधूम दोष युक्त है।

किस कारण से यह मुनि उनकी निन्दा करते हुए भिक्षा करते हैं, यह कहते हैं-**अइगिद्धीए**-चूंकि यह आहार में अत्यन्त गृद्धि वाला है। इसलिए अतिगृद्धि से आहार के उपर अति आकांक्षा से अतिगृद्धिपूर्वक विशिष्ट आहार की प्राप्ति के लिए उन गृहस्थों की निन्दा करते हुए आहार ग्रहण करता है। इसलिए ही 'च' कारण से **आधाकमेण**। इत्यादि प्रकार से **अग्गीव**-अग्नि के समान **छण्हं**-पांच स्थावर और त्रस ऐसे छह जीव निकायों की। जीवों का निकाय, संघात या समूह जीव निकाय है। उनकी **विराहणं**- विराधना, पीड़ा। **काऊण**-करके **अपरिसुद्धा**-अयोग्य। **अप्पडिसुद्धा**-यह पाठ होने पर, अप्रतिशुद्ध यह अर्थ होना। इसका भी अर्थ- अयोग्य ही है। कैसे है वह भिक्षा ? **अण्णं पाणं**। अन्नपान रूपा है। उस अन्नपान का। **आहारियं**-आहार किया हो, खाया हो। **आहारावियं**-आहार कराया हो, अन्य के द्वारा भोजन कराया हो। **आहारिज्जंतं पि**-स्वयं, अन्य के द्वारा आहार किए जाने पर भी। **समणुमण्णियं**- इत्यादि सुगम है।

आदाणणिक्खेवणसमिदी-इत्यादि। आदान अर्थात् ग्रहण करना। निक्षेपण स्थापित करना, रखना। उसमें संयम के विरोध के बिना समीचीन प्रवृति करना समिति है। उस समिति में प्रवर्तमान होने से प्रवृति है। **चक्कलकं वा फलकं वा पुस्तकं वा कमंडलुं वा विकृतिं वा मणिं वा।** चक्कल, फलक, पुस्तक, कमंडलु, विकृति या मणि। इत्यादि उपकरण को। **अप्पडिलेहिऊण**। बिना प्रतिलेखन करके **गेण्हंतेण ठवंतेण**। ग्रहण करते हुए और रखते हुए। **पाणे** इत्यादि इनका अर्थ कह दिया है।

उच्चारपस्सवण इत्यादि। **उच्चार**। उच्चार-पुरीष-मल है। **पस्सवण**-पस्त्रवण मूत्र है। **खेल**- क्ष्वेल, थूक है। **सिंहाणय**- नाक का निकला मल शिंघाणक या श्लेष्मा है। **वियडि**- विकृति है। इनकी प्रतिष्ठापना में, छोड़ने में समिति को उच्चार प्रस्त्रवणादि समिति कहते हैं। प्राणियों की पीड़ा का परिहार करने में यत्न करना समिति है। उसमें प्रवर्तमान होने से प्रमाद के कारण। **रत्तीए**- रात्रि में।

संध्यायां ॥ **अचक्खुविसये ॥** अदृष्टिगोचरे ॥ **अवत्थंडिले ॥** स्थंडिलः संस्कृत उच्चो भूमिप्रदेशः । अपगतः स्थंडिलोऽस्मिन्नपस्थंडिलस्तस्मिन् । असंस्कृते निम्नेऽप्रासुके भूप्रदेश इत्यर्थः । उपलक्षणं चैतत् । तेन संस्कृतेऽप्यप्रासुकप्रदेश इति द्रष्टव्यं । अप्रासुक इति सर्वत्र संबंधनीयं ॥ **अब्भावयासे ॥** अभ्रावकाशे वृक्षादिभिरप्रच्छादिते प्रासुके प्रदेशे । इदमप्युपलक्षणं । तेन तत्प्रच्छादितप्रदेशेऽ प्यप्रासुक इति द्रष्टव्यं ॥ **सणिद्धे ॥** सस्निग्धे सार्द्रे भूमिप्रदेशे ॥ **सबीये ॥** बीजैर्युक्ते ॥ **सहरिए ॥** हरितकायिकयुक्ते प्रदेशे ॥ **एवंविहेसु अप्पासुयट्ठाणेसु ॥** अप्रासुकस्थाने । असवः प्राणाः । तद्योगात्प्राणिनोऽप्यसवः । प्रगता असवः प्राणिनोऽस्मादिति प्रासुकं । न प्रासुकमप्रासुकं । तच्च तत्स्थानं च । तस्मिन् ॥ **पइट्ठावंतेण ॥** उच्चारप्रस्रवणादिकं प्रतिष्ठापयता ॥ **पाणभूदे**त्यादि सुगमं ।

तिण्णि गुत्तीओ ॥ तिस्रो गुप्तयो भवंति । सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः । स च योगस्त्रिप्रकारः 'कायवाङ्मनः कर्म योग' इत्यभिधानात् । तत्राशुभपरिणामनिरोधो मनसो निग्रहः । उत्सूत्रगृहस्थभाषादिनिरोधो मौनं वा वाचो निग्रहः । स्वकरचरणादेर्यथेष्टं प्रवृत्तिनिरोधः कायनिग्रहः । सा च गुप्तिस्त्रिप्रकारा भवति । **मणगुत्ति ॥** मनोगुप्तिः ॥ **वचिगुत्ति ॥** वचनगुप्तिः ॥ **कायगुत्तिचेदि ॥** कायगुप्तिश्चेति ॥ **तत्थे**त्यादिना मनोगुप्तिं तावद्व्याचष्टे ॥ तत्थ ॥ तासु तिसृषु गुप्तिषु मध्ये मनोगुप्तिः का? आर्तध्यानादिविषये मनसो गोपनं रक्षणं । एतदेवाह-**अट्टे झाणे ॥** आर्तध्याने चतुर्विधे आर्तममनोज्ञस्य संप्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारः । विपरीतं मनोज्ञस्य । वंदनायाश्च । निदानं च इत्यभिधानात् ॥ **रुद्दे झाणे ॥** रौद्रध्याने हिंसानृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमित्येवंलक्षणे ॥ **इहलोयसण्णए ॥** इहलोकार्थं संज्ञाश्चतस्र आहारादिसंज्ञाभेदात् ॥ **परलोयसण्णाए ॥** परलोको जन्मांतरं । तदर्थं संज्ञा सुखाद्यभिलाषस्तस्यां ॥ तत्रेहलोकसंज्ञानां चतसृणां व्याख्यानार्थमाह-**आहारे**त्यादि ॥ **आहारसण्णए ॥** आहारार्थं संज्ञाभिलाषस्तस्यां ॥ **भयसण्णाए ॥** भयार्थं त्रासार्थं संज्ञा संस्कारस्तस्यां ॥ **मेहुणसण्णाए ॥** मैथुनार्थं संज्ञाऽभिलाषस्तस्यां ॥ **परिग्गहसण्णाए ॥** परिग्रहार्थं संज्ञाऽभिलाषस्तस्यां ॥ **एवमाइयासु ॥** एवंप्रकारास्विहलोकसंज्ञावत्परलोकसंज्ञासु विषयभूतासु ॥ **जा मणगुत्ति ॥** इत्यादि सुगमं ॥

वियाले वा-संध्या में। **अचक्खुविसये**-दृष्टिगोचर नहीं होने में। **अवत्थंडिले**- स्थंडिल, संस्कारित हुआ ऊंचा भूमि का स्थान स्थंडिल है। जो स्थंडिल रहित है वह अपस्थंडिल है। उस संस्कार रहित, निचले, अप्रासुक भूमि स्थान पर। यह तो उपलक्षण मात्र है। इसलिए संस्कार सहित भी हो, अप्रासुक प्रदेश भी हो वह भी यहां जानना चाहिए। अप्रासुक का सम्बन्ध सर्वत्र करना चाहिए। **अब्भावयासे**-बादलों के अवकाश में। वृक्ष आदि के द्वारा जो स्थान ढका हुआ न हो और अप्रासुक हो ऐसे स्थान पर। यह भी उपलक्षण है इसलिए वृक्ष आदि से प्रच्छादित भी हो किन्तु अप्रासुक हो ऐसे स्थान को भी यहां ग्रहण करना चाहिए। **सणिद्धे**-चिकनाहट से सहित, गीला आर्द्र स्थान हो उस पर **सबीये**-बीजों से युक्त स्थान पर। **सहरिए**- हरित कायिक जीवों से युक्त स्थान पर। **एवंविहेसु अप्पासुयट्ठाणेसु**। अप्रासुक स्थान पर। असु प्राण हैं। उन प्राणों के योग से प्राणी असु कहलाते हैं। जिनसे जीव निकल गए हैं वह प्रासुक है। जो प्रासुक नहीं है वह अप्रासुक है। उस अप्रासुक स्थान पर। **पइट्ठावंतेण**-मल-मूत्र आदि को छोड़ने पर मेरे द्वारा जो प्राण, भूत आदि का घात हुआ हो वह मिथ्या हो। **पाणभूदे**- इत्यादि सुगम है।

तिण्णि गुत्तीओ- तीन गुप्तियाँ है। समीचीन रूप से मन, वचन, काय के योगों को रोकना गुप्ति है। वह योग तीन प्रकार का है। कायवाङ्मनः कर्मयोगः। इस सूत्र के अनुसार योग तीन प्रकार का कहा है। उसमें अशुभ परिणामों का रोकना मन का निग्रह है। सूत्र रहित, गृहस्थों की भाषा आदि को रोक कर बोलना अथवा मौन धारण करना वचनों का निग्रह है। अपने हाथ, पैर आदि की इच्छानुसार प्रवृति को रोकना काय निग्रह है। वह गुप्ति तीन प्रकार की है। **मणगुत्ति**-मनोगुप्ति। **वचिगुत्ति** वचन गुप्ति। **कायगुत्तिचेदि**-और काय गुप्ति। **तत्थ**- इत्यादि मनोगुप्ति को पहले कहते है। तत्थ- उन तीनों गुप्तियों में मनोगुप्ति क्या है? आर्तध्यान आदि के विषय में मन का गोपन करना अर्थात् रक्षा करना मनोगुप्ति है। इसी को कहते हैं- **अट्टे झाणे**-आर्तध्यान चार प्रकार का है उसमें। जैसा कि तत्वार्थसूत्र में कहा है कि अमनोज्ञ का योग होने पर, उसका वियोग हो जाने के लिए जो स्मृति समन्वाहार है वह अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान है। इसके विपरीत मनोज्ञ के विषय में द्वितीय आर्तध्यान है। तीसरा वेदना नाम का आर्तध्यान है। चतुर्थ 'निदान' नाम का आर्तध्यान है। **रुद्दे झाणे**-हिंसा, झूठ, चोरी और विषय संरक्षण से जो रौद्र परिणाम होता है वह रौद्र ध्यान है। **इहलोयसण्णाए**- इस लोक के लिए चार प्रकार की संज्ञाएं है जो आहारादि के भेद से चार प्रकार की हैं। **परलोयसण्णाए**- दूसरे जन्म को परलोक कहते हैं। उस दूसरे जन्म के लिए जो सुखादि की अभिलाषा रूप संज्ञा है उसमें। इस लोक सम्बन्धी चार संज्ञाओं का व्याख्यान करने के लिए कहते हैं- **आहार** इत्यादि। **आहारसण्णाए**। आहार के लिए संज्ञा, अभिलाषा आहार संज्ञा है,उसमें। **भयसण्णाए**-भय के लिए, या त्रास (उद्वेग) के लिए जो संज्ञा या संस्कार है, उसमें। **मेहुणसण्णाए**- मैथुन के लिए संज्ञा या अभिलाषा मैथुन संज्ञा है उसमें। **परिग्गहसण्णाए**-परिग्रह के लिए संज्ञा, अभिलाषा है उसमें। **एवमाइयासु**-इस प्रकार इस लोक की संज्ञा की तरह परलोक की संज्ञाओं में। जा **मणगुत्ति**। इत्यादि सुगम है।

तत्थ वचिगुत्तीत्यादि॥ विकथाविषये वचनस्य गोपनं रक्षणं वचनगुप्तिः। कस्यां कस्यां विकथायां वचनस्य रक्षणं कर्तव्यमित्याह-**इत्थी**त्यादि॥ स्त्रीकथायां तद्वदननयननाभिनितंबादिव्यावर्णनरूपायां **अत्थकहाए॥** अर्थस्योपार्जनरक्षणाभिधानरूपायां कथायां॥ **भत्तकहाए॥** भक्तं भोजनं तद्व्यावर्णनरूपायां कथायां॥ **रायकहाए॥** राजस्य राज्ञां वा कथा तस्यां॥ **चोरकहाए॥** चौराणां कथायां॥ **वेरकहाए॥** वैरकथायां॥ **परपासंडकहाए॥** परेषां मिथ्यादृष्टिलिंगिनां पाषंडानि लिंगानि तेषां कथायां॥ **एवमाइयासु॥** एवंप्रकारासु कथासु॥ **जा वचिगुत्ती**त्यादि सुगमं॥

तत्थ कायगुत्तीत्यादि॥ चित्रादिस्त्रीरूपादौ स्वकरचरणादेर्गोपनं रक्षणं कायगुप्तिः। चेतने ही स्त्रीरूपादौ ब्रह्मचारित्वादेव कायस्य गोपनं सिद्धं, अचेतने तु कस्मिन्कस्मिंस्तद्गोपनं कर्तव्यमित्याह-चित्तेत्यादि॥ चित्रकर्मसु काष्ठकर्मसु पुस्तकर्मसु लेप्यकर्मसु वा स्त्रीरूपादिषु स्वकायगोपनं कर्तव्यं। चित्रकर्मादयश्च पूर्वमेव व्याख्यातार्थाः॥ **एवमाइयासु॥** एवंप्रकारासु स्त्र्यादिप्रतिमासु॥ **जा कायगुत्ती**त्यादि सुगमं॥

णवसु इत्यादि। **णवसुबंभचेरगुत्तीसु॥** नवप्रकारासु ब्रह्मचर्यगुप्तिषु। कथं पुनस्तासां नवप्रकारतेति चेत्, उच्यते-तिर्यङ्मनुष्यदेवस्त्रीणां प्रत्येकं मनोवचनकायैरसेवनं नवविधं ब्रह्मचर्यं। तस्य च गुप्तयो रक्षणानि पालनानि नवप्रकाराणि भवंतीति नव ब्रह्मचर्यगुप्तयः॥ **चउसु सण्णासु॥** चतसृषु संज्ञास्वाहारभयमैथुनपरिग्रहलक्षणासु॥ **चउसु पच्चएसु॥** चतुर्षु प्रत्ययेषु कर्मबंधकारणेसु मिथ्यादर्शनाविरतिकषाययोगलक्षणेषु। प्रमादस्य पंचमस्य तत्कारणस्य सद्भावात्कथं चत्वारः प्रत्यया इति नाशंकनीयं, तस्याविरतावंतर्भावात्॥ **दोसु अट्टरुद्दसंकिलेसपरिणामेसु॥** द्वयोरार्तरौद्रलक्षणसंश्लेष-परिणामयोः॥ **तिसुअपसत्थसंकिलेसपरिणामेसु॥** त्रिसु मायामिथ्यानिदानस्वरूपेष्वप्रशस्तेषु पापोपार्जनहेतुभूतेषु संक्लेशपरिणामेषु॥ **मिच्छणाणमिच्छदंसणमिच्छचरित्तेसु॥** मिथ्याज्ञान-मिथ्यादर्शनमिथ्याचारित्रेषु। अथवा मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्राण्येव संक्लेशपरिणामाः, संक्लिष्टात्मनामेव तत्प्रादुर्भावात्॥ **चउसु उवसग्गेसु॥** चतुर्षूपसर्गेषु देव-मनुष्यतिर्यगचेतनकृतोपसर्गलक्षणेषु॥ **पंचसु चरित्तेसु॥** सामायिकछेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसांपराययथाख्यातलक्षणेषु॥ **छसु आवासएसु॥** प्रागेव

तत्थ वचिगुत्ति इत्यादि। विकथा के विषय में वचन का गोपन या रक्षण करना वचनगुप्ति है। किस-किस विकथा में वचन का रक्षण करना चाहिए ? **इत्थी** इत्यादि। स्त्री कथा में- उसका मुख, नयन, नाभि, नितम्ब आदि के वर्णन रूप स्त्री कथा है, उसमें। **अत्थकहाए**। धन के उपार्जन, रक्षण के विषय में कहने रूप अर्थ कथा है उसमें। **भत्तकहाए**-भोजन के कथन करने रूप भक्त कथा है उसमें। **रायकहाए**- राज्य की या राजाओं के विषय में की जाने वाली कथा राजकथा है उसमें। **चोरकहाए**- चोरों की कथा में। **वेरकहाए**- वैर की कथा में। **परपासंडकहाए**- दूसरे मिथ्यादृष्टि लिंगी, पाखंडि लिंगियों की कथा में। **एवमाइयासु**- इस प्रकार की कथाओं में। जा **वचिगुत्ति**- जो वचन गुप्ति आदि है, इत्यादि कथन पूर्ववत् है। इसलिए सुगम है।

तत्थ कायगुत्ति इत्यादि। चित्र आदि में तथा स्त्री रूप आदि में अपने हाथ, पैर आदि का गोपन करना, रक्षण करना, काय गुप्ति है। चेतन रूप स्त्री के रूप आदि में काय का गोपन करना तो सिद्ध है क्योंकि ब्रह्मचारिपना उसी से रहेगा किन्तु किस-किस अचेतन में काय का गोपन करना चाहिए, यह कहते हैं। चित्रकर्म में, काष्ठकर्म में, पुस्तककर्म में, लेप्यकर्म में जोकि स्त्री के रूप आदि सम्बन्धी हैं, उनमें अपनी काया का गोपन करना चाहिए। चित्रकर्म आदि का पूर्व में व्याख्यान किया जा चुका है। **एवमाइयासु**-इसी प्रकार स्त्री आदि की प्रतिमाओं में । जा **कायगुत्ति** इत्यादि सुगम है।

णवसु इत्यादि। **णवसुबंभचेरगुत्तीसु**- नौ प्रकार की ब्रह्मचर्य की गुप्तियों में। उनके नौ प्रकार कैसे हैं ? तिर्यंच, मनुष्य, देवस्त्रियों सम्बन्धित प्रत्येक के साथ मन, वचन, काय के द्वारा सेवन नहीं करना नौ प्रकार का ब्रह्मचर्य है। उस ब्रह्मचर्य की गुप्तियाँ, रक्षण करना या पालन करना नौ प्रकार से होता है, यह नौ प्रकार की ब्रह्मचर्य की गुप्तियाँ है। **चउसु सण्णासु**- आहार, भय, मैथुन, परिग्रह लक्षण वाली चारों संज्ञाओं में। **चउसु पच्चएसु**- कर्मबन्ध के कारण भूत मिथ्यादर्शन, अविरति, कषाय, योग लक्षण वाले चारों प्रत्ययों में। पाँचवाँ प्रमाद प्रत्यय है, उस प्रमाद कारण का सद्भाव होने से चार प्रत्यय कैसे हुए, यह आशंका नहीं करना चाहिए क्योंकि प्रमाद का अविरति में ही अन्तर्भाव हो जाता है। **दोसु अट्टरुद्दसंकिलेसपरिणामेसु**- आर्त, रौद्र लक्षण वाले दोनों संक्लेश परिणामों में। **तिसुअपसत्थसंकिलेसपरिणामेसु**- माया, मिथ्या, निदान स्वरूप तीन अप्रशस्त परिणाम पाप के उपार्जन के हेतुभूत हैं उन संक्लेश परिणामों में। **मिच्छणाणमिच्छदंसणमिच्छचरित्तेसु**- मिथ्याज्ञान, मिथ्यादर्शन और मिथ्या चारित्रों में। अथवा मिथ्यादर्शन, ज्ञान, चरित्र ही संक्लेश परिणाम हैं क्योंकि ये परिणाम संक्लिष्ट आत्माओं में ही उत्पन्न होते हैं। **चउसु उवसग्गेसु**- देव, मनुष्य, तिर्यंच, अचेतन कृत उपसर्ग के भेद से चार प्रकार के उपसर्गों में। **पंचसु चरित्तेसु**- सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म साम्पराय, यथाख्यात लक्षण वाले पाँच चारित्रों में। **छसु आवासएसु**-छह आवश्यकों में इनका व्याख्यान पहले ही कर चुके है।

व्याख्यातरूपेषु॥ **सत्तसु भएसु॥** ''इहपरलोयत्ताणं अगुत्तिमरणं च वेयणा कस्स। भय-'' मित्येतल्लक्षणलक्षितेषु॥ **अट्ठसु सुद्धीसु॥** ''मनोवाक्कायभैक्ष्येर्यासूत्सर्गे शयनासने। विनये च यतेः शुद्धिः शुद्ध्यष्टकमुदाहृतं॥'' इत्येवं रूपासु॥ **दससु समणधम्मेसु॥** दशप्रकारेषु श्रमणधर्मेषु। श्रमणानां मुनीनां धर्माः श्रमणधर्मास्तेषूत्तमक्षमा-मार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यलक्षणेसु। **दससु धम्मज्झाणेसु॥** दशप्रकारेषु धर्म्यध्यानेष्वपायविचयोपायविचयविपाकविचयविरागविचयलोक-विचयभवविचयजीवविचयाज्ञाविचयसंस्थानविचय-संसारविचयलक्षणेषु। विचयो हि परीक्षा। सन्मार्गान्मिथ्यादृष्टयो दूरमेवापेता इति चिंतनमपायविचयः। अथवा मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो, जीवस्य कथमपायः स्यादिति चिंतनमपायविचयः॥1॥ उपायविचयो दर्शनमोहोदयादिकारणवशाज्जीवाः सम्यग्दर्शनादिभ्यः पराङ्मुखा इति चिंतनं॥2॥ कर्मणां ज्ञानावरणादीनां द्रव्यक्षेत्रकालभवभावप्रत्ययं फलानुभवनं प्रति प्रणिधानं विपाकविचयः॥3॥ संसारदेहविषयेषु दुःखहेतुत्वानित्यत्वचिंतनं विरागविचयः॥4॥ ऊर्ध्वाधोमध्यलोकविभागेना-नाद्यनिधनादि स्वरूपेण वा लोकस्वरूपचिंतनं लोकविचयः॥5॥ चतुर्गतिनारकतिर्यङ्मानुषदेवनिकायभवचिंतनं भवविचयः॥6॥ संति जीवा उपयोगस्वभावा अनादिनिधना मुक्तेतररूपा इत्यादिजीवस्वरूपचिंतनं जीवविचयः॥7॥ सर्वज्ञागमं प्रमाणीकृत्यात्यंतपरोक्षार्थावधारणमाज्ञा विचयः। सर्वज्ञज्ञातार्थसमर्थनं वा हेतुसामर्थ्यात्॥8॥ अधोमध्योर्ध्वलोकस्य शरावव्रमृदंगाद्याकारचिंतनं संस्थानविचयः॥9॥ स्वोपात्तकर्मविपाकवशादात्मनो भवांतरावाप्तिः संसारः। तच्चिंतनं संसारविचयः॥10॥

सत्तसु भएसु- सात भयों में। इहलोक भय, परलोक भय, अत्राण भय, अगुप्ति भय, मरण भय, वेदना भय और आकस्मिक भय इस लक्षण वाले सात भयों में। **अट्ठसु सुद्धीसु**- आठ शुद्धियों में। मनः शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि, भैक्ष्य शुद्धि, ईर्या-शुद्धि, उत्सर्ग शुद्धि, शयनासन शुद्धि और विनय शुद्धि ये आठ शुद्धियाँ यति की कही गई हैं। उनमें। **दससु समणधम्मेसु**- दस प्रकार के श्रमण धर्मों में। श्रमणों का, मुनियों का धर्म श्रमण धर्म है। उन धर्मो के लक्षण-उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आंकिचन्य, उत्तम ब्रह्मचर्य। **दससु धम्मज्झाणेसु-दस प्रकार के धर्म ध्यान**-अपाय विचय, उपाय विचय, विपाक विचय, विराग विचय, लोक विचय, भव विचय, जीव विचय, आज्ञा विचय, संस्थान विचय और संसार विचय-ये दस धर्म ध्यान के लक्षण हैं। विचय परीक्षा करने को कहते हैं।

1. सन्मार्ग से मिथ्यादृष्टि जीव दूर ही हैं इस प्रकार चिन्तन करना अपाय विचय धर्मध्यान है। अथवा मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र से जीव को कैसे बचाया जाय, इस प्रकार चिन्तन करना अपायविचय धर्मध्यान है।
2. दर्शनमोह के उदय आदि के कारण से जीव सम्यग्दर्शन आदि से विमुख हैं इस प्रकार चिन्तन करना उपायविचय धर्मध्यान है।
3. द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव के कारण ज्ञानावरण आदि कर्मों के पुण्य और पाप रूप फलानुभव में उपयोग लगना विपाकविचय धर्मध्यान है।
4. संसार, देह और पंचेन्द्रिय के विषयों में ये दुःखों के हेतु हैं और अनित्य हैं ऐसा चिन्तन करना विराग विचय धर्मध्यान है।
5. उर्ध्व, अधः और मध्यलोक के विभाग से अथवा अनादि निधन आदि स्वरूप की अपेक्षा से लोक के स्वरूप का चिन्तन करना लोक विचय धर्मध्यान है।
6. नरक आदि चारों गति के भव भ्रमण का चिन्तन करना भवविचय धर्मध्यान है।
7. जीव हैं, वे उपयोग स्वभाव वाले हैं, अनादि निधन हैं, मुक्त और संसारी रूप हैं, इत्यादि रूप से जीव के स्वरूप का चिन्तन करना जीवविचय धर्मध्यान है।
8. सर्वज्ञ भगवान के आगम को प्रमाण मानकर अत्यन्त परोक्ष अर्थ का अवधारण (निश्चय) करना आज्ञाविचय धर्मध्यान है। अथवा हेतुओं की सामर्थ्य से सर्वज्ञ द्वारा ज्ञात अर्थ का समर्थन करना आज्ञाविचय धर्मध्यान है।
9. अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक का आकार शराव (सकोरा),वज्र और मृदंग आदि के समान आकार है, ऐसा चिन्तन करना संस्थानविचय धर्मध्यान है।
10. अपने ही अर्जित कर्म मल के कारण आत्मा को जो भवान्तर की प्राप्ति होती है वह संसार है। इस प्रकार चिन्तन करना संसारविचय धर्मध्यान है।

दससु मुंडेसु॥ मुडंनं निरोधनं मुंडः। स दशप्रकारो भवति ''पंच वि इंदियमुंडा वचिमुंडा हत्थपायतणुमुंडा। मणमुंडेण य सहिया दसमुंडा वण्णिदा समये॥'' इति वचनात्॥ **बारसेसु संजमेसु॥** द्वादशप्रकारो हि संयमः षड्विध इंद्रियसंयमः षड्विधः प्राणिसंयमश्चेति। तत्रेंद्रिसंयमः षड्विधः, पंचानामिंद्रियाणां षष्ठस्य च मनसः संयमनात्स्वविषये गच्छतामेतेषां नियंत्रणात्। प्राणिसंयमश्च षड्विधः, पंचानां स्थावराणां त्रसानां चाविराधनात्॥ **बाबीसाए परीसहेसु॥** द्वाविंशतिसंख्येषु परीषहेषु। कर्मक्षयार्थं ये परिषह्यंते ते परीषहाः क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्याशय्याक्रोशवधयाचनालाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कार-प्रज्ञाज्ञानादर्शनलक्षणाः। तेषु॥ **पणवीसाए भावणासु॥** पंचविंशतिसंख्यासु भावनासु॥ व्रतानां स्थैर्यार्थं हि भाव्यंत इति भावनाः पंचविंशतिः। तथाहि-हिंसाविरतिव्रतस्थैर्यार्थं तावद्वाङ्मनोगुप्तीर्यादान-निक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पंच, तथाऽनृतविरतिव्रतस्थैर्यार्थं क्रोधलोभभीरुत्वहास्य-प्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पंच, स्तेयविरतिव्रतस्थैर्यार्थं शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधा-करणभैक्ष्यशुद्धिसधर्माविसंवादाः पंच, अब्रह्मचर्यविरतिव्रतस्थैर्यार्थं स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहरांगनिरीक्षण-पूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः पंच, परिग्रहविरतिस्थैर्यार्थं मनोज्ञामनोज्ञेंद्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पंचेति॥ **पणवीसाए किरियासु॥** पंचविंशतिसंख्यासु क्रियासु। क्रियंत इति क्रियाःशुभाशुभकर्मादानहेतवो

दससु मुंडेसु-दश मुंडन-चेष्टा रोकने का नाम मुंडन है। वह दस प्रकार का होता है। **मूलाचार** में कहा भी है-पाँच इन्द्रियों का मुंडन, वचनों का मुंडन, हाथ, पैर और शरीर का मुंडन और मन मुंडन से सहित-आगम में ये दस प्रकार के मुंडन वर्णित हैं। **बारसेसु संजमेसु-बारह प्रकार के संयमों में**-इन्द्रिय संयम छह प्रकार का है जो कि पाँच इन्द्रियों और छठे मन का संयमन करने के कारण होता है। अपने विषय में जाती हुई उन इन्द्रियों और मन पर नियंत्रण होने से इन्द्रिय संयम होता है। प्राणी संयम छह प्रकार का है। पाँच स्थावरों और त्रस जीवों की विराधना नहीं करने से प्राणी संयम होता है। **बावीसाए परीसहेसु**-बाईस परीषहों में-कर्म निर्जरा के लिए जो सहन किए जाते हैं वे परीषह हैं। क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंशमशक, नाग्न्य, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या, शय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कार-पुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान और अदर्शन ये बाईस परीषह हैं। **पणवीसाए भावणासु**-पच्चीस भावनाओं में-व्रतों की स्थिरता करने के लिए जो भायी जाती हैं वे पच्चीस भावनायें हैं। जो इस प्रकार हैं-

1. हिंसा से विरति रूप व्रत की स्थिरता के लिए-वचनगुप्ति, मनोगुप्ति, ईर्या समिति, आदान-निक्षेपण समिति, आलोकितपान भोजन-ये पाँच भावनायें हैं।
2. झूठ से विरति रूप व्रत की स्थिरता के लिए-क्रोध का त्याग, लोभ का त्याग, भीरुत्व का त्याग, हास्य का त्याग और अनुवीचि भाषण-ये पाँच भावनायें हैं।
3. चोरी से विरति रूप व्रत की स्थिरता के लिए-शून्यागार में रहना, विमोचित आवास में रहना, दूसरे का उपरोध(रोकना) नहीं करना, भिक्षा शुद्धि और सधर्मी से विसंवाद(विवाद) नहीं होना-ये पाँच भावनायें हैं।
4. अब्रह्मचर्य से विरति रूप व्रत की स्थिरता के लिए-स्त्री सम्बन्धी राग कथा का श्रवण नहीं करना, स्त्रियों के मनोहर अंगों का निरीक्षण नहीं करना, पूर्व रति का स्मरण नहीं करना, गरिष्ठ रसों का सेवन नहीं करना और स्वशरीर के संस्कार का त्याग-ये पाँच भावनायें हैं।
5. परिग्रह से विरति रूप व्रत की स्थिरता के लिए-मनोज्ञ और अमनोज्ञ इन्द्रिय के विषयों में राग और द्वेष का त्याग होना-ये पाँच भावनायें हैं।

पणवीसाए किरियासु-पच्चीस क्रियाओं में-क्रियाएँ पच्चीस हैं। जो की जाती हैं वह क्रियाएँ हैं। शुभ-अशभ कर्मों के ग्रहण में कारणभूत व्यापार ही क्रिया हैं, जो पच्चीस हैं । वह इस प्रकार हैं-

1. चैत्य, गुरु, प्रवचन (जिनवाणी) की पूजा आदि लक्षण वाली , सम्यक्त्व बढ़ाने वाली क्रिया सम्यक्त्व क्रिया है।

व्यापाराः पंचविंशतिः। तथाहि-चैत्यगुरुप्रवचनपूजादिलक्षणा सम्यक्त्ववर्धिनी क्रिया। अन्यदेवतास्तवनादिरूपा मिथ्यात्वहेतुका कर्मप्रवृतिर्मिथ्यात्वक्रिया। गमनागमनादिप्रवर्तनं कायादिभिः प्रयोगक्रिया (प्रायोगिकी क्रिया) संयतस्य सतोऽविरतिं प्रत्याभिमुख्यं समादानक्रिया। ईर्यापथनिमित्ता ईर्यापथक्रिया। एताः पंच क्रियाः॥ क्रोधावेशात्प्रादोषिकी क्रिया। प्रदुष्टस्य सतोऽभ्युद्यमः कायिकी क्रिया। हिंसोपकरणादानादाधिकरणिकी क्रिया। दुःखोत्पत्तितंत्रत्वात्पारितापिकी क्रिया। आयुरिंद्रियबलप्राणानां वियोगकरणात्प्राणातिपातिकी क्रिया। एताः पंच क्रियाः॥ रागार्द्रीकृतत्वात्प्रमादिनो रमणीयरूपालोकनाभिप्रायो दर्शनक्रिया। प्रमादवशात्स्प्रष्टव्यसचेतनानुबंधः स्पर्शनक्रिया। अपूर्वाधिकरणोत्पादनात्प्रात्ययिकी क्रिया। स्त्रीपशुषंढसंपातिदेशेंऽतर्मलोत्सर्गकरणं समंतानुपातक्रिया। अप्रमृष्टादृष्टभूमौ कायादिनिक्षेपोऽ नाभोगक्रिया। एताः पंच क्रियाः॥ यां परेण निर्वर्त्यां क्रियां स्वयं करोति सा स्वहस्तादानक्रिया। पापादानादिप्रवृत्तिविशेषाभ्यनुज्ञानं निसर्गक्रिया। पराचरितसावद्यादिप्रकाशनं विदारणक्रिया। यथोक्तामाज्ञामावश्यकादिषु चारित्रमोहोदयात्कर्तुमशक्नुवतोऽन्यथा-प्ररूपणादाज्ञाव्यापादिकी क्रिया। शाठ्यालस्याभ्यां प्रवचनोपदिष्टविधिकर्तव्यतानादरोऽनाकांक्षक्रिया। एताः पंच क्रियाः॥ छेदनभेदनविशसनादिक्रियापरत्वमन्येन चारंभे क्रियमाणे प्रहर्षः प्रारंभक्रिया। परिग्रहाविनाशार्था पारिग्राहिकी क्रिया। ज्ञानदर्शनादिषु निकृतिर्वंचना मायाक्रिया। अन्यं मिथ्यादर्शनक्रियाकरण-कारणाविष्टं प्रशंसादिभिर्दृढयति यथा 'साधु करोषीति' सा मिथ्यादर्शनक्रिया। संयमघातिकर्मोदय-

2. अन्य देवताओं के स्तवन आदि करने रूप मिथ्यात्व के लिए हेतुभूत कर्म की प्रवृत्ति मिथ्यात्व क्रिया है।
3. काय आदि के द्वारा गमनागमन आदि में प्रवर्तन होना प्रयोग क्रिया या प्रायोगिकी क्रिया है।
4. संयत जन का अविरति के प्रति अभिमुख होना समादान क्रिया है।
5. ईर्यापथ के निमित्त होने वाली ईर्यापथ क्रिया है।- ये पाँच क्रियाएँ हैं।
6. क्रोध के आवेश से होने वाली प्रादोषिकी क्रिया है।
7. अत्यधिक दुष्ट होते हुए उद्यम करना कायिकी क्रिया है।
8. हिंसा के उपकरण रखने से आधिकारिणी क्रिया है।
9. दु:खों की उत्पत्ति की मुख्यता से होने वाली पारितापिकी क्रिया है।
10. आयु , इन्द्रिय और बल प्राणों का वियोग करने से प्राणातिपातिकी क्रिया है।- ये पाँच क्रियाएँ है।
11. राग से आर्द्र होकर प्रमादी बनकर रमणीयरूप देखने का अभिप्राय दर्शन क्रिया है।
12. प्रमाद के वश से स्पर्श योग्य संवेदना का अनुबन्ध स्पर्शन क्रिया है।
13. अपूर्व अधिकरणों के उत्पन्न करने से प्रात्ययिकी क्रिया है।
14. स्त्री, पुरुष और नपुंसकों के रहने के स्थान में अन्तर्मल का त्याग करना समन्तानुपात क्रिया है।
15. अप्रमृष्ट और अदृष्ट भूमि पर काय आदि का रखना अनाभोग क्रिया है। ये पाँच क्रियाएँ है।
16. जो क्रियाएँ दूसरों के द्वारा करने योग्य हैं ऐसी क्रियाओं को स्वयं करना स्वहस्तादान क्रिया है।
17. पाप को ग्रहण करने वाली प्रवृत्ति आदि का विशेष ज्ञान करना निसर्ग क्रिया है।
18. दूसरे के द्वारा आचरित सावद्य (पाप) आदि का प्रकाशन करना/दूसरों को बताना विदारण क्रिया है।
19. आवश्यक आदि के करने के विषय में जो जिनाज्ञा है उसे चारित्रमोह कर्म के कारण से करने में
20. समर्थ नहीं होने से अन्यथा प्ररूपण करना आज्ञाव्यापादिकी क्रिया है।
21. शठता(मूर्खता) और आलस्य के द्वारा प्रवचन(जिनागम)में कही गई विधि के अनुसार कर्तव्यता में अनादर होना अनाकाङ्क्ष क्रिया है। ये पाँच क्रियाएँ है।
22. छेदन, भेदन, हिंसन आदि क्रिया में तत्परता होना प्रारम्भ क्रिया है तथा अन्य के द्वारा आरम्भ किए जाने पर हर्ष होना भी आरम्भ क्रिया है।

वशादनिवृत्तिरप्रत्याख्यानक्रिया। ता एताः पंचविंशतिक्रियाः॥ **अट्ठारससीलसहस्सेसु, चउरासीदिगुण-सदसहस्सेसु॥** अष्टादशशीलसहस्राणि चतुरशीतिगुणशतसहस्राणि लक्षाः परमागमे प्रतिपादितस्वरूपाः। तेषु॥ **मूलगुणेसु॥** पंचमहाव्रतपंचसमितिपंचेंद्रियनिरोधादिलक्षणेष्वष्टाविंशतिसंख्येषु। **उत्तरगुणेसु॥** वृक्षमूलातापनाद्यनेकप्रकारेष्वेतेषु प्राक्प्रतिपादितस्वरूपेषु नवब्रह्मचर्यगुप्त्यादिषूत्तरगुणपर्यंतेषु यः कश्चिदतिक्रमादिदोष आष्टमिकाद्यनुष्ठने जातस्तं प्रतिक्रमामीति संबंधः। किंलक्षणोऽयमतिक्रमादिरिति चेत्, उच्यते-''अतिक्रमो मानसशुद्धिहानिर्व्यतिक्रमो यो विषयाभिलाषः। तथातिचारः करणालसत्वं भंगो ह्यनाचार इह व्रतानां''॥1॥ अथवा॥ **अदिक्कमो॥** कुतश्चिद्व्यासंगाच्चित्तसंक्लेशाद्वाऽऽगमोक्तानुष्ठान-कालादधिककालं आवश्यकादिक्रियाकरणमतिक्रमः॥ **वदिक्कमो॥** विगतोऽतिक्रमो यस्मिन्नसौ व्यतिक्रमो विषयव्यासंगादिनाऽऽगमोक्तक्रियाकालाद्धीनकाले क्रियाकरणं॥ **अइचारो॥** आवश्यकादिक्रियाकरणालसत्वं॥ **अणाचारो॥** व्रतसमित्यादीनामनाचरणं खण्डनं वा॥ **आभोगो॥** कापोतलेश्यावशात्पूजामहत्त्वाभिलाषेणाति-प्रकटानुष्ठानकरणं। **अणाभोगो॥** लज्जादिवशाल्लोकानामप्रकटानुष्ठानकरणं अयमतिक्रमादिदोषो नवब्रह्मचर्यादिगुप्त्यादिगोचरः क्व जात इत्याह-**अट्ठमियम्हि** इत्यादि॥ अष्टम्यामष्टदिनावच्छिन्ने काले भवमाष्टमिकमनुष्ठानं। तस्मिन्॥ **पक्खियम्हि॥** पक्षे भवं पाक्षिकमनुष्ठानं। तस्मिन्॥ **चाउम्मासियम्हि॥** चतुर्षु मासेषु भवं चातुर्मासिकमनुष्ठानं। तस्मिन्॥ **सांवच्छरियम्हि॥** संवत्सरे भवं सांवत्सरिकमनुष्ठानं। तस्मिन्। एतस्मिन्नाष्टमिकाद्यनुष्ठाने षडावश्यकादिगोचरोऽतिक्रमादिर्यो दोषो जातस्तं प्रतिक्रमाम्युक्तालोचनाद्वारेण

23. परिग्रह का विनाश न हो इसके लिए की जाने वाली पारिग्राहिकी क्रिया है।
24. ज्ञान, दर्शन आदि के विषय में मायाचार होना माया क्रिया है।
25. मिथ्यादर्शन क्रिया करने के कारणों से सहित अन्य किसी को प्रशंसा आदि से दृढ़ करना जैसे कि-'तुम अच्छा कर रहे हो' वह मिथ्यादर्शन क्रिया है।

    संयमघाति कर्मोदय के कारण निवृत्ति नहीं होना (विषय का परित्याग नहीं करना) यह अप्रत्याखान क्रिया है।- ये पच्चीस क्रियाएँ है।

अट्ठारससीलसहस्सेसु चउरासीदिगुणसदसहस्सेसु-अठारह हजार शील के भेदों का और चौरासी लाख गुणों का स्वरूप परमागम में कहा गया है। उनमें जो कोई क्रोध आदि के द्वारा दैवसिक दोष हुआ हो उसकी मैं आलोचना करता हूँ। **मूलगुणेसु**-पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पंचेन्द्रिय निरोध आदि लक्षण वाले अट्ठावीस मूलगुणों में। **उत्तर गुणेसु**- वृक्ष मूल, आतापन आदि अनेक प्रकार के व्रतों में जिनका कि स्वरूप पहले कहा है और जो नव ब्रह्मचर्य गुप्ति आदि से लेकर उत्तर गुण पर्यन्त तक हैं। उनमें जो कोई अतिक्रम आदि दोष आठ दिन आदि के अनुष्ठान में उत्पन्न हुआ है। उसका प्रतिक्रमण करता हूँ यह सम्बन्ध है। यह अतिक्रम आदि का लक्षण क्या है? कहते हैं-'मन की शुद्धि में कमी होना **अतिक्रम** है। जो पंचेन्द्रिय विषयों की अभिलाषा है वह **व्यतिक्रम** है। क्रियाओं में आलस्य करना **अतिचार** है। अथवा करण अर्थात् इन्द्रियाँ, इसमें आलस्य होना अतिचार है। तथा व्रतों का भंग हो जाना **अनाचार** है।' अथवा **अदिक्कमो**-अतिक्रम-किसी व्यासंग से अथवा चित्त संक्लेश से आगम में कहे हुए अनुष्ठान काल से अधिक काल में आवश्यक आदि क्रिया करना अतिक्रम दोष है। निकल गया है अतिक्रम जिसमें से वह व्यतिक्रम है। **वदिक्कमो**-विषय के व्यासंग से अर्थात् पंचेन्द्रिय के विषयों में मन उलझ जाने से आगमोक्त क्रियाओं के काल से हीन काल में क्रिया करना व्यतिक्रम है। **अइचारो-अतिचार**-आवश्यक आदि क्रियाओं के करने में आलस्य करना अतिचार है। **अणाचारो-अनाचार**-व्रत, समिति आदि का आचरण नहीं करना अथवा उनका खण्डन कर देना अनाचार है। **आभोगो-आभोग**-कापोत लेश्या के कारण पूजा-महत्व की अभिलाषा से अतिप्रकट अनुष्ठान आभोग है। अतिप्रकट अनुष्ठान से तात्पर्य सबको दिखाने के भाव से अनुष्ठान करना है। **अणाभोगो-अनाभोग**-लज्जा आदि के कारण लोक में कोई देख न ले इस प्रकार अप्रकट अनुष्ठान करना अनाभोग है। यह अतिक्रम आदि दोष जो कि नौ ब्रह्मचर्य आदि गुप्ति के विषय में है, वह कब हुआ है ? ऐसा पूछने पर कहते हैं- **अट्ठमियम्हि**-इत्यादि। अष्टमी में, आठ दिन तक के काल में होने वाले आष्टमिक अनुष्ठान में। **पक्खियम्हि**-पक्ष में होने वाला पाक्षिक अनुष्ठान है।उसमें। उसमें **चाउम्मासियम्हि**-चार मास में होने वाला चातुर्मासिक अनुष्ठान है। उसमें। **सांवच्छरियम्हि**-वर्ष में होने वाला सांवत्सरिक अनुष्ठान है।

निराकरोमि॥ **मए पडिक्कंतं॥** अतिक्रमादिदूषणं मया प्रतिक्रांतं शोधितं यदा भवति तदा॥ **सम्मत्तमरणं॥** सम्यक्त्वयुक्तस्यापरित्यक्तसम्यक्त्वस्य मरणं॥ **होउ मज्झं॥** भवतु मम॥ **पंडियमरणं॥** भक्तप्रत्याख्यानेंगिनीपादोपयानमरणभेदात् पंडितमरणं मम भवतु॥ **वीरियमरणं॥** वीर्ययुक्तस्याक्लीबस्य मरणं मम भवतु॥ **दुक्खक्खओ॥** दुःखानां चातुर्गतिकानां क्षयो विनाशः। **कम्मक्खओ॥** कर्मणां ज्ञानावरणादीनां क्षयः प्रलयो भवतु॥ **बोहिलाहो॥** बोधेः रत्नत्रयस्य लाभो मम भवतु॥ **सुगइगमणं॥** शोभनायां गतौ मोक्षगतौ गमनं मम भवतु॥ **जिणगुणसंपत्ति॥** जिनस्य प्रक्षीणाशेषकर्मणो भगवतो गुणा अनंतज्ञानादयः। तेषां संप्राप्तिर्मम भवतु॥

यन्नो कैश्चिदपि प्रसन्नवचनैर्निःशेषशुद्धिप्रदं।
व्याख्यातं प्रवरं प्रतिक्रमणसद्ग्रंथत्रयं धीमतां॥
तद्येन प्रकटीकृतं भवहरं शब्दार्थतो निर्मलं।
स श्रीमान्निखिलोपकारनिरतो जीयात्प्रभेंदुर्जिनः॥

पेटलापट्के श्रीचंद्रप्रभदेव-पदानामग्रे श्रीगौतमस्वामिकृत-प्रतिक्रमणा, त्रयस्य टीकात्रयं-

श्रीप्रभाचंदपंडितेनकृतमिति॥1॥

॥ श्री ॥ ॥ श्री ॥ ॥ श्री ॥

॥ श्री पार्श्वनाथाय नमः॥

उसमें। इन आष्टमिक आदि अनुष्ठानों में छह आवश्यक आदि के गोचर अतिक्रम आदि जो दोष उत्पन्न हुए हों उसका मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। कही हुई इस आलोचना के द्वारा मैं इसका निराकरण करता हूँ। **मए पडिक्कंतं**- अतिक्रम आदि दोष मैंने प्रतिक्रमण से शोधे हैं। उसका शोधन जब हुआ है तब **सम्मत्तमरणं**- सम्यक्त्व के साथ अर्थात् सम्यक्त्व को छोडे बिना मरण हो। **होउमज्झं**-मेरा होवे। **पंडियमरणं**-भक्त प्रत्याख्यान, इंगिनी और प्रायोपगमनमरण के भेद से तीन प्रकार का पंडितमरण मेरा होवे। **वीरियमरणं**-वीर्य के साथ, कायरता को छोड़कर मेरा मरण होवे। **दुक्खक्खओ**-चारों गतियों के दुखों का क्षय हो, विनाश हो। **कम्मक्खओ**-ज्ञानावरणादि कर्मो का क्षय हो, प्रलय हो। **बोहिलाहो**- रत्नत्रय बोधि है। उसका लाभ मुझे हो। **सुगइगमणं**-शोभनगति, मोक्ष में मेरा गमन हो। **जिणगुणसंपत्ति**- जिन्होंने समस्त कर्मों का नाश किया है उन जिन भगवान के अनन्त ज्ञान आदि गुणों की प्राप्ति मुझे हो।

''कितने ही प्रसन्न वचनों के द्वारा समस्त शुद्धि को प्रदान करने वाले उत्कृष्ट 'प्रतिक्रमण ग्रन्थ त्रय' को जो हम बुद्धिमानों के लिए व्याख्यान किया गया है उसको जिन्होंने निर्मल और संसार का नाश करने वाले शब्दार्थ से प्रकट किया है वह समस्त लोक के उपकार में निरत इन्दु की प्रभा समान, श्री सम्पन्न जिनेन्द्र भगवान जयवन्त हो।'' श्लेषालंकार से 'प्रभेंदु' कहकर 'प्रभाचन्द्र' नाम भी टीकाकार ने स्वयं का कहा है।

'पेटलापट्क' में श्री चन्द्रप्रभ भगवान के चरणों के आगे श्री गौतमस्वामी द्वारा प्रणीत तीन प्रतिक्रमण की तीन टीकाएं-
श्री प्रभाचन्द पण्डित ने की हैं।

इस प्रकार संतशिरोमणि आचार्य विद्यासागर जी के 'संयम स्वर्णमहोत्सव वर्ष' 2017-18 के शुभ अवसर पर उनके आज्ञानुवर्ती शिष्य मुनि प्रणम्यसागर द्वारा 'प्रतिक्रमण ग्रन्थ-त्रयी' के तृतीय ग्रन्थ की हिन्दी टीका समाप्त हुई।

परिशिष्ट

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

प्रतिक्रमणग्रन्थत्रयी

श्रीमते वर्धमानाय नमो नमितविद्विषे।
यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा त्रैलोक्यं गोष्पदायते॥1॥

'इच्छामि भंते।' आलोचेदुं दिवसियम्हि। पढमं महव्वदं । पाणादिवादादो वेरमणं । मुसावादादो वेरमणं तदियं अदत्तादाणादो वेरमणं ॥ मेहुणादो वेरमणं॥ परिग्गहादो वेरमणं ॥ छट्ठं अणुव्वदं राइभोयणादो वेरमणं

इरियासमिदीए। भासासमिदीए एसणासमिदीए। आदाणणिक्खेवणसमिदीए। उच्चारपस्सवणखेलसिंघाणयवियडि-पइट्ठावणियासमिदीए। मणुगुत्तीए। वचिगुत्तीए। कायगुत्तीए। कोहेण वा। माणेण वा। माएण वा। लोहेण वा। रागेण वा। दोसेण वा। मोहेण वा। हस्सेण वा। भयेण वा। पदोसेण वा। पमादेण वा। पिम्मेण वा। पिवासेण वा।

लज्जेण वा। गारवेण वा। णाणेसु। चरित्तेसु। बावीसाए परीसहेसु । पणुवीसाए भावणासु । पणुवीसाए किरियासु।

अट्ठारससीलसहस्सेसु चउरासीदिगुणसदसहस्सेसु। बारसण्हं संजमाणं॥ बारसण्हं तवाणं। बारसण्हं अंगाणं। चोद्दसण्हं पुव्वाणं। दसण्हं मुंडाणं।

दसण्हं समणधम्माणं दसण्हं धम्मझाणाणं। दिट्ठियाए। पुट्ठियाए। पादोसियाए॥ सोलसण्हं कसायाणं। णोकसायाणं।

सत्तविहसंसाराणं। छण्हं आवासयाणं।

अट्ठारससीलसहस्सेसु चउरासीदिगुणसदसहस्सेसु। बारसण्हं संजमाणं॥ बारसण्हं तवाणं। बारसण्हं अंगाणं। चोद्दसण्हं पुव्वाणं। दसण्हं मुंडाणं।

दसण्हं समणधम्माणं दसण्हं धम्मझाणाणं। दिट्ठियाए। पुट्ठियाए। पादोसियाए॥ सोलसण्हं कसायाणं। णोकसायाणं। णवसु बंभचेरगुत्तीसु। अट्ठण्हं कम्माणं। अट्ठण्हं पवयणमाउआणं। अट्ठण्हं सुद्धीणं।

सत्तविहसंसाराणं। छण्हं आवासयाणं।

छण्हं जीवणिकायाणां। पंचण्हं समिदीणं॥ पंचण्हं चरित्ताणं॥ चउण्हं सण्णाणं। चउण्हं पच्चयाणं। चउण्हं उवसग्गाणं।

मूलगुणाणं। उत्तरगुणाणं। अच्चासणदाए। तिण्हं दण्डाणं। तिण्हं लेस्साणं। तिण्हं गारवाणं। तिण्हं अपसत्थसंकिलेसपरिणामाणं। दोण्हं अट्टरुद्दसंकिलेसपरिणामाणं। मिच्छणाणमिच्छदंसणमिच्छचारित्ताणं। मिच्छत्तपाओग्गं। असंजमपाओग्गं। जोगपाओग्गं। अपाओग्गसेवणदाए। आसेवणदाए। पाओग्गगरहणदाए। गरहणदाए।॥ एत्थ मे जो कोवि। देवसियम्हि। अदिक्कमो। वदिक्कमो। अदिचारो। अणाचारो।

आभोगो। अणाभोगो। भंते ! पडिक्कमामि। मए पडिक्कंतं। सम्मत्तमरणं। समाहिमरणं। पंडियमरणं। वीरियमरणं। दुक्खक्खओ। कम्मक्खओ। बोहिलाओ। सुगइगमणं। जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

प्रतिक्रमणपीठिकादण्डकविवरणम्।

णिसीहियाए।

णमोत्थु दे। हे अरहंत। हे सिद्ध। हे बुद्ध। हे णीरय। हे णिम्मल। हे सममण। हे सुमण। हे सुसमत्थ। हे समजोग। हे समभाव। सल्लघट्टाणं।

हे सल्लघत्ताण। हे णिब्भय। हे णीराय। हे णिद्दोस। हे णिम्मोह। हे णिम्मम। हे णिस्संग। हे णिस्सल्ल। हे माणमायामोसमूरण। हे तवप्पहावण। हे गुणरयणसीलसायर। हे अणंत। हे अप्पमेय। महदिमहावीरवड्ढमाण। बुद्धिरिसिणो । णमोत्थु दे। -मम मंगलं। अरहंता य। सिद्धा य। बुद्धा य। जिणा य। केवलिणो ओहिणाणिणो। मणपज्जवणाणिणो। चोद्दसपुव्वंगमिणो। सुदसमिदि समिद्धा य। तवो य बारसविहो। तवस्सी। गुणा य। गुणवंतो य । महरिसी तित्थं तित्थंकरा य। पवयणं। पवयणी य। णाणं। णाणी य। दंसणं। दंसणी य। संजमो। संजदा य। विणओ। विणीदा य। बंभचेरवासी य। गुत्तीओ चेव। गुत्तिमंतो य। मुत्तीओ चेव। मुत्तिमंतो य। समिदीओ चेव। समिदिमंतो य। ससमयपरसमयविदू। खंतिखवगा य। खीणमोहा य। बोहियबुद्धा य। बुद्धिमंतो य। चेदियरुक्खा य। चेदियाणि। उड्ढमहतिरियलोए सिद्धायदणाणि णमंसामि। सिद्धणिसीहियाओ। अट्ठावयपव्वए। सम्मेदे। उज्जंते। चंपाए। पावाए। मज्झिमाए। हत्थिवालियसहाए। जाओ अण्णाओ। जीवलोयम्हि। इसिपब्भारतलगयाणं। बुद्धाणं। कम्मचक्कमुक्काणं। णीरयाणं। णिम्मलाणं। गुरु-आयरिय-उवज्झायाणं। पव्वत्तिथेरकुलयराणं। चाउवण्णो य समणसंघो य। भरहेरावएसु दससु। पंचसु महाविदेहेसु। जे लोए संति साहू। संजदा तवस्सी। एदे मम मंगलं पवित्तं। एदेहं मंगलं करेमि भावदो विसुद्धो सिरसा। अहिवंदिऊण सिद्धे। काऊण अंजलिं मत्थयम्हि। तिविहं तिरयणसुद्धो।

॥ इति निषीधिकादण्डकविवरणम् ॥

पडिक्कामि भंते। देवसियस्स। मणदुच्चरियस्स। वचिदुच्चरियस्स। कायदुच्चरियस्स। णाणाइचारस्स दंसणाइचारस्स

तवाइचारस्स वीरियाइचारस्स चारित्ताइचारस्स । पंचण्हं महव्वयाणं। पंचण्हं समिदीणं। तिण्हं गुत्तीणं। छण्हं आवासयाणं। छण्हं जीवणिकायाणं। विराहणाए। पील कदो वा । पील । कदो वा। कीरंतो वा समणुमण्णिदो। तस्स मिच्छा मे दुक्कडे।

पडिक्कमामि भंते। अइगमणे। णिग्गमणे। ठाणे। गमणे। चंकमणे। उव्वत्तणे। परियत्तणे। आउंचणे। पसारणे। आमासे। परिमासे। कूइदे। कक्कराइदे। चलिदे। णिसण्णे। सयणे। उव्वटणे। परियट्टणे। एइंदियाणं बेइंदियाणं तेइंदियाणं चउरिंदियाणं पंचिदियाणं जीवाणं। विराहणाए। संघट्टणाए। संघादणाए। ओद्दावणाए। परिदावणाए। एत्थ। मे जो को वि। तस्स मिच्छा मे दुक्कडे।

पडिक्कमामि भंते। इरियावहियाए विराहणाए। उड्ढमुहंचरंतेण। अहोमुहं चरंतेण वा। तिरियमुहं चरंतेण वा। दिसिमुहं चरंतेण वा। विदिसिमुहं चरंतेण वा। पाणचंकमणदाए। बीयचंकमणदाए। हरियचंकमणदाए। उत्तिंगपणयदयमट्टियमक्कडय-तंतुसत्ताण चंकमणदाए। पुढविकाइयसंघट्टणाए। आउकाइयसंघट्टणाए। तेउकाइयसंघट्टणाए। वाउकाइयसंघट्टणाए। वणप्फदिकाइयसंघट्टणाए। तसकाइयसंघट्टणाए। उद्दावणदाए। परिदावणाए। विराहणाए। एत्थ। मे जो को वि। तस्स मिच्छा मे दुक्कडे।

पडिक्कमामि भंते। उच्चारपस्सवणखेलसिंहाणयवियडिपइट्ठावणियाए। पइट्ठावंतेण। पाणा वा। भूदा वा। जीवा वा। सत्ता वा।

संघट्टिदा वा। संघादिदा वा उद्दाविदा वा परिदाविदा वा। एत्थ।

पडिक्कमामि भंते। अणेसणाए। पाणभोयणाए। पणयभोयणाए। पणियभोयणाए। बीयभोयणाए। हरियभोयणाए। आहाकम्मेण। पच्छाकम्मेण वा। पुराकम्मेण वा। उद्दिट्ठयडेण वा। णिद्दिट्ठयडेण वा। दयसंसिट्ठयडेण वा। रससंसिट्ठयडेण वा। रससंसिट्ठयडेणेति ।

परिसादणियाए। पइट्ठावणियाए। उद्देसियाए। णिद्देसियाए। कीदयडे। मिस्से जादे। ठविदे। रइदे। अणिसिट्ठे। बलिपाहुडदे। पाहुडदे। घट्टिदे। मुच्छिदे। अइमत्तभोयणाहारे। एत्थ। गोयरस्स।

पडिक्कमामि भंते। सुमिणिंदियाए। विराहणाए। इत्थिविप्परियासियाए। दिट्ठिविप्परियासियाए। मणविप्परियासियाए। वचिविप्परियासियाए। कायविप्परियासियाए। भोयणविप्परियासियाए। उच्चावयाए। सुमिणदंसण-विप्परियासियाए। पुव्वरए। पुव्वखेलिदे। णाणाचिंतासु। जो को।

पडिक्कमामि भंते। इत्थिकहाए। अत्थकहाए। भत्तकहाए। रायकहाए। चोरकहाए। वेरकहाए। परपासंडकहाए। देसकहाए। भासकहाए। अकहाए। विकहाए। णिट्ठुल्लकहाए। परपेसुण्णकहाए। कंदप्पियाए। कुक्कुच्चियाए। डंबरियाए। मोक्खरियाए। अप्पपसंसणदाए। परपरिवादणदाए। परदुगुंछणदाए। परपीडाकराए। सावज्जाणुमोयणियाए। एत्थ। मे जो को।

पडिक्कमामि भंते। अट्टे झाणे। रुद्दे झाणे। इहलोयसण्णाए। परलोयसण्णाए। आहारसण्णाए। भयसण्णाए। मेहुणसण्णाए। परिग्गहसण्णाए। कोहसल्लाए। माणसल्लाए। मायासल्लाए। लोहसल्लाए। पेम्मसल्लाए। पिवाससल्लाए। णियाणसल्लाए। मिच्छादंसणसल्लाए। कोहकसाए माणकसाए मायाकसाए लोहकसाए। किण्हलेस्सपरिणामे णीललेस्सपरिणामे काउलेस्सपरिणामे। आरंभपरिणामे। परिग्गहपरिणामे । पडिसयाहिलासपरिणामे। मिच्छादंसणपरिणामे । असंजमपरिणामे। कसायपरिणामे। पावजोगपरिणामे। कायसुहाहिलासपरिणामे। सद्देसु। रूवेसु। गंधेसु। रसेसु। फासेसु। काइयाहिकरणियाए। पादोसियाए। परिदावणियाए। पाणाइवाइयासु। जो को।

पडिक्कमामि भंते। एक्के भावे अणाचारे। वेसु रायदोसेसु।

तिसु गुत्तीसु, तिसु दंडेसु, तिसु गारवेसु, चउसु कसाएसु, चउसु सण्णासु, पंचसु महव्वदेसु, पंचसु समिदीसु, छसु जीवणिकाएसु, छसु आवासएसु, सत्तसु भएसु। अट्ठसु मएसु। णवसु बंभचेरगुत्तीसु, दसविहेसु समणधम्मेसु। एयारसविहेसु उवासयपडिमासु। बारसविहेसु भिक्खुपडिमासु। तेरसविहेसु किरियाट्ठाणेसु। चोद्दसविहेसु भूदगामेसु। पण्णारसविहेसु पमादट्ठाणेसु। सोलहविहेसु पवयणेसु। सत्तारसविहेसु असंजमेसु।

अट्ठारसविहेसु असंपराइएसु।

एऊणविसाए णाहाज्झयणेसु।

वीसाए असमाहिट्ठाणेसु॥

एक्कवीसाए सबलेसु॥ वावीसाए परीसहेसु॥ तेवीसाए सुद्दयडज्झाणेसु॥

चउवीसाए अरहंतेसु॥ पणवीसाए भावणासु॥ छव्वीसाए पुढवीसु॥

सत्तावीसाए अणगारगुणेसु।

अट्ठावीसाए आयारकप्पेसु॥ एऊणतीसाए पावसुत्तपसंगेसु॥

तीसाए मोहणीयट्ठाणेसु॥ एक्कतीसाए कम्मविवाएसु॥ बत्तीसाए जिणोवएसेसु॥

तेत्तीसाए अच्चासणदाए॥

जीवाणं अच्चासणदाए। अजीवाणं अच्चासणदाए। तं सव्वं गरहामि॥ पच्चुप्पण्णं॥ पडिक्कमामि॥ अणागयं पच्चक्खामि॥ अगरहियं गरहामि॥ अणिंदियं णिंदामि॥ अणालोचियं आलोचेमि॥ आराहणं अब्भुट्ठेमि॥ विराहणं पडिक्कमामि॥ एत्थ मे जो को वि॥

इच्छामि भंते॥ इमं णिग्गंथं॥ पावयणं॥ पव्वयणमिति। अणुत्तरं॥ केवलियं॥ पडिपुण्णं॥ णेगाइयं॥ सामाइयं॥ संसुद्धं॥ सल्लघत्ताणं॥ सिद्धिमग्गं॥ सेढिमग्गं॥ मुत्तिमग्गं॥ पमुत्तिमग्गं॥ मोक्खमग्गं॥ पमोक्खमग्गं॥ णिज्जाणमग्गं॥ णिव्वाणमग्गं॥ सव्वदुक्खपरिहाणिमग्गं॥ सुचरियपरिणिव्वाणमग्गं॥ अवितहं॥ अविसंति॥ अविसंधी पवयणं॥ उत्तमं॥तं सद्दहामि॥ तं पत्तियामि॥ तं रोचेमि॥ तं फासेमि॥ अवगाहियामि॥(?) इदो उत्तरं अण्णं॥ णत्थि॥ ण भूदं॥ ण भविस्सदि॥ णाणेण वा दंसणेण वा चरित्तेण वा॥ सुत्तेण वा॥ इदो जीवा सिज्झंति॥ बुज्झंति॥ मुंचंति॥ परिणिव्वायंति॥ सव्वदुक्खाणमंतं करेंति॥ परिवियाणंति॥ समणोमि॥ संजदोमि॥ उवरदोमि॥ उवसंतोमि॥ उवहि। नियडि , माण , माया , मोस। पडिविरदोमि॥ रोचेमि॥ जं जिणवरेहिं पण्णत्तं॥ एत्थ मे जो को वि।

पडिक्कमामि भंते सव्वकालियाए॥ इरियासमिदीए। पाणादिवादादो वेरमणाए॥ सव्वविराहणाए॥ सव्वधम्म-अइक्कमणदाए॥ सव्वमिच्छाचरियाए॥ एत्थ मे जो को वि॥

इच्छामि भंते जो मे। णिग्घादणाए॥ अण्णहा॥ उस्सासिदेण वा॥ णिस्सासिदेण वा॥ खासिदेण वा॥ छिंकिदेण वा॥ जंबाइदेण वा॥ सुहुमेहिं अंगचलाचलेहिं॥ दिट्ठिचलाचलेहिं॥ एदेहिं सव्वेहिं॥ आयारेहिं॥ असमाहिं पत्तेहिं॥ जावअरिहंताणं॥ भयवंताणं॥ पज्जुवासं करेमि॥ कायं वोसरामि॥ पावकम्मं॥ दुच्चरियं॥

यः सर्वाणीत्यादि॥ सर्वाणि द्रव्याणि॥ चराचराणि॥ विधिवद् । गुणान्पर्यायानपि। सर्वान् सर्वथा। भूतभाविभवतः। सदा युगपत्। प्रतिक्षणं सर्वज्ञाय जिनेश्वराय । महते । वीराय नमः।

वीरः सर्वसुरासुरेन्द्रमहितः। वीरं बुधाः संश्रिताः। वीरेणाभिहतो। स्वकर्मनिचयः। वीराय भक्त्या नमः। वीरात्तीर्थमिदं प्रवृतं-अतुलं वीरस्य घोरं तपो। वीरे श्रीद्युतिकांतिकीर्तिधृतयः। हे वीर भद्रं त्वयि॥

ये वीरपादौ प्रणमंति नित्यं। ध्यानस्थिताः। संयमयोगयुक्ताः । ते वीतशोकाः। ते संसारदुर्गं विषमं तरंति।

व्रतसमुदयमूलः। संयमस्कन्धबन्धः । यमनियमपयोभिर्वर्धितः। शीलशाखः। समितिकलिकभारः। गुप्तिगुप्तप्रवालः। सत्तपश्चित्रपत्रः। शिवसुखफलदायी। दयाछाययोद्यः शुभजनपथिकानां खेदनोदे समर्थः। दुरितरविजतापं प्रापयन्नन्तभावम्। सोऽस्तु । भवविभवहान्यै।

चारित्रं। प्रणमामि। चारित्रम्। सर्वजिनैः। प्रोक्तं च सर्वशिष्येभ्यः। पंचमचारित्रलाभाय।

धर्मः सर्वसुखाकरः। हितकरः। धर्मं बुधाः धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं । तस्मै धर्माय नमः। धर्मान्नास्त्यपरः । धर्मस्य मूलं दया । धर्मे प्रतिदिनमहं चित्तं दधे। मां हे धर्म पालय।

धम्मो मंगलं। उक्किट्ठं। तु अहिंसा संजमो तवो। देवा वि तस्स पणमंति जस्स धम्मे सया मणो।

चउवीसं तित्थयरे। उसहादिवीरपच्छिमे। सव्वे। सगणगणधरे।

ये लोकेऽष्टसहस्रलक्षणधराः। ज्ञेयार्णवान्तर्गताः। ये सम्यग्भवजालहेतुमथनाः।चन्द्रार्कतेजोऽधिकाः। ये साध्विन्द्र-सुराप्सरोगणशतैर्गीतप्रणुत्यार्चिताः। तान् देवान् वृषभादिवीरचरमान् भक्त्या नमस्याम्यहम्। ईडे नाभेयं । जिनवरम्। देवपूज्यम्। सर्वज्ञम्। सर्वलोकप्रदीपं। जितम्। शम्भवाख्यम्। मुनिगणवृषभम्। नन्दनं। देवदेवम्। सुबुद्धिम्। सुपार्श्व। क्षांतं दांतम्। चंद्रनामानं। सकलशशिनिभम्। पुष्पदन्तं स्तौमि। विख्यातम्। भवभयमथनम्। शीतलं । लोकनाथं । श्रेयांसं। शीलकोशम्। प्रवरनरगुरुम्। वासुपूज्यं सुपूज्यम्। मुक्तम्। दान्तेन्द्रियाश्वम्। विमलं। ऋषिपतिम्। सिंहसैन्यम्। धर्मं । सद्धर्मकेतुम्। मुनीन्द्रम्। शान्तिं। शमदमनिलयम्। शरण्यम्। कुंथुं। शरणमहमितो सिद्धालयस्थम्। श्रमणपतिम्। तथाऽरं। शरणमहमितः। त्यक्तभोगेषुचक्रम्। मल्लिं। खचरगणनुतम्। सुव्रतं। नमींद्रं । देवेंद्रार्च्यम्। नेमिचन्द्रं भवांतम्। हरिकुलतिलकं। पार्श्वनाथं । वर्धमानं च भक्त्या।

इति-श्रीगौतमस्वामि-विरचित-दैवसिकादि
प्रतिक्रमणग्रंथत्रय्याः प्रथमो ग्रंथः समाप्तः॥

बृहत्प्रतिक्रमणम्।

णमो जिणाणं। णमो ओहिजिणाणं॥ णमो परमोहिजिणाणं॥ णमो सव्वोहिजिणाणं॥ णमो अणंतोहिजिणाणं॥ णमो कोट्ठबुद्धिणं॥ णमो बीजबुद्धीणं॥ णमो पदानु-(णु) सारीणं॥ णमो संभिण्णसोदा-(द) राणं॥ णमो सयंबुद्धाणं॥ णमो पत्तेयबुद्धाणं॥ णमो बोहियबुद्धाणं॥ णमो उजुमदीणं॥ णमो विउलमदीणं॥ णमो अभिण्णदसपुव्वीणं॥ णमो चोद्दसपुव्वीणं॥ णमो अट्ठंगमहाणिमित्तकुसलाणं॥

णमो विउव्वणइड्ढिपत्ताणं॥ णमो विज्जाहराणं॥ णमो चारणाणं॥

णमो पण्णसमणाणं॥ णमो आयासगामीणं॥ णमो आसीविसाणं॥ णमो दिट्ठिविसाणं॥ णमो उग्गतवाणं॥ णमोदित्ततवाणं॥ णमोतत्ततवाणं॥ णमो महातवाणं॥ णमो घोरतवाणं॥ णमो घोरगुणाणं॥ णमो घोरपरक्कमाणं॥ णमो घोरगुणबंभचारीणं॥ णमो आमोसहिपत्ताणं॥ णमो खेलोसहिपत्ताणं॥ णमो जल्लोसहिपत्ताणं॥ णमो विप्पोसहिपत्ताणं॥ णमो सव्वोसहिपत्ताणं॥ णमो मणबलीणं॥ णमो वचिबलीणं॥ णमो कायबलीणं॥ णमो खीरसवीणं॥ णमो सप्पिसवीणं॥ णमो महुरसवीणं॥ णमो अमयसवीणं॥ णमो अक्खीणमहाणसाणं॥ णमो सिद्धायदणाणं॥ णमो भयवदो॥ महदिमहावीरवड्ढमाण-बुद्धरिसिणो चेदि॥ जस्स-अंतिगं॥ धम्मपहं॥ णिगच्छे॥ तस्संतियं॥ वेणयियं॥ पउंजे॥ णिच्चं॥ सक्कारए॥ सिरपंचमेण॥

इति गणधरवलयाख्यः प्रतिक्रमणामंगलदण्डकः॥

सुधम्मे। आउसंतो॥ भयवदा। मे सम्मं धम्मोति। उवदेसिदाणि । समणेण। महाइमहावीरेण॥ महाकस्सवेण॥ सव्वण्णुणा॥ सव्वलोयदरसिणा॥

जाणंता पस्संता॥ आगदिं गदिं च॥ (लोयस्स॥) सदेवासुरमाणुसस्स॥ चवणोववादं॥ बंधं॥ मोक्खं॥ इड्ढिं॥ ठिदिं॥ जुदिं॥ अणुभागं॥ तक्कं॥ कलं॥ मणो॥ माणसियं॥ भुत्तं॥ कयं॥ पडिसेवियं॥ आइकम्मं॥ अ-रहकम्मं॥ 'अरहकम्मं'॥ सव्वलोए॥ सव्वजीवे॥ सव्वभावे॥ सव्वं समं॥ विहरमाणेण । समणाणं॥ पंचमहव्वयाणि॥ राइभोयणवेरमणछट्ठाणि॥ सभावणाणि॥ समाउगपदाणि॥ स-उत्तरपदाणि॥ पढमे॥ महव्वदे॥ पाणादिवादादो वेरमणं॥ चेदि॥ तत्थ॥ भंते॥ (सव्वं)॥ पच्चक्खामि॥ पच्चाचक्खामि॥ जावजीवं॥ तिविहेण॥ मणसा वचिया (यसा) कायेण॥ से॥ एइंदिये वा॥ णेव सयं पाणे अदिवादेज्ज। वेइंदिये वा॥ (तींदिये वा)॥ (चउरिंदिये वा)॥ (पंचिंदिये वा)॥ पुढविकाइए वा॥ (अपकाइए वा)॥ (तेउकाइए वा)॥ (वाउकाइए वा)॥ (वणप्फदिकाइए वा)॥ (तसकाइए वा)॥ अण्डाइए वा॥ पोदाइए वा॥ जराइए वा॥ रसाइए वा॥ संसेदिमे वा॥ सम्मुच्छिमे वा॥ उब्भेदिमे वा॥ उववादिमे वा॥

(तसे वा)॥ (थावरे वा)।बादरे वा सुहुमे वा॥ पाणे वा॥ भूदे वा॥ जीवे वा॥ सत्ते वा॥

पज्जत्ते वा॥ अपज्जत्ते वा॥ अवि चउरासीजोणिपमुहसदसहस्सेसु॥ (णेवसयं पाणे अदिवादेज्ज)॥ णो अण्णेहिं पाणे अदिवादावेज्ज॥ णो। अण्णेहिं पाणे अदिवादिज्जंते पि ण ससणुमण्णिज्ज॥ णिंदामि अप्पाणं, गरहामि अप्पाणं॥ पुव्विंच (त) णं (तं) भंते॥ भंते॥ वोस्स (स) रामि॥ जं पि मए॥ रागस्स वा दोसस्स वा मोहस्स वा वसंगएण॥ सयं पाणे अदिवादिदे॥ अण्णेहिं पाणे अदिवादाविदे॥ अण्णेहिं पाणे अदिवादिज्जंते समणुमण्णिदे। तं पि॥ इमस्स णिग्गंथस्स॥ पावयणस्स॥ अणुत्तरस्स॥ केवलिपण्णत्तस्स॥ अहिंसालक्खणस्स॥ सच्चाहिट्ठियस्स॥ विणयमूलस्य॥ खमाबलस्स॥ अट्ठारस॥ चउरासी॥ बंभचेरगुत्तस्स॥ णियति। (अद्) लक्खणस्स॥ परिच्चायफलस्स॥ उवसमपहाणस्स॥ खंतिमग्गदेसयस्स॥ देसयस्स॥ मुत्तिमग्गपयासयस्स॥ सिद्धिमग्गपज्जवसाणस्स॥ सव्वं पुव्वं दुच्चरियं गरहामि। अण्णाणेण वा॥ असम्मणेण वा॥ अणभिगमणेण वा॥ अमीमंसगदाए वा॥ अबोहियाए वा॥ रागेण वा॥ दोसेण वा॥ मोहेण वा॥ हस्सेण वा॥ भयेण वा॥ पदोसेण वा॥ पमादेण वा॥ पेम्मेण वा॥ पिवासेण वा॥ लज्जेण वा॥ गारवेण वा॥ आलसदाए॥ बालिसदाए॥ कम्मभारिगदाए॥ कम्मगुरुगदाए॥ कम्मदुच्चरिगदाए॥ कम्मपुरुक्कडदाए॥ तिगारवगुरुगदाए॥ अबहुस्सुददाए॥ अविदिदपरमत्थदाए॥ तं सव्वमित्यादि॥ गरहामि॥ (पडिक्कमामि)॥ आगमेसिं च॥ अपच्चक्खियं॥ पच्चक्खामि॥ अणालोचियं आलोचेमि॥ अणिंदियं णिंदामि॥ अगरहियं गरहामि॥ अपडिक्कंतं पडिक्कमामि॥ विराहणं वोसिरामि॥ आराहणं अब्भुट्ठेमि॥ अण्णाणं॥ सण्णाणं॥ कुदंसणं॥ सम्मदंसणं॥ कुचरियं॥ सुचरियं॥ कुतवं॥ सुतवं॥ अकरणिज्जं॥ करणिज्जं॥ अकिरियं॥ किरियं॥ पाणादिवाद॥ (पाणादिवादं)॥ मोसं॥ (मोसं)॥ अबंभं॥ बंभचरियं॥ (परिग्गहं)॥ (राइभोजणं) पच्चुप्पण्णं॥ अट्टरुद्दज्झाणं॥ धम्मसुक्कझाणं॥ किण्ण- (ण्ह) णीलकाउलेस्साओ॥ तेउपम्मसुक्कलेस्सा (ओ)॥ आरंभं॥ अणारंभं॥ (असंजमं)॥ (संजमं)॥

सग्गंथं॥ (णिग्गंथं)॥ सचेलं॥ (अचेलं)॥ अलोचं॥ (लोचं)॥ ण्हाणं॥ (अण्हाणं)॥ अखिदिसयणं॥ (खिदिसयणं)॥ दंतवणं॥ (अदंतवणं)॥ अट्ठिदिभोयणं॥ (ठिदिभोयणं)॥ अपाणिपत्तं॥ (पाणिपत्तं)॥ (कोहं)॥ (खंतिं)॥ (माणं)॥ (मद्दवं)॥ (मायं)॥ (लोहं)॥ (संतोसं)॥ मिच्छत्तं॥ परिवज्जामि॥ सम्मत्तं॥ उवसंपज्जामि॥ असीलं॥ सुसीलं॥ ससल्लं॥ (णिस्सल्लं)॥ अविणयं॥ (विणयं) अणाचा (या) रं॥ (आयारं)॥ उम्मग्गं॥ (मग्गं)॥ (अखंतिं)॥ (खंतिं)॥ अगुत्तिं॥ (गुत्तिं)॥ अमुत्तिं॥ (मुत्तिं)॥ असमाहिं॥ णिम्ममत्तिं (त्तं)॥ अभावियं भावेमि॥ (भावियं)॥ ण भावेमि॥ इमं- णिग्गंथं॥ पव्वयण (णं)॥ पावयणं अणुत्तरं॥ केवलियं॥ पडिपुण्णं॥ णेगाइयं॥ णेगायियं॥ सामायियं॥ संसुद्धं॥ सल्लघट्टाणं॥ सिद्धिमग्गं॥ सेढिमग्गं॥ खंतिमग्गं॥ मुत्तिमग्गं॥ मोक्खमग्गं पमोक्खमग्गं॥ णिज्जाणमग्गं॥ णिव्वाणमग्गं॥ सव्वदुक्खपरिहाणिमग्गं॥ सुचरियपरिणिव्वाणमग्गं॥ जत्थ बुज्झंति॥ मुच्चंति॥ परिणिव्वायंति॥ सव्वदुक्खाणमंतं करेंति॥ तं

सद्दहामि ॥ तं पत्तियामि ॥ तं रोचेमि ॥ तं फासेमि ॥ इदो उत्तरं अण्णं ॥ णत्थि ॥ ण भूदं ॥ ण भव्वं ॥ ण भविस्सदि ॥ कयाचि वा ॥ कुदोचि वा ॥ णाणेण वा दंसणेण वा चरित्तेण वा ॥ सुत्तेण वा ॥ सीलेण वा गुणेण वा ॥ तवेण वा ॥ णियमेण वा वदेण वा ॥ विहारेण वा ॥ आलएण वा ॥ अज्जवेण वा ॥ लाहवेण वा ॥ अण्णेण वा ॥ समणोमि ॥ संजदोमि ॥ उवरदोमि ॥ उवसंतोमि ॥ उवहि णियडि ॥ माण ॥ माया ॥ मोस ॥ पडिविरदोमि ॥ रोचेमि ॥ पढमे महव्वदे ॥ महत्थे ॥ महागुणे ॥ महाणुभावे ॥ महापुरिसाणुचिण्णे ॥ जिणवरपण्णत्ते ॥ पाणादिवादादो वेरमणं ॥ सुव्वदं ॥ दिढव्वदं ॥ णित्थारयं ॥ पारयं ॥ तारयं ॥ आराहयं चावि ॥ देवसियेत्यादि ॥ उत्तमट्ठं ॥ इरियावहकेसलोच ॥

अहावरे अवरे ॥ विदीये ॥ भंते ॥ मुसावादं ॥ से कोहेण ॥ से। कोहेण वा माणेण। अण्णदरेण वा केण वि कारणेण जादेण ॥ णेव सयं मोसं भासेज्ज। अहावरे तदियमहव्वदे सव्वं भंते अदत्तादाणं पच्चक्खामि ॥ से । गामे वा णयरे वा खेडे वा कव्वडे वा मडंवे वा पट्टणे वा दोणमुहे वा ॥

दोणमुहे ॥ घोसे ॥ आसमे वा ॥ सहाये वा ॥ संवाहे ॥ सण्णिवेसे ॥ खेत्ते ॥ खले ॥ जले ॥ पथे ॥ उप्पथे ॥ अरण्णे ॥ णट्ठं वा ॥ पमुद्धं वा ॥ पडिदं ॥ सुणिहिदं ॥ दुण्णिहियं ॥ अप्पं ॥ बहुं ॥ अणुं ॥ थूलं ॥ सचित्तं ॥ अचित्तं ॥ मज्झत्थं ॥ बहित्थं ॥ अवि दंतंतरसोहणमेत्तं पि ॥ अहावरे चउत्थे महव्वदे सव्वं भंते अब्बंभं पच्चक्खामि। से इत्यादि ॥ देवियं वा माणुसियं वा तिरिच्छियं वेति। देवीसु ॥ अचेदणीएसु वा ॥ कट्ठकम्मेसु ॥ वत्थकम्मेसु ॥ लेप्पकम्मेसु ॥ लयणकम्मेसु ॥ सिलाकम्मेसु ॥ भित्तिकम्मेसु ॥ भेदकम्मेसु ॥ दंतकम्मेसु ॥ हत्थसंघट्टणदाए ॥ पादसंघट्टणदाए ॥ पोग्गलसंघट्टणदाए ॥ मणुण्णामणुण्णेसु। णोइंदियपरिणामे ॥ सेवेज्ज ॥ अहावरे पंचमे महव्वदे ॥ से (हिरण्णं) ॥ धणं ॥ (धण्णं) ॥ खेत्तं ॥ वत्थुं ॥ कोसं ॥ बलं ॥ वाहणं ॥ वाहणं ॥ सयडं ॥ जाणं ॥ जुगं ॥ गदुं ॥ रहं ॥ संदणं ॥ सिबियं ॥ गवेडयं ॥ अंडजं ॥ तसरिचीवरं ॥ अविवालंग (बालग्ग) कोडिमेत्तं पि ॥ असमणपाउग्गं ॥ अहावरे छट्ठे अणुव्वदे सव्वं भंते राइभोयणं पच्चक्खामि असणं ॥ पाणं ॥ खादियं ॥ सावियं (इमं) ॥ रत्तिये भुंजेज्ज ॥ चूलियं तु पच्चक्खामि ॥ अणुण्णादा ॥ एक्केक्कम्हि महव्वदे ॥ पढमं वदमस्सिदो ॥ मणगुत्त ॥ इरियाकायसंयदो ॥ एसणासमिदिसंजुत्तो ॥ विदियं वदमस्सिदो ॥ अकोहणे ॥ अलोहो। भयहस्सविवज्जिदो ॥ अणुवीचिभासकुसलो ॥ तदियं वदमस्सिदो ॥ देहणं ॥ भावणं चावि ॥ ओग्गहं च ॥ परिग्गहे ॥ संतुट्ठो ॥ भत्तपाणेसु ॥ चउत्थं वदमस्सिदो ॥ इत्थिकहा ॥ णियत्तो य ॥ णियमम्हि ठिदो ॥ पंचमं वदमस्सिदो ॥ सचित्त ॥ बज्झब्भंतरेसु य ॥ परिग्गहादो ॥ उत्तमं वदं ॥ धिदिमंतो ॥ खमाजुत्तो ॥ झाणजोगपरिट्ठिदो ॥ परीसहाणुरदंतो ॥

सो सारो एस गोदम ॥ सारं झाणे त्ति णामेण ॥ सव्वबुद्धेहिं देसिदं ॥ इच्चेदाणि ॥

पाणादिवादं ॥ मोसगं च ॥ अदत्तमेहुण्णपरिग्गहं च ॥ (सम्मं) अणुपालइत्ता। विरदा (णिव्वाणमग्गं) उवेंति। जाणं ॥ वोसरित्ता ॥ छंडित्ता ॥ विहरदि ॥ (सया) ॥ उप्पण्णाणुप्पण्णा ॥ अणुपुव्वसो ॥ आलोयणणिंदणगरहणाए ॥ अब्भुट्ठिदाए ॥ अब्भुट्ठिदो करणदाए ॥ करणदाए ॥ भावपडिक्कमणं ॥ सेसा ॥

एसो पडिक्कमणविहि पण्णत्तो जिणवरेहिं सव्वेहिं।
संजमतवट्ठियाणं णिग्गंथाणं महरिसीणं॥
अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं हवे एत्थ।
तं खमउ णाणदेवय देउ समाहिं च मे बोहिं॥

काऊण॥ लोयम्हि य॥ सुत्तस्स मूलपदाणमच्चासणदाए॥ तं जहा॥ णमोक्कारपदे। अरहंतपदे॥ मंगलपदे॥ लोगुत्तमपदे॥ सरणपदे॥ सामाइयपदे॥ चउवीसं तित्थयरपदे॥ वंदणपदे॥ पडिक्कमणपदे॥ पच्चक्खाणपदे॥ कायोस्सग्गपदे॥ असि-(सी) निसि (सी) हियपदे॥ अंगंगेसु॥ पुव्वंगेसु॥ पइण्णएसु॥ पाहुडेसु॥ पाहुडपाहुडेसु॥ कदकम्मेसु वा॥ भूदकम्मेसु वा॥ णाणस्स॥ अदिक्कमणदाए॥ से अक्खरहीणं वा पदहीणं वा॥ सरहीणं वा॥ अत्थहीणं वा॥ गंथहीणं वा॥ थएसु वा॥ थुइसु वा॥ अट्ठक्खाणेसु वा॥ अणिओगेसु वा॥ अणिओगदारेसु वा॥ जे भावा॥ अरहंतेहिं॥ भयवंतेहिं॥ तित्थयरेहिं॥ आदियरेहिं॥ तिलोयणाहेहिं॥ ते सद्दहामि॥ ते फासेमि॥ अदिक्कमो॥ वदिक्कमो॥ अइचारो॥ अणाचारो॥

आभोगो॥ अणाभोगो॥ अकाले सज्झाओ कओ॥ काले वा॥ परिहाविदो॥अच्छाकारिदं॥ मिच्छामेलिदं॥ आमेलिदं॥ वामेलिदं॥ अण्णहादिण्णं॥ अण्णहापडिच्छिदं॥ अह पडिवाए॥ तिण्णछावट्ठिसयदिवसाणं॥ पंचवरिसादो वा परदो वा॥ अब्भंतरदो वा॥

दोण्हं अट्टरुद्दसंकिलेसपरिणामाणं, तिण्हं अपसत्थसंकिलेसपरिणामाणं, तिण्हं दण्डाणं, तिण्हं लेस्साणं, तिण्हं गुत्तीणं, तिण्हं गारवाणं, तिण्हं सल्लाणं, चउण्हं सण्णाणं, चउण्हं कसायाणं, चउण्हं उवसग्गाणं, पंचण्हं महव्वयाणं, पंचण्हं इंदियाणं, पंचण्हं समिदीणं, पंचण्हं चरित्ताणं, छण्हं आवासयाणं, सत्तण्हं भयाणं, सत्तविहसंसाराणं, अट्ठपहं भयाणं, अट्ठण्हं सुद्धीणं, अट्ठण्हं कम्माणं, अट्ठण्हं पवयणमाउआणं, णवण्हं बंभचेरगुत्तीणं, णवण्हं णोकसायाणं, दसविहमुण्डाणं, दसविहसमणधम्माणं, दसविहधम्मज्झाणाणं, बारसण्हं संजमाणं, बारसण्हं तवाणं, बारसण्हं अंगाणं, तेरसण्हं किरियाणं, चउदसण्हं पुव्वाणं, पण्णरसण्हं पमायाणं, सोलसण्हं कसायाणं, पणवीसाए किरियासु, दोण्हं अट्टरुद्देत्यादिना॥ तिण्हं अपसत्थसंकिलेसपरिणामाणं॥ तिण्हं दण्डाणं॥ तिण्हं लेस्साण॥ चउण्हं पच्चयाणं॥ पंचण्हं समिदीणं॥ सत्तविहसंसाराणं॥ अट्ठण्हं सुद्धीणं॥ णवण्हं बंभचेरगुत्तीणं॥

णवण्हं णोकसायाणं॥ दसविहमुंडाणं॥

दसविहसमणधम्माणं॥ दसविहधम्मज्झाणाणं॥ पणवीसाए किरियासु॥ पणवीसाए भावणासु॥ बावीसाए परीसहेसु॥ उत्तरगुणेसु॥ अइक्कमो॥ जाव अरहंताणं भयवंताणं॥ पज्जुवासं करेमि॥ ताव कायं (वोसिरामि)॥ पावकम्मं॥ दुच्चरियं॥

इति-श्रीगौतमस्वामि-विरचित-बृहत्प्रतिक्रमणा
प्रतिक्रमणग्रंथत्रय्याः द्वितीय-ग्रंथः समाप्तः॥

आलोचना

इच्छामि ॥ भंते ॥ आलोचेदुं ॥ अट्ठमियम्हि ॥ अट्ठमियमालोचेदुं अट्ठण्हं ॥ अभंतरादो ॥
आयारो ॥ पंचविहो ॥ इच्छामि भंते ॥ पक्खियम्हि ॥ पक्खियमालोचेदु । पण्णारसण्ह ।
इच्छामि भंते । चाउम्मासियम्हि ॥ चाउम्मासियमालोचेदुं । चउण्हं मासाणं ।

इच्छामि भंते ॥ सांवच्छरियम्हि ॥ सांवच्छरियमालोचेदुं । बारसण्हं । तिण्हं छावट्ठिसयदिवसाणं ॥ तत्थ ॥ विणये ॥ उवहाणे ॥ बहुमाणे ॥ तहेव ॥ अणिण्हवणे ॥ अट्ठविहो णाणायारो ॥ परिहाविदो ॥ (परिहावणं ॥) थऐसु वा ॥ थुइसु वा ॥ अत्थक्खाणेसु वा ॥ अणिउग्गेसु वा (अणुओगेसु वा) ॥ अणियोगदारेसु वा ॥ अकाले सज्झाओ कदो वा ॥ कदो वा ॥ कारिदो वा ॥ कीरंतो वा ॥ समणुमण्णिदो वा (?) ॥ काले वा ॥ परिहाविदो ॥ अच्छाकारिदं ॥ मिच्छामेलिदं ॥ आमेलिदं ॥ वामेलिदं ॥ अण्णहादिण्णं ॥ अण्णहापडिच्छिदं ॥ आवासएसु परिहीणदाए ॥

तस्स ॥ दुक्कडे ॥ (मिच्छा ॥) ॥ दंसणायारो अट्ठविहो ॥ णिस्संकिय ॥ णिक्कंखिय ॥ णिव्विदिगिंछो ॥ अमूढदिट्ठी य ॥ उवगूहण ॥ ठिदिकरणं ॥ वच्छल्लं ॥ पहावणा च ॥ परिहाविदो ॥ संकाए कंखाए ॥ विदिगिंछाए ॥ अण्णदिट्ठिपसंसणाए ॥ परपासंडपसंसणाए ॥ अणायदणसेवणाए ॥ अवच्छल्लदाए ॥ अप्पहावणदाए ॥ तस्स मिच्छा मे दुक्कडे ॥ दुक्कडे ॥ (मिच्छा) ॥ तवायारो अब्भंतरो ॥ (अब्भंतरो) ॥ छव्विहो ॥ बाहिरो ॥ छव्विहो ॥ तत्थे तत्थ ॥ बाहिरो ॥ अणसणं ॥ ओमोदरियं ॥ वित्तिपरिसंखा ॥ रसपरिच्चाओ ॥ सरीरपरिच्चाओ ॥ विवित्तसयणासणं च ॥ पायच्छित्तं ॥ विणओ ॥ वेज्जा-(आ) वच्चं ॥ सज्झाओ ॥ झाणं ॥ विउसग्गो चेदि ॥ बारहविहं ॥ तवोकम्मं ॥ ण कदं ॥ णिसण्णेण ॥ पडिक्कंतं ॥ तस्स मिच्छा मे दुक्कडे ॥ वीरियाचारो जहुत्तमाणेण ॥ तथा बलेण परक्कमेण ॥ तवोकम्मं ण कदं ॥ (णिसण्णेण) ॥ पडिक्कंतं ॥ णिगूहियं ॥ तस्स मिच्छा मे दुककडे ॥

चरित्तायारो ॥ तेरसविहो ॥ पंच । तत्थ ॥ पढमं महव्वदं ॥ पाणादिवादादो वेरमणं ॥

वेरमणं ॥ पुढवीकाइया । तेसिं उद्दावणं ॥ परिदावणं ॥ विराहणं ॥ उवघादो ॥ कदो वा ॥ कारिदो वा ॥ कीरंतो वा ॥ समणुमण्णिदो ॥ तस्स मिच्छा मे दुक्कडे ॥

बेइंदिया कुक्खिकिमीत्यादि खुल्लय ॥ वराडय ॥ अक्खमहांतो ॥ रिट्ठय ॥ गंडवालय ॥ संबूय ॥ सिप्पि ॥ पुलवि ॥ आइया ॥ तेसिं ॥ उद्दावण ॥ तेइंदिया । कुंथु तेसिं । चउरिंदिया ॥ दंस ॥ महुयर ॥ तेसिं । पंचें-(चिं) दिया । अंडाइया ॥ पोदाइया ॥ जराइया ॥ ॥ रसाइया ॥ संसेदिमा ॥ सम्मुच्छिमा ॥ उब्भेदिमा ॥ उववादिमा ॥ चउरासीजोणिपमुहसदससहस्सेसु ॥ एदेसिं ॥ उवघादो । दोच्चे ॥

मुसावादादो (वेरमणं)॥ से॥ कोहेण वा॥ माणेण॥ मायेण॥ लोहेण॥ रागेण॥ दोसेण॥ मोहेण॥ हस्सेण॥ भएण॥ पदोसेण॥ पमादेण॥ पेम्मेण॥ पिवासेण॥ लज्जेण॥ गारवेण॥ सव्वो॥ मुसावादो भासिओ। तच्चे॥ महव्वदे॥ अदिण्णादाणादो वेरमणं॥ से॥ गामे वा णयरे वा खेडे वा कव्वडे वा मडंबे वा पट्टणे वा॥ दोणामुहे॥ घोसे॥ आसमे॥ सहाए॥ संवाहे ।सण्णिवेसे॥ (तणं वा)॥ (कट्ठं वा)॥ वियडिं वा॥ मणिं वा॥ एवमाइयं॥ गेण्हियं॥ गेण्हाविय॥ गेण्हिज्जंतं वा॥ समणुमण्णियं॥ तस्स। चउत्थे महव्वदे ।से॥ णवविहं बंभचरियं ण रक्खिय अगुत्तेण॥ अगुत्तिंदियेण॥ देविएसु वा॥ माणुसिएसु वा॥ तिरिक्खिएसु वा॥ अचेदणिएसु वा॥ मणुण्णामणुण्णेसु रूवेसु॥ चक्खिंदियपरिणामे॥ सोदिंदियपरिणामे॥ घाणिंदियपरिणामे॥ जिब्भिंदियपरिणामे॥ फासिंदियपरिणामे॥ णोइंदियपरिणामे॥ ण रक्खावियं॥ ण रक्खिज्जंतं॥ समणुमण्णियं॥ तस्स॥ अहावरे॥ अवरे॥ सो वि॥ दुविहो॥ तत्थ॥ णाणावरणीयं। अट्ठविहो॥

तत्थ॥ बाहिरो॥ उवयरणं॥ भंडं॥ फलह॥ पीढ॥ कमंडलु॥ संथार॥ सेज्ज उवसेज्ज॥ भत्त॥ पान (ण)॥ आइभेदेण॥ एदेण॥ अट्ठविहं कम्मरयं॥ (बद्धं)॥ बद्धाविय॥ बज्झंतं पि॥ (समणुमण्णियं)॥ अहावरे छट्ठे (असणं)॥ (पाणं)॥ खादिमं॥ सादि-(इ) मं॥ स (तित्तो वा)॥ (कडुओ वा)॥ (कसाओ वा)॥ (अम्बिलो वा)॥ (महुरो वा)॥ (लवणो वा)॥ दुच्चिंतिओ॥ दुब्भासिओ॥ दुप्परिणामिओ॥ दुस्सिमिणिओ॥ रत्तीए भुत्तो ॥

पंचसमिदीओ ॥ईरियासमिदि तत्थ॥ ईर्यासमिदि॥ जुगंतरदिट्ठिणा॥ पमाददोसेण डवडवचरियाए॥ पाणभूदजीवसत्ताणं॥ 1॥ उवघादो कदो वा। भासासमिदि। कक्कसा॥ ॥1॥ कडुआ॥ 2॥ परुसा॥ 3॥ णिट्ठुरा॥ 4॥ परकोविणी॥ 5॥ मज्झकिसा॥ 6॥ अइमाणिणी॥ 7॥ अणयंकरा॥ 8॥ छेयंकरी ॥9॥ भूयाण वहंकरी चेदि॥ 10॥ भासिदा ॥ एसणासमिदि॥

आहाकम्मेण वा॥ पच्छाकम्मेण वा॥ पुराकम्मेण वा॥ उद्दिट्ठयडेण वा॥ णिद्दिट्ठयडेण वा॥ कीदयडेण वा॥ साइया ॥ रसाइया॥ सइंगाला॥ सधूमिया॥

अइगिद्धीए॥ आधाकम्मेण॥ अग्गीव॥ छण्हं। विराहणं॥ काऊण॥ अपरिसुद्धा॥ अण्णं पाणं॥ आहारियं॥ आहाराविय॥ आहारिज्जंतं पि॥ समणुमण्णियं॥

आदाणणिक्खेवणसमिदी ।चक्कलं वा फलहं वा पोत्थयं वा कमंडलुं वा वियडिं वा मणिं वा। अप्पडिलेहिऊण॥ गेण्हंतेण ठवंतेण॥ पाण।

उच्चारपस्सवण॥ उच्चार॥ पस्सवण॥ खेल॥ सिंहाणय॥ वियडि॥ रत्तीए॥ वियाले वा॥ अचक्खुविसये॥ अवत्थंडिले॥ अब्भावयासे॥ सणिद्धे॥ सबीये॥ सहरिए॥ एवंविहेसु अप्पासुयट्ठाणेसु॥ पइट्ठावंतेण॥ पाणभूद।

तिण्णि गुत्तीओ॥ मणगुत्ति॥ वचिगुत्ति॥ कायगुत्तिचेदि॥ तत्थ। अट्टे झाणे॥ रुद्दे झाणे॥ इहलोयसण्णाए॥ परलोयसण्णाए॥

आहारसण्ण्णाए ॥ भयसण्णाए ॥ मेहुणसण्णाए ॥ परिग्गहसण्णाए ॥ एवमाइयासु ॥ जा मणगुत्ति ॥ तत्थ वचिगुत्ती ॥ इत्थी ॥ अत्थकहाए ॥ भत्तकहाए ॥ रायकहाए ॥ चोरकहाए ॥ वेरकहाए ॥ परपासंडकहाए ॥ एवमाइयासु ॥ जा वचिगुत्ती ॥ तत्थ कायगुत्ती ॥ एवमाइयासु ॥ जा कायगुत्ति ॥

णवसुबंभचेरगुत्तीसु ॥ चउसु सण्णासु ॥ चउसु पच्चएसु ॥ दोसु अट्टरुद्दसंकिलेसपरिणामेसु ॥ तिसुअपसत्थसंकिलेसपरिणामेसु ॥ मिच्छणाणमिच्छदंसणमिच्छचरित्तेसु ॥ चउसु उवसग्गेसु ॥ पंचसु चरित्तेसु ॥ छसु आवासएसु ॥ सत्तसु भएसु ॥ अट्ठसु सुद्धीसु ॥ दससु समणधम्मेसु ॥ दससु धम्मज्झाणेसु ॥ दससु मुंडेसु ॥ बारसेसु संजमेसु ॥ बाबीसाए परीसहेसु ॥ पणवीसाए भावणासु ॥ पणवीसाए किरियासु ॥ अट्ठारससीलसहस्सेसु, चउरासीदिगुणसदसहस्सेसु ॥ मूलगुणेसु ॥ उत्तरगुणेसु ॥ अदिक्कमो ॥ वदिक्कमो ॥ अइचारो ॥ अणाचारो ॥ आभोगो ॥ अणाभोगो ॥ अट्ठमियम्हि ॥ पक्खियम्हि ॥ चाउम्मासियम्हि ॥ सांवच्छरियम्हि ॥ मए पडिक्कंतं ॥ सम्मत्तमरणं ॥ होउ मज्झं ॥ पंडियमरणं ॥ वीरियमरणं ॥ दुक्खक्खओ ॥ कम्मक्खओ ॥ बोहिलाहो ॥ सुगइगमणं ॥ जिणगुणसंपत्ति ॥

श्रीगौतमस्वामिकृत-प्रतिक्रमण

॥ श्री ॥ ॥ श्री ॥ ॥ श्री ॥

॥ श्री पार्श्वनाथाय नमः ॥

इतिश्री-प्रतिक्रमणग्रंथत्रय्याः तृतीय-ग्रन्थः समाप्तः ॥

मुनि श्री प्रणम्यसागर जी द्वारा साहित्य सृजन

संस्कृत भाषा में टीका ग्रन्थ -

1. लिङ्गपाहुड़ (नन्दिनी टीका)
2. शील पाहुड़ (नन्दिनी टीका)
3. समाधि तन्त्र (आर्हतभाष्य)
4. चैतन्य चन्द्रोदय (चन्द्रिका टीका)
5. बारसाणुवेक्खा (कादम्बिनी टीका)
6. आत्मानुशासन (स्वस्ति टीका)
7. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय (मंगला टीका)
8. प्रश्नोत्तर रत्नमालिका ('नीति-पथ')
9. तत्त्वार्थ सूत्र (तत्त्व संदीपिनी टीका, संस्कृत-प्राकृत)
10. संस्कृत एवं प्राकृत भक्ति (आठ भक्तियों की टीका)

हिन्दी में अनुवादित ग्रन्थ -

1. सत्कर्म पंजिका
2. दश भक्ति टीका
3. प्रवचनसार (सरोज भास्कर टीका)
4. कथा कोश
5. सत्य शासन परीक्षा
6. युक्त्यनुशासन
7. नाममाला (भाष्य)
8. सत्संख्यादि अनुयोगद्वार
9. पात्रकेसरी स्तोत्र
10. अद्याष्टक स्तोत्र
11. संन्यास एषोस्तु किमात्मघातः
12. चतुर्विंशति तीर्थंकर स्तुति (आ. माघनन्दि)
13. नियमसार
14. समयसार
15. परीक्षामुख
16. प्रतिक्रमण-ग्रन्थत्रयी

पद्यानुवाद

1. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय
2. प्रश्नोत्तर रत्नमालिका
3. तत्त्वार्थ सूत्र
4. पात्र केसरी स्तोत्र
5. कल्याणमन्दिर स्तोत्र
6. श्री वर्धमान स्तोत्र
7. मंगलाष्टक
8. माघनन्दि कृत अभिषेक पाठ
9. उपयोग शतक

अंग्रजी भाषा में

1. Fact of Fate
2. Twelve Comtemplation
3. I Love my Soul

संस्कृत भाषा में मौलिक काव्य ग्रन्थ -

1. स्तुति पथ (इस कृति में निम्नलिखित स्तुतियाँ हैं)
   1. प्रार्थना 2. वीराष्टकम् 3. भरताष्टकम् 4. शारदाष्टकम् 5. कुन्दकुन्दाष्टकम्
   6. समन्तभद्राष्टकम् 7. शान्त्यष्टकम् 8. ज्ञानाष्टकम् 9. विद्याष्टकम्
   10. मौनाष्टकम् 11. निजबोधाष्टकम् 12. आचार्य श्री ज्ञानसागर प्रशस्ति पत्र
   13. आचार्य श्री विद्यासागर पूजन
2. श्रायस पथ
3. सिद्धोदयाष्टकम्
4. श्री वर्धमान स्तोत्र।
5. अनासक्त महायोगी (आचार्यश्री का जीवनवृत्त)
6. उपयोग शतकम्

प्राकृत भाषा में मौलिक ग्रन्थ -

1. तित्थयर भावणा (सोलहकारण भावनाओं पर प्राकृत गाथाएँ)
2. दार्शनिक प्रतिक्रमण
3. अष्टपाहुड़ (प्राकृत टीका)
4. धम्मकहा
5. प्राकृत रचना भास्कर
6. प्राकृत शिक्षा भाग 1-2 -3 -4

अन्य मौलिक कृतियाँ

1. युगद्रष्टा (भगवान ऋषभदेव पर उपन्यास)
2. जैन सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य
3. खोजो मत पाओ (लाइफ मैनेजमेन्ट)
4. आलेख पथ (20 सैद्धान्तिक आलेख)
5. समयसार का ज्ञानी आत्मा कौन ?
6. अन्तर्गूंज (भजन एवं हाइकू)
7. लहर पर लहर (कविता संग्रह)
8. बेटा! (शिक्षाप्रद सूक्तियाँ)
9. नई छहढाला
10. लक्ष्य (जीवंधर चरित्र)
11. नई छहढाला प्रवचन
12. अर्हम् दोहावली

संकलन

1. संवाद (आचार्य श्री और बाबा रामदेव की चर्चा)
2. A Talk (संवाद का अंग्रेजी अनुवाद)
3. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय अनुशीलन